Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास

प्रथम खण्ड

(स्थान, काल और कृतियाँ)

R
83
362.9

डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113484

"महाकवि कालिदास" के इस प्रथम खण्ड में कवि के काल, स्थान, जीवन और रचनाओं के विषय में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। कवि के काल के विषय में इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही विचार किया जाता रहा है। देश का शायद ही कोई ऐसा बड़ा विद्वान होगा जिसने इस विषय पर कुछ न कुछ न कहा हो फिर भी अभी तक इस जटिल प्रश्न पर विचारकों में ऐकमत्य नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्तः साक्ष्यों के साथ पौराणिक, पुरातात्त्विक, ज्योतिषीय, ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्रीय दृष्टि से प्राप्त नवीन तथ्यों को सामने रखकर काल निर्धारण की चेष्टा की गयी है। इसके अतिरिक्त अन्य विवादास्पद प्रश्नों-जैसे ऋतुसंहार का रचनाकार, रामगिरि तथा मालविकाग्निमित्र की काटयवेम टीका से उत्पन्न शंकाओं के समाधान का भी प्रयत्न है और कालिदास की प्रामाणिक कृतियों का सरस परिचय भी।

मूल्य रु० ४५०-००

I.S.B.N : 81-86339-54-X

I.S.B.N : 81-86339-57-4 (3 Vol. Set)

113484
विश्वविद्यालय
नं०
सदस्य संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
83
3६2.1
113484

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या............

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113484

महाकवि कालिदास

(प्रथम खण्ड)

113484

113484

लेखक

डॉ. प्रभुदयालु अग्निहोत्री

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

113484

BOOK EASTERN EBL LINKERS

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

दिल्ली :: भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
ईस्टर्न बुक लिंकर्स
५८२५, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर
दिल्ली-११०००७

© लेखक

R
83/342.7

प्रथम संस्करण १९९८

मूल्य रु० : 450.00

I.S.B.N : 81-86339-54-X
I.S.B.N : 81-86339-57-4 (3 Vol. Set)

अक्षरयोजक तथा मुद्रक :
यूनीक प्रिंट मीडिया
विजय नगर, दिल्ली-११०००९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासं नमामि

अखिल राष्ट्र की संचित प्रतिभा के प्रकाश हो
युग-युग की अविराम साधना के, श्रम-तप के एक अमृत फल।
आर्यधरा के आलवाल में रोपित, वर्धित
संस्कृति-तरुशाखा पर फूले प्रथम कुसुम तुम।
प्रथम राष्ट्र-गौरव-गायक। हे राष्ट्र-कवेजय!
कामरूप-कश्मीर-सिन्धु-केरल सीमा तक
गिरि-गह्वर-नद्-नदी-सरोवर-वृक्ष-लता-वन-
कुंज-कुसुम-खग-मृग-मयूर-मधुकर-तारा शशि-
गगन-मही-मानव-सुरगण पर
बरसा है ममतामय निश्छल प्यार तुम्हारा।
हरलेता है मृदुस्पर्श से मन का किल्विष
शिव के पुंजीभूत हास-सा काव्य तुम्हारा।
वह कल्पना-विलास, तुम्हारा वह रङ्गस्थल
कुसुम-कटोरों में भर-भर अलि
जहाँ पिलाते हैं भ्रमरी को नवपुष्पा सवं
और जहाँ संस्पर्श-भी लिताक्षी हरिणी की
खुजलाते हैं नैन-कोर को सींग-नोंक से सुखासीन मृग।
रूप-वासना-मुग्ध-मद्न की दहन-भित्ति पर
है निर्मित अभिराम प्रेम-प्रसाद तुम्हारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणय-प्रार्थना-चटुल-पवन-प्रियतम-परिरम्भित
गाती है कवि ! कीर्ति तुम्हारी शिप्रा-धारं
है निसर्ग-सौन्दर्य-मुग्ध ! हे विरह-दग्ध कवि !
बीत चुके युग किन्तु आज भी
अनिलपूर्ण रन्ध्रों वाले कीचक-झुरमुट में
बैठ उन्मना विरह व्यथा विहगी गाती है,
घनी ईख की छाँह बैठ जब ग्राम-वधूटी
दरदीले स्वर में कोई कजरी गाती है,
अथवा उष्ण अश्रुजल से मीठे सपनों को नहलाती है,
तो लगता है तुम इनके कम्पित से स्वर में
छिप छिप अपनी मर्म-वेदना घोल रहे हो.
नयन न मानें किन्तु जानता है मन मेरा
यह तुम हो जो पुरुरवा में बोल रहे हो।
बैठ वायु के रथ पर जब चढ़ते आषाढ़ में
यदि दक्षिण से सजल नील बादल आता है
सत्वर-गति से, तो लगता है प्रणय दूत यह
तन्वी श्यामा को सन्देश लिये जाता है।
यह दशार्ण, यह उज्जयिनी, विदिशानगरी यह
अश्वमेध-याजिनी, राजधानीशुङ्कों की,
ये सुगन्ध उगलते शैलगृह, पुष्पलावियाँ
यह निर्विन्ध्या, सिन्धु, बेतवा, यह गम्भीरा,
महाकाल की चरणधूल धोती-सी शिप्रा,
लगते हैं, सब जन्म-जन्म के देखेभाले,
भावस्थिर ये सुहृद् सुपरिचित फिर भी नूतन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ बैठकर जो कुछ लिखा और गाया है
लगता है वह यहाँ आज भी गूँज रहा है।
देख रहा हूँ मैं गैरिक से तुम्हें शिला पर
अंकित करते चिर-वियुक्त कान्ता की मुख छवि।
तुम अपनी सीता के उस टूटे नूपुर-से, भले मौन हो
किन्तु मुखर कह देता है मालविका का स्वर।
काल बहुत बीता, शासक कितने ही बीते
बदल चुके हैं दृश्य देश की रंगपटी के,
नयन देखते हैं फिर भी जीवनपथ में तुम
सुधा-धवल अपना मृदुहास उड़ेल रहे हो।
दिखते नहीं समक्ष किन्तु फिर भी लगता है
यहीं कहीं निज मातृधरा पर डोल रहे हो।
वैदिक-पौराणिक-संस्कृति-संवाहक। वन्दे
कविकुल गुरु। स्वीकार करो मेरी काव्यांजलि।
वाल्मीकि के वंशवितान-विवर्धक हो तुम।
कालिदास! है भूमि तुम्हारी काव्यगन्ध से सदा सुवासित।
की तुमने कल्पना अखण्डित भारत की, जो
उसे पूर्ण करने को अब अपना आशिष दो।
देव! तुम्हें यह सादर मेरा नमस्कार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

कालिदास बाल्यावस्था से ही मेरे साथ हैं। लगभग सत्रह वर्ष की आयु में मैंने उनके मेघदूत के पूर्वार्ध का छन्दोबद्ध हिन्दी में अनुवाद किया था। कोई दो तीन वर्ष बाद मंच पर अभिनीत होने वाले अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ-पंचम अंकों में मैंने दुष्यन्त की भूमिका ग्रहण की थी और एक बार प्रलाप करते प्रेमी पुरुखा की भी। व्याकरण का विद्यार्थी होते हुए भी मैंने उनके सम्पूर्ण मेघदूत और कुमार संभव के प्रथम पाँच सर्गों को प्राय: कण्ठस्थ कर डाला था। तब वे मुझे बहुत अपने, बहुत परिचित से लगे थे। और अनेक वर्षों तक तो मैं उनके यक्ष के भवन के ढंग का एक छोटा-सा गृह बनाने की कामना भी पाले रहा। सन् १९५८ में जब प्रथम बार उज्जैन में कालिदास-समारोह का आयोजन हुआ और उसमें देश के प्राय: सभी प्रमुख विद्वान् सम्मिलित हुए तो मैं भी विशेष आमन्त्रित के रूप में वहाँ गया था। जाते ही मुझे लगा कि इस स्थान को तो मैं पहले से ही जानता हूँ। शिप्रा तट पर घूमता तो लगता, कालिदास मेरे साथ साथ घूम रहे हैं। मैं इतना भाव-विह्वल हो गया कि वहीं तट पर बैठे बैठे 'शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थना-चाटुकार:' का साक्षात् अनुभव करते हुए मैने कालिदास के चरणों में एक कविता ही समर्पित कर डाली। (कविता इस प्रस्तावना के पूर्व दी गयी है)

यह क्रम यहीं नहीं रूका। उज्जयिनी के वार्षिक महाकवि-श्राद्धसव में नियमित रूप से उपस्थित होकर शोधपत्र सत्रों और संगोष्ठियों आदि में भाग लेना तो मेरे लिए पैतृक श्राद्ध के समान पुण्य दाय बन गया। लगभग चौबीस वर्षों तक यह क्रम चला।

मैं जिस स्थान पर भी रहा कालिदास पर आधारित कार्यक्रमों, विशेषत: उन के नाटकों का मूल या अनूदित रूप में मंचन कराता रहा। ग्वालियर में तो मेरे छात्रों और सहयोगियों द्वारा अभिनीत अभिज्ञान शाकुन्तल ने धूम मचा दी थी। तब उसका मंचन लगातार तीन बार कराना पड़ा था। आकाशवाणी ने 'भारत के सांस्कृतिक निर्माता' शीर्षक से जो भी मेरी व्याख्यान माला प्रसारित की थी। उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि एवं व्यास के साथ मैंने कालिदास को भी सम्मिलित किया था । सन् ६३ से मैंने कई विश्वविद्यालयों में एम.ए. के साहित्य ग्रुप में कालिदास के विशिष्ट अध्ययन पर आश्रित स्वतन्त्र प्रश्नपत्र की व्यवस्था की और करायी थी । इस प्रकार कालिदास प्रारम्भ से ही मेरे जीवन के अंग रहे हैं । उनके सान्निध्य में मैंने सदा आनन्द और रसमयता का अनुभव किया है । वह मेरे लिए पुराण हो कर भी सदा नवीन हैं । प्रस्तुत कृति उनके प्रति कृतज्ञता रूप अर्पित श्राद्धाञ्जलिमात्र है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खण्ड में विभक्त है । प्रथम खण्ड में कवि के जन्म-स्थान, काल और उनकी कृतियों की विवेचना है । इसमें ऐसे अनेक प्रश्नों पर विचार किया गया है जो प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहे हैं । इस बात की भी आशा नहीं है कि कभी उनका सर्व-स्वीकार्य समाधान संभव हो सकेगा । इनमें सब से जटिल समस्या है, महाकवि के स्थिति-काल की । मैंने इस पर अनेक दृष्टियों से विचार किया है । इसमें मौलिक शायद ही कुछ हो । ऐसा हो भी नहीं सकता था । मालविकाग्निमित्र की काटयजेम टीका पर विचार करते हुए मैंने दूसरा पक्ष (प्रथमशती ई.पू.) भी तर्क युक्त प्रस्तुत कर दिया है । इसके अतिरिक्त और भी छोटी मोटी बातें हैं जो विद्वानों के बीच प्राय: चर्चा और विवाद का विषय रही हैं । यथा रामगिरि की स्थिति आदि । इन विषयों पर भी मेरे निजी विचार हैं, जो बिना किसी का खण्डन या समर्थन किये ईमानदारी के साथ प्रस्तुत कर दिये हैं ।

द्वितीय खण्ड में महाकवि की रचनाओं की शास्त्रीय समीक्षा के साथ उनके रस-ग्रहण का प्रयत्न है और तृतीय खण्ड में उनकी सांस्कृतिक मान्यताओं को उजागर करने का प्रयास है । कालिदास ने सैनिकीय और सांस्कृतिक दोनों प्रकार के आक्रमणों और उनके दुष्परिणामों को देखा समझा था और उनसे उबरने के विषय में गम्भीरता से सोचा भी था । सुसंगठित एकच्छत्रीय जनरंजक शासन, सुदृढ़ वर्णाश्रम व्यवस्था और विद्यायतनों के सर्वोपरि सम्मान पर उनकी दृढ़ आस्था थी । उन्होंने अपनी इन सब आस्थाओं को बिना किसी अन्य की मान्यता पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रहार किये विशुद्ध कलात्मक ढंग से प्रकट किया है । यों भी वह व्यञ्जना के कवि हैं ।

गत पचास वर्षों में कालिदास को लेकर अनेक श्रेष्ठ शोधलेख और ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं । उनमें अधिकतर से परिचित होते हुए भी मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आवलम्ब न लेकर विशुद्ध निजी ढंग से अपनी बात कहने की चेष्टा की है। आचार्य ऋण को चुकाने की दिशा में यह विनम्र प्रयास है।

कालिदास मानवीय जीवन के समग्र पक्षों के रससिद्ध चित्रकार हैं। उनका सब कुछ आनन्द और रस से परिप्लुत है। माघ की 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' और देव की 'ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निखरै री लुनाई' को रमणीयता और लावण्य के काव्य की कसौटी मान लें तो भी कवियों की पंक्ति में प्रथम दिखेंगे और भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम प्रवक्ता तो वह हैं ही।

अवश्य ही इस कृति में अनेकों सामान्य और विशेष भूले भी होंगी। उनके लिये मैं सहृदय पाठकों से विनत भाव से क्षमा याचना ही कर सकता हूँ।

ई२/७३ महावीर नगर — विनम्र

भोपाल ४६२०१६ — **प्रभुदयालु अग्निहोत्री**

१०-५-९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

(महाकवि कालिदासः स्थान और काल)

विषय प्रवेश

सामान्य परिचय—कालिदास का स्थान-कालिदासकालिक परिस्थिति-गुप्त साम्राज्य-स्थिति काल

पृ० १-१६

पौराणिक सन्दर्भ

पौराणिक मान्यतायें और उनका विकास-अत्रि की नेत्र ज्योति—गङ्गा द्वारा शिववीर्य-धारण-राजा में देवांश-अगस्त्य की दिशा-भगीरथ द्वारा गङ्गाधारण-विष्णु का अवतार-गौतम वधू-परशूराम और कार्तवीर्य-हिमालयदोहन-शैलाधिपत्य-मेना-सतीशरीर त्याग-महावराह-रन्तिदेव-सहस्रवाहु कार्तवीर्य-बलराम-जाह्नवी-कुरूक्षेत्र-कामधेनु-कपिलकथा-मनु-लोकालोक पर्वत-कल्पतरू-दक्षसुता और चन्द्र-सूर्य के अश्व-प्रजापति-कुम्भयोनि-भगीरथ—उदधिमार्ग-कैलासनाथ—सोमपुत्री नर्मदा-कालियनाग-विन्ध्य और अगस्य-परशुराम और समुद्र-अहल्यामोक्ष-ताटका-नहुष-पृथिवी का उद्धार-सागर का परिवर्धन-सूर्य-रश्मियों का गर्भधारण- देवसेना-रेणुका वध।

पृ० १७-४२

ज्योतिषीय सन्दर्भ

ग्रहों की उच्चतीच स्थिति-चित्रा-चन्द्र-योग-चन्द्र में सूर्य रश्मियों का अनुप्रवेश-अगस्त्य का उदय-सुरों के द्वारा चन्द्र-कलाओं का पान-अमावस को सूर्य-चन्द्र की सहस्थिति-सूर्य का निरंशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट्य—विवाहतिथिशुद्धि-जामित्रगुण-राशियों द्वारा ध्रुव का अनुगमन-अङ्गारक की राशि के प्रति अनुवक्र स्थिति-मङ्गलग्रह-रात्रिवेला में सूर्य-तेज का अग्नि में प्रवेश-चन्द्र और रोहिणी में दाम्पत्य भाव।

४३-४७

पुरातात्त्विक सन्दर्भ

प्रस्तर शिल्प-विष्णु की मूर्तियाँ-विष्णु के लाञ्छन-विष्णु के अवतार-शिव-शिव की मुद्रायें और चिह्न-राम का अवतारी रूपांकन-स्कन्द और गणेश की मूर्तियाँ-अहल्योद्धारी राम-चमरधारिणी गङ्गा-यमुना-मुक्तायज्ञोपवीत—नामाङ्कित अङ्गुलीय- वैजयन्ती माला-सप्तसागरों, सप्तस्वरों और वीणावादन का चित्रण-षट् कृत्तिकाओं, सप्त कुलपर्वतों, अष्टादशद्वीपों, कृलि प्रदान, कीर्तिस्तम्भों की स्थापना-द्वार पर शंख और पद्म का चित्रण-मूर्तियों का अत्यधिक प्रचलन-शिवभक्ति-प्रजापति काश्यप-देवगृह-पूजावाद्य—

४८-५६

चित्रकला

चित्रकला का व्यापक प्रचार-राजप्रासादों में भित्तियों पर चित्रांकन-स्तम्भों पर चित्रण-ध्वज, रंग मञ्च और रङ्ग द्वार पर नाट्य चित्र-सज्जा

५७-५८

फलित ज्योतिष

राशि ज्ञान-जन्मपत्रिका-भाग्यश्री की ग्रहों के आधार पर सूचना-मध्याह्न को दिन का षष्ठ भाग मानना—नक्षत्रों-ग्रहों और तारों का पृथक्-पृथक् ज्ञान-भाग्यवादिता-आर्यभट्टमह और वराहमिहिर-होराज्ञान-ग्रीकज्योतिष-पोलिसदेमक-मूहर्त विज्ञान-सामुद्रिक विज्ञान-पक्ष, अहोरात्र, मास, अयन, वत्सर, ऋतु, नक्षत्र, सन्धिवेला-चान्द्रमास-वर्ष का प्रारम्भ।

५९-६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य प्रमाण

पुराण-अवतारवाद-यज्ञ परम्परा-साहित्य दिङ्नाग प्रसंग-निचुल-स्कन्द और शिव-हूणविजय-यवन, पारसीक, म्लेच्छादिदेश विजय-शक-भाषा का स्वरूप-वत्सभट्टि का लेख-स्कन्द गुप्त का भितरी शिलालेख-अन्य संकेत-सांस्कृतिक उन्नति-उदय गिरि का शिलालेख-स्कन्द गुप्त का कहोमलेख-स्कन्द और कुमार की कालिदासीय कृतियों पर छाया—विन्ध्य और उज्जयिनी से अति परिचितता ।

पृ० ६४-९४

कालिदास की कृतियाँ

विशिष्टतायें

आत्मगोपन—विशुद्ध कलाकार, कवि—असीम संवेदना—प्रकृति के विविधरूपों से आत्मीयता-प्रकृति का मानवीकरण-पशु पक्षि जगत् के साथ संख्य भाव-नागरिक और वन्य जीवन में सामञ्जस्य-मानवीय संवेगों के चतुर शिल्पी-भौगोलिक स्थिति का विशद, सूक्ष्म और शुद्ध निरूपण-वैदिक संस्कृति का पुनरुज्जीवन मनु प्रतिपादित वर्णाश्रम-व्यवस्था के प्रति अटूट श्रद्धा-एकच्छत्र शासन की पक्षधरता-लोकरंजक शासन के प्रति आस्था-मनु की राज्य व्यवस्था की पुष्टि-नैतिकता का उद्‌घोष- भाषा का सारल्य-प्रसाद गुण-अलंकृति का उचित प्रयोग उपमा-उत्प्रेक्षा का प्रचुर भव्य प्रयोग-वर्णन की सादगी-अवसरोचित छन्दश्चयम

९५-१०१

ऋतु संहार

प्रथम रचना-गीति काव्य-षड् ऋतु वर्णन-वैभव विलासवर्णन-दवाग्नि का प्रभावी निरूपण-ऋतुओं के श्रृङ्गार-प्रसाधन और पुष्प-समृद्धि-शरद्वधू-वसन्त योद्धा-प्रत्येक ऋतु का प्रकृति, पशु जगत् और नर नारियों पर प्रभाव-कुछ मनोरम गार्हसस्थिक चित्र-ऋतु संहार युग ।

ऋतु संहार का रचनाकार-विभिन्न मत-वाल्मीकि से साम्य-कामसूत्रकार का व्यापक प्रभाव-संभोग और रतिचिह्नों का खुल कर वर्णन-ऋतुसंहार एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासीय कृतियों में रूपवर्णनसाम्य-केश, नेत्र, वीक्षण, कर्ण, ओष्ठ, स्तन, मध्यदेश, वाहु, चरण-आदि उक्ति साम्य-दाम्पत्य प्रणय का उदात्त चित्रण-विभिन्न समीक्षकों के मत-निष्कर्ष ।

१०२-१४९

मेघदूत

मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध-रामगिरि-मालक्षेत्र-आम्रकूट-दशार्ण-विदिशा-निर्विन्ध्या-सिन्धु-अवन्ति-विशाला-गम्भीरा-देवगिरि-चर्मण्वती-दशपुर-सरस्वती-ब्रह्मावर्त-कनखल

रामगिरि विषयक मतभेद-चित्रकूट ही रामगिरि है—प्रथम दिवसे या प्रशम दिवसे ! यक्षपुरी अलका का वर्णन-यक्ष का भवन-विरहिणी यक्षपत्नी-यक्ष सन्देश-उपसंहार ।

१५०-१६६

कुमार संभव

महत्त्व-हिमालय चर्चा-पार्वती रूप वर्णन-तारक से पीडित देवों के द्वारा ब्रह्म की स्तुति-वसन्त वर्णन-काम दहन-पार्वतीतपश्चर्या-शिव प्रसादन-सप्तर्षिशिवसंवाद हिमालय से विवाह का प्रस्ताव-विवाह कौतुक-विवाह विधि सम्पादन-पार्वती शिव संभोग वर्णन, स्कन्द जन्म-समीक्षा-काव्य सौन्दर्य-मानवीय सौन्दर्य-शृंगार के उभय पक्ष-बाल सेनानी स्कन्द-कुमार तारक युद्ध वर्णन

१६७-१८२

रघु-वंश

रघुवंश का आधार-वाल्मीकि और कालिदास का उद्देश्य साम्य-इक्ष्वाकु वंश-दिलीप के गुण-रामायण के राम और रघुवंश के दिलीप-रघुवंशीय राजाओं की पुराणों, भागवत और कालिदास के अनुसार नामावली-दिलीप चरित-गोसेवा-पुत्र जन्म-रघुचरित-लोकप्रियता-रघु-दिग्विजय-दान शीलता-पुत्र प्राप्ति-अजचरित स्वयंवरयात्रा-इन्दुमतीवरण-प्रतिरोधदमन-दिग्विजय-राज्याभिषेक-इन्दुमतीमरण-अज विलाप-दशरण चरित-मृगया वर्णन-मुनिशाप-पुत्रेष्टि-पुत्रप्राप्ति-ताटकावध-रामविवाह-परशुराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजय-राम का यौवराज्य-राम विवाह-वन गमन पञ्चवटी प्रसंग-जयन्त प्रसंग-सीताहरण-वाधिवध-रामरावण युद्ध अयोध्यागमन-राज्यभिषेक-सीतापरित्याग-लवणासुरवध-लवकुशजन्म-शम्बूकवध-रामाश्वमेध-सीतापाताल प्रवेश-राम-शरीर-त्याग

कुश चरित-कुमुद्वतीपरिणय-अतिथि चरित-अन्य राम वंशज-अन्तिम राजा अग्निवर्ण

मालाविकाग्निमित्र १८३-२३५

मालविका. की कथावस्तु—नाटक की ऐतिहासिकता-नाटक में ऐतिहासिक संकेत-नाट्य चर्चा-नाटक की विशेषतायें-राजतन्त्र, अगदतन्त्र आदि की जानकारी-नाटक का काव्य सौष्ठव-नाटक समीक्षा-मालविकाग्निमित्र की काटयवेम टीका-काटयवेम का परिचय-टीका की विशेषतायें और महत्त्व-नाट्य-संगीत आदि के विषय में टीका द्वारा प्राप्त विशद जानकारी-भरत वाक्य से उभरते कुछ ऐतिहासिक प्रश्न-शुंगकाल-गुप्तवंशीय राज्य से तुलना-ऐतिहासिक विवेचन और नाटक के रचना काल का निर्धारण।

विक्रमोर्वशीय २३६-२६२

कथावस्तु-कथा के स्रोत-पात्रों और परिस्थितियों का चयन-रूप वर्णन-विरह वर्णन-शृंगार परिपाक-काव्य सौन्दर्य।

अभिज्ञान शाकुन्तल २६२-२६८

नाटक का महत्त्व-कथावस्तु-आश्रम वर्णन-मृगया वर्णन-शकुन्तला लावण्य शकुन्तला का गान्धर्व विवाह और परित्याग, नाटककान्तर्गत राजधर्म, राजनीतिक स्थिति, न्यायव्यवस्था, आजीविकासाधन—आश्रम सम्मान आदि का वर्णन नाटक की भाषा-प्रकृति सौन्दर्य, हिमालय, वन्य मृगादि पशु-मानवीय कोमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनायें—प्रकृति के साथ समरसता-सूक्ष्म गहन संवेदनायें-रस परिपाक-नाटकीय तत्त्व और भाषा।

२६८-२७५

नामानुक्रमणिका २७६-२९०

श्लोकानुक्रमणिका २९१-३०८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

स्थान, काल और कृतियाँ

महाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास भारत के श्रेष्ठतम कवि हैं। सम्भवत:, वे भारत के एकमात्र प्राचीन कवि हैं, जिनकी कीर्ति देश और काल की सीमायें लाँघकर लगभग डेढ़ हजार वर्षों से दिग्दिगन्त को आलोकित कर रही है। भारतीय परम्परा में वे कवि-कुल-गुरु के नाम के से प्रख्यात हैं। परवर्ती कवियों और समीक्षकों ने मुक्त-कण्ठ से उन्हें श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है। किसी ने उनके काव्य को 'मधुरसार्द्र-मंजरी' कहा, तो किसी ने उन्हें 'ललितोद्गार श्रृंगार' का अविजेय स्रष्टा बतलाया। कोई उनकी उपमाओं पर मुग्ध हुआ, तो किसी ने कहा कि श्रेष्ठ कवियों की गणना में कालिदास के बाद उनकी टक्कर का दूसरा कवि ही जगत् में उत्पन्न नहीं हुआ। इतना होने पर भी भारतीय विद्वान् जो दसवीं शताब्दी के बाद बाह्याडम्बर और शब्दजाल को काव्य की कसौटी मानने के अभ्यस्त हो चुके थे, उनके काव्य को उसका उचित स्थान देने में सदा संकोच का अनुभव करते रहे। गत शती से यूरोप में भारतीय साहित्य के प्रति उत्कण्ठा जागरित होने के फलस्वरूप जब अभिज्ञानशाकुन्तल का अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में हुआ और उसपर पाश्चात्य समीक्षकों की दृष्टि पड़ी, तब वे उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध हो गये। जर्मन कवि गेटे तो 'शाकुन्तल'को सिर पर रखकर नाचने लगे और उन्होंने कहा कि यदि किसी को स्वर्गीय और पार्थिव सौन्दर्य का एक स्थान पर दर्शन करना हो, तो उसे अभिज्ञानशाकुन्तल का अनुशीलन करना चाहिए। इसके पश्चात् कालिदास के प्रशंसकों की बाढ़ सी आ गयी। इधर जब से भारतीय समीक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ, भारत में काव्य के प्रति समीक्षकों का दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो गया। इसके परिणामस्वरूप श्रीहर्ष के ऊपर कालिदास और केशवदास के ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापति की प्रतिष्ठा हुई। विगत तीस चालीस वर्षों में तो विश्व के प्रायः सभी श्रेष्ठ लेखकों और सुसंस्कृत देशों ने किसी-न-किसी रूप में कालिदास के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। उनके नाटक भारत में और भारत के बाहर भी अभिनीत होते रहे हैं और कवि की जयन्ती भी उत्साह से मनायी जाती है।

कालिदास का स्थान

कालिदास के स्थान को लेकर विद्वानों के बीच लम्बे समय तक विवाद चलता रहा। डॉ मिराशी प्रभृति विद्वानों की प्रेरणा से महाराष्ट्र की सरकार ने नागपुर के समीप रामटेक (रामगिरि ?) में उनका कीर्तिस्तम्भ भी स्थापित कर दिया। सन् १९५८ से पं. सूर्यनारायण व्यास के प्रयत्न से उज्जयिनी में प्रतिवर्ष कालिदास समारोह का आयोजन व्यापक स्तर पर होता है।

अतः काल विषयक अनिश्चिति होने पर भी कालिदास के स्थान के विषय में अब विशेष विवाद नहीं रह गया है, यद्यपि बंगाल और काश्मीर के कुछ विद्वान उन्हें अपने अपने प्रदेश का मानते हैं। बंगाली भक्तों ने तो मुर्शिदाबाद जिले के 'गड्डा सिंदरु', गाँव को उनका जन्म स्थान मान कर वहाँ 'कालिदास-सागर' खुदवा दिया है, 'कालिदास पाठशाला' स्थापित की है और प्रतिवर्ष वहाँ साहित्यिक उत्सव भी करते हैं। काश्मीरी विद्वानों ने भी कुमार सम्भव, रघुवंश और विक्रमोर्वशीय आदि में वर्णित स्थानों और वातावरण को काश्मीर में खोज निकाला है। उनके मत से मालिनी, सिन्धु आदि नदियाँ, शची तीर्थ, सोमतीर्थ, ब्रह्मसर, शक्रघाट भूतेश्वर आदि स्थान नाम काश्मीर घाटी के ही हैं। किन्तु अब अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि ये सब अनुमान भावुकता से ही प्रेरित हैं। कालिदास ने भारत के हर प्रान्त का वर्णन इतने अपनत्व और सच्चाई से किया है कि हर प्रदेश को लगता है कि वे उसके अपने थे। फिर भी उज्जयिनी के प्रति उनका पक्षपात विशेष दिखायी देता है। वे 'वक्रः पन्थाः' होते हुये भी चक्कर खा कर यक्ष को उज्जयिनी होकर अलका जाने का परामर्श देते हैं। उन्होंने ग्यारह श्लोकों में उज्जयिनी की समृद्धि, वहाँ बहने वाली शिप्रा नदी, महाकाल के मन्दिर, सान्ध्य आरती, वेश्यानृत्य आदि का वर्णन इतनी तन्मयता से किया है कि वहाँ उनका जन्म भले न हुआ हो, उस स्थान के लिये उनके मन में बड़ा स्नेह था, इसमें सन्देह नहीं रह जाता। उज्जैन के पास पड़ोस के प्रदेश, विदिशा आदि का भी, अपेक्षा कृत विशद वर्णन उनकी कृति में उपलब्ध होता है। इसके बाद विन्ध्यपर्वत और विदर्भ के प्रति उनके मन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षपात दिखायी देता है। वैदर्भी शैली के तो वे कवि ही हैं। उनकी इन्दुमती और मालविका विदर्भ की है। रामगिरि जहाँ बैठकर उन्होंने मेघदूत लिखा, विदर्भ में माना जाता रहा है, 'समृद्धां विदर्भाधिपराजनीम्, सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्' कह कर रघुवंश में उन्होंने विदर्भ के प्रति अत्यन्त आदर प्रकट किया है। इससे अनुमान होता है कि उनका जीवन मुख्यत: उज्जयिनी में बीता। उसके पास पड़ोस के प्रदेशों विदिशा, मन्दसोर आदि से उनका निकट सम्बन्ध था और वे कुछ समय तक विदर्भ में (प्रो० मिराशी के अनुसार वाकाटक नृपति प्रवर सेन द्वितीय के दरबार में चन्द्रगुप्त के दूत के रूप में) भी रहे थे।

कालिदास-कालिक परिस्थिति

कालिदास की विचारधारा को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थिति पर एक दृष्टि डाल लेना समीचीन होगा। ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था। उस समय उत्तर भारत पर नन्दवंश का शासन था। पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी। सिकन्दर के चले जाने पर विष्णु गुप्त (चाणक्य) की सहायता से चन्द्रगुप्त ने नन्द को गद्दी से उतार कर पाटलिपुत्र के सिंहासन पर अपना अधिकार जमाया और यवनों को हरा कर पंजाब, विलोचिस्तान और अफगानिस्तान तक पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसी समय में चाणक्य (कौटिल्य) के अर्थ शास्त्र का निर्माण हुआ जो राजनीति और अर्थशास्त्र का महान् ग्रन्थ माना जाता है।

चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार और पौत्र अशोक गद्दी पर बैठा। अशोक के शासन काल में सारा देश एक छत्र के नीचे संगठित हुआ। इस काल में पालिभाषा और साहित्य की बड़ी उन्नति हुई किन्तु संस्कृत को कोई प्रोत्साहन न मिला। यह युग वैदिकधर्म के विरूद्ध बौद्धधर्म के उत्कर्ष का था। ई पू. २३२ में अशोक की मृत्यु हुयी। उसके बाद ५० वर्ष तक मौर्य साम्राज्य और टिका। ऐसा प्रतीत होता है कि राजधर्म बौद्ध होने के कारण उससे अनुयायी अन्यधर्मावलम्बियों के साथ सद्व्यवहार नहीं करते थे। राजनीति कहने भर को उदार थी और वैदिकों को भी प्रश्रय दिया जाता था किन्तु व्यवहार में वैसा नहीं सध पाता था। इससे तथा अन्य कारणों से वैदिक लोगों में विशेषत: जनता में सामान्यत: असन्तोष था। इस गरिस्थिति का लाभ उठाकर मौर्यराजा बृहद्रथ के सेनापति पुष्पमित्र शुंग ने उसे मार कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। ऐसा लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जैसे बौद्धधर्म के विरूद्ध यह जनक्रान्ति थी। गद्दी पर बैठते ही पुष्यमित्र ने वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा के प्रसार के लिए पूर्ण उद्योग किया। उसने स्वयं दो अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें एक के आचार्य व्याकरण महाभाष्य के रचयिता स्वयं महर्षि पतञ्जलि थे। इस समय घर घर में यज्ञ याग का प्रचार हुआ। संस्कृत शिष्ट समाज की भाषा बनी। महाभाष्य जैसे ग्रन्थ का निर्माण इस काल में हुआ। यह "ग्रामे ग्रामे कठ- कालापम्" का युग था अर्थात् वैदिक संस्कृति के प्रथम पुनरूत्थान का युग। मौर्यों के कमजोर पड़ने पर यवन फिर भारत की ओर बढ़ आये तो पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र ने सिन्धु नदी के किनारे इन्हें परास्त किया। कालिदास के "मालविकाग्नि मित्र"में इस घटना का विस्तृत वर्णन है। प्रथम वैदिक पुनरुत्थान के प्रवर्तक होने के कारण ही पुष्यमित्र के परिवार को कालिदास ने अपने नाटक का विषय बनाया।

ईसा से ७३ वर्ष पूर्व शुङ्ग साम्राज्य नष्ट हो गया और उनका स्थान काण्वों ने लिया। काण्वों के काल में संस्कृत भाषा की उन्नति जारी रही। समीक्षकों के मत से मनुस्मृति को वर्तमान स्वरूप इसी समय मिला। संभव है, काण्वों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए ही कालिदास ने कण्व की पुत्री को अपने नाटक की नायिका के रूप में चुना हो। काण्वों का अन्तिम काल बड़ा संघर्षमय था। गर्ग संहिता के युग पुराण में इस समय का बड़ा हृदय- द्रावक वर्णन मिलता है। इस समय शकों और हूणों के भयंकर आक्रमणों से सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गयी। संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थ जो हूणों से लेकर अब तक लिखे गये थे नष्ट कर दिये गये। स्वयं महाभाष्य की एक प्रति कहीं दक्षिण प्रदेश में बच गयी जिसे लेकर चन्द्राचार्य ने फिर से व्याकरण का पठन पाठन आरम्भ कराया।

अशोक की मृत्यु के बाद दक्षिण में सातवाहनों ने अपना स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित कर लिया था। दक्षिण की ओर भी बाद में शकों ने अपने पाँव फैलाये किन्तु गौतमीपुत्र सातकर्णी ने उन्हें टिकने न दिया। सातवाहन वैदिक धर्मी थे। इन लोगों ने न केवल अश्वमेध, अपितु गवामयन, आप्तोर्याम, गर्गत्रिरात्र आदि श्रौत याग भी किये। बड़े बड़े दान दिये। बौद्ध धर्म को भी खूब प्रश्रय दिया। फिर भी इनके राज्य में संस्कृत भाषा की विशेष उन्नति न हुयी। इनके सारे लेख प्राकृत में मिलते हैं। इनके राज्य काल में प्राकृत भाषा की वड़ी उन्नति हुयी। गाहा सत्तसई की अधिकांश गाथाऐं इसी काल में लिखी गयी। कुन्तलेश्वर साहवाहन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःपुर में प्राकृत भाषा का व्यवहार कड़ाई के साथ किया जाता था। ई. पू. २२५ से लगभग २२५ ई. तक दक्षिण में इनका राज्य रहा। उत्तर भारत में शकों के बाद पह्लव और फिर कुषाणवंश का शासन हुआ। कुषाणवंश में सबसे प्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ जिसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इसके राज्य का विस्तार काबुल से पाटलिपुत्र तक था। दक्षिण भारत भी इसके अधीन था। इसने काश्मीर में बौद्ध विद्वत्परिषत् की आयोजना की जिसके अध्यक्ष सुप्रसिद्ध दार्शनिक कवि अश्व घोष थे। ईसा की दूसरी शती के अन्त में कुषाणों का वर्चस्व क्षीण हो गया। और वे अनेक खण्डों में विभाजित हो किसी प्रकार राज्य करते रहे। अन्त में तीसरी शताब्दी में उत्तरमें गुप्तों और दक्षिण में वाकाटकों का उदय हुआ।

शुंगों से लेकर गुप्त राजाओं के बीच के लगभग ४०० वर्षों में किसी भी राजा ने संस्कृत भाषा और साहित्य को प्रोत्साहन नहीं दिया था। स्तूपों, चैत्यों और बौद्ध गुफाओं के निर्माण में राज्यों और उनके प्रभाव से व्यापारियों तथा सम्पन्न जनों ने बहुत सा दान दिया था। साँची और भरहुत के स्तूपों, अजन्ता और नासिक आदि की गुफाओं और दान पत्रों से यह बात स्पष्ट है। इस काल के सारे लेख प्राकृत में है। इस काल के हिन्दू देवालयों या अन्य कलाकृतियों का कोई अवशेष प्राप्त नहीं होता। सन् १५० के लगभग क्षत्रप राजाओं ने अवश्य संस्कृत को प्रोत्साहन दिया और इस काल में भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कुछ लेखक पैदा हुए किन्तु इसका मुख्य कारण संस्कृत भाषा की प्राणवती शक्ति ही था जिससे बाध्य हो कर अश्वघोष जैसे बौद्धों को भी संस्कृत में लिखना पड़ा। सौन्दरनन्द के अन्त में उसने इस बात को स्वीकार भी किया है।

इधर बौद्धों के संघर्ष में वैदिक लोगों को अपनी दुर्बलताओं का भी पता चल गया था। फलस्वरूप इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ। यज्ञों से पशुबलि समाप्त की गयी। अहिंसा को प्रश्रय मिला। स्मृतियों का निर्माण सूत्र ग्रन्थों को सुबोध बनाने के लिए किया गया। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति,भारतांय नाट्य शास्त्र, कामसूत्र, बहुत से पुराण, न्याय मीमांसा, योग आदि सूत्र- ग्रन्थ इस युग में लिखे गये। स्कन्द, विशाख, इन्द्र, संकर्षण, वासुदेव, कुबेर आदि देवताओं के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की त्रयी को प्रधानता मिली। इतना सब कुछ कार्य जन सामान्य की निजी प्रेरणा और उत्साह से हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त साम्राज्य

गुप्त वंश का प्रारम्भ मगध से हुआ किन्तु धीरे धीरे उसका विस्तार बढ़ गया। इस वंश का प्रथम प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ जिसने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की और गुप्तसंवत् का प्रवर्तन किया। उसका पुत्र समुद्रगुप्त बहुत प्रतापी हुआ। उसने उत्तर दक्षिण दोनों ओर अपना राज्य दूर दूर तक बढ़ा लिया, यह बात इलाहाबाद के प्रशस्ति लेख से स्पष्ट है। यह श्रेष्ठ कवि, कलाप्रेमी, संगीतज्ञ और विद्वानों का सत्संगी था। शुंगों के बाद उत्तर भारत में यह प्रथम अश्वमेधकर्ता हुआ। अतः यह 'चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्ता' कहा गया है। समुद्रगुप्त की मृत्यु लगभग ३७५ ई. में हुयी।

इसके बाद पहले उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त और पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसकी दो रानियाँ थीं कुबेर नागा और ध्रुवस्वामिनी। प्रथम से उसके दो पुत्र हुए कुमार गुप्त और गोविन्द गुप्त तथा कुबेर नागा से एक कन्या प्रभावती गुप्ता। प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय से हुआ। उसके दो पुत्र हुए दिवाकर सेन और दामोदर सेन (प्रवरसेन)। रूद्रसेन की मृत्यु कम आयु में ही हो गयी जबकि उसके पुत्र छोटे थे। बाद में दामोदर सेन प्रवरसेन के नाम से गद्दी पर बैठा। ध्रुव स्वामिनी चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी थी किन्तु कुषाणों के सम्मुख कायरता दिखाने के कारण उसने रामगुप्त को छोड़कर चन्द्रगुप्त का वरण किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गद्दी पर बैठते ही कुषाणों को मार भगाया, सत्रपों का जो शकवंशीय थे, उच्छेद किया, उज्जयिनी को राजधानी बनाया और विक्रमादित्य की पदवी धारण की। इसका राज्य संपूर्ण उत्तर भारत में फैला हुआ था। दक्षिण में वाकाटक उसके सम्बन्धी थे। उसने धर्म की प्रतिष्ठा की, मठो मन्दिरों को दान दिये, कला और विद्या को प्रोत्साहन दिया। उसके अन्तःपुर में संस्कृत का ही व्यवहार होता था। वह स्वयं विद्वान एवं कवि था। उसके राज्य में सर्वत्र सुव्यवस्था और शान्ति थी। इतिहासकारों ने इस काल को स्वर्णयुग कहा है।

ऐसे समय में कालिदास जैसे कवि का अभ्युदय स्वाभाविक था। गत चार सौ वर्षों में वैदिक धर्म के मार्ग में डाली गयी बाधाओं की प्रतिक्रिया इस युग में हुई। आश्रम और वर्ण-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा, चक्रवर्तित्व का आदर्श, गृहस्थाश्रम का सम्मान, एवं यज्ञ यागादि का प्रवर्तन इस बातों को कला के माध्यम से कालिदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मुखरित किया। प्रोफेसर कीथ के मतानुसार कालिदास के ग्रन्थों में जो शान्ति और सन्तोष बिखरे मिलते है, वे गुप्तकालीन परिस्थिति के द्योतक है। यह युग वैदिक पुनरूत्थान का द्वितीय युग है किन्तु पुनरूत्थान का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इन धर्मों में कोई बड़ा बाह्य शत्रुभाव था। चन्द्रगुप्त के राज्याधिकारी अपरार्क देव ने ४१२ ई. में साँची स्तूप को दान दिया था। ऐसे अनेकों उदाहरण गुप्त काल में उपलब्ध है। स्वयं कालिदास के ग्रन्थों में कहीं बौद्धों पर आक्षेप नहीं है। वास्तव में कालिदास और चन्द्रगुप्त का सारा प्रयत्न कलात्मक और रचनात्मक था। यह स्थिति कुमारगुप्त द्वितीय के समय तक अविच्छिन्त बनी रही। इसलिए यदि उन्हें कुमारगुप्त प्रथम या द्वितीय का भी समकालीन माना जाय तो भी पारिस्थितिक प्रमाणों की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

स्थितिकाल—

कालिदास के स्थितिकाल पर प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने विचार किया है और भिन्न भिन्न निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं जो उनके काल को द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर छठी सदी के बीच ठहराते हैं। इनमें प्राचीन शैली के भारतीय विद्वानों के विचार से वह ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के सम्राट् विक्रमादित्य के समकालीन थे। पाश्चात्य शैली के विद्वानों की दृष्टि में वह पाँचवी सदी के पूर्व नहीं हो सकते। आधी शती से भी अधिक काल से इस प्रश्न पर विचार होता रहा है किन्तु बात जहाँ थी वहीं स्थिर है। अच्छा होगा, यहाँ इन सब पर संक्षिप्त दृष्टिपात कर लिया जाय। इस अवधि के भीतर कालिदास की स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों ने निम्नलिखित मत प्रस्तुत किये हैं:—

(१) ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी (डा. कुन्हन राजा) (२) ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी (प्राचीन परम्परा के समर्थक विद्वान्) (३) ईसा की तीसरी शताब्दी (डी. बी. केतकर) (४) ईसा की चौथी शताब्दी का उत्तरार्ध (डा. भण्डारकर तथा अन्य भारतीय एवं योरोपीय विद्वान्) (५) ईसा की पाँचवी शाताब्दी(प्रो. पाठक) (६) ईसा की छठी शताब्दी (मेक्समूलर, ह. प्र. शास्त्री, प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त) नीचे इन मतों का क्रमिक विवेचन किया जाता है:—

(१) ई. पू. द्वितीय शती— यह मत डा. कुन्हन राजा का है। इसका प्रमुख आधार है मालविकाग्निमित्र का भरत वाक्य और मेघदूत का विदिशा वर्णन। भरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्य में कवि या तो शान्ति समृद्धि आदि के लिए प्रार्थना करते हैं या समकालीन राजा का निर्देश करते हैं । कालिदास ने मालविकाग्निमित्र मे:—

आशास्यमीति-विगम-प्रभृति प्रजानां

सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ।

इस कथन से अपने आश्रय दाता अग्निमित्र (ई. पू. १५०) का निर्देश किया है । मेघदूत में भी उन्होंने कहा है:—

तेषां दिक्षु प्रथित-विदिशा-लक्षणां राजधानीम् ।

अर्थात् दशार्ण देश की विदिशा नामक राजधानी सब ओर विख्यात है । विदिशा की राजधानी के रूप में ऐसी ख्याति शुङ्गों के समय में ही थी ।

यह मत ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि कालिदास के समय में भरत वाक्य में समकालिक राजा का ही निर्देश किया जाता था, यह मानने का कोई आधार नहीं है । दूसरे कालिदास के शेष, दो नाटकों के भरत वाक्यों में किसी राजा का उल्लेक नहीं है और न किसी अन्य कृति में ही ऐसा कोई संकेत है । तीसरे जनश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के आश्रित कवि थे और अग्निमित्र या पुष्पमित्र में से किसी की विक्रमादित्य उपाधि नहीं थी । विदिशा का महत्त्व केवल शुङ्गकाल में ही नहीं था, अपितु गुप्त काल तक वैसा ही बना रहा । यह बात विदिशा के पास उदयगिरि (जिसे कालिदास ने मेघदूत में 'नीचैर्गिरि' कहा है) की गुफाओं, उनके शिल्प तथा उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है ।

(२) ईसा पूर्व प्रथमशती— परम्परा से प्रसिद्ध है कि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में थे । ये वे शकारि विक्रमादित्य थे जिनके नाम का संवत् आज तक भारत में चल रहा है । इस विषय में ज्योतिर्विदाभरण का यह श्लोक प्रायः उद्धृत किया जाता है:—

धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंह-शङ्कु-

वेतालभट्ट घटखर्पर-कालिदासाः ।

ख्यातो वराहमहिरो नृपतेः सभायां

रत्नानि वै वररूचिर्नव विक्रमस्य ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में पुरूरवा और उर्वशी की प्रेमकथा है किन्तु उसका नाम ' विक्रम' के आधार पर है । इस नाटक में कवि ने दो बार विक्रम का श्लिष्ट-पद से उल्लेख भी किया है । यह उल्लेख सोद्देश्य है:—

(१) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्नावर्धते भवान् ।अंक १ ।

(२) अनुत्सेक: खलुविक्रमालङ्कार: । अकं १ ।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, प्रो. आप्टे, प्रो. शारदारंजनराय, प्रो. शेववणेकर और प्रो. के. सी. चट्टोपाध्याय आदि इस मत के समर्थक हैं किन्तु इतिहासकार ई. पू. प्रथम शती में किसी विक्रमादित्य का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते और न उसके चलाये संवत् की बात ही प्रमाणित मानते है । इसका कारण यह है कि इससे पूर्व तृतीय शताब्दी तक के अशोक आदि राजाओं के शिलालेख मिलते है पर विक्रम का कोई शिलालेख नहीं मिलता । संस्कृत साहित्य में कहीं उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं है । 'गाहा सत्तसई' में विक्रम की दानशीलता और 'बृहत्कथा मंजरी' में भूत-वेतालोंपर उनकी विजय की चर्चा अवश्य है किन्तु मञ्जरी बहुत बाद की रचना है और सत्तसई में भी बहुत बाद तक गाथायें जोड़ी जाती रही है । अत: उन्हें प्रमाण कोटि में नहीं रखा जा सकता है । जैन कथाओं में अवश्य शकों पर विक्रम की विजय का उल्लेख मिलता है पर वह विक्रम प्रथम शती के हैं, यह स्पष्ट नहीं है । ई. पू. प्रथम शती में गौतमीपुत्र सातकर्णी ने अवश्य शकों को पराजित किया था पर उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधिधारण नहीं की । रही संवत् कीं बात सो उसका उल्लेख सर्वप्रथम ईसा की नवमशती में 'विक्रमकाल' नाम से मिलता है, उससे पूर्व नहीं । नि:सन्दिग्ध रूप में राजा विक्रमादित्य का प्रथम उल्लेख अमित गति के 'सुभाषित रत्न सन्दोह'(१०५० वि. सं.) में मिलता है । संवत् २८२ से लेकर ५८९ तक के १० शिलालेखों में इस संवत् का उल्लेख 'कृत' 'मालवानांगणस्थितया' ' 'श्री मालवगणान्माते' 'मालवगणस्थिति- वशात्' जैसे शब्दों से पाया जाता है जिससे स्पष्ट होता है कि यह संवत् मूलत: मालव गण से सम्बन्धित था । संभवत: बहुत समय तक यह संवत् इसी नाम से चलता रहा । बाद में ईसवी चौथां शताब्दी में जब महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 'विक्रमादित्य ' की उपाधि धारण की तो इसका सम्बन्ध उनके साथ जोड़ !दिया गया । छठी शताब्दी तक-जब तक पुरानी बात लोगों को याद रही, मालव संवत् नाम भी चलता रहा । प्रो. कीलहार्न तो 'विक्रमकाल' का अर्थ 'कार्तिक मास से प्रारम्भ होने वाला संवत्' मानते हैं क्योंकि इसी समय राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग विजय- यात्रा प्रारम्भ करते हैं । वे इस शब्द में विक्रमादित्य का संकेत स्वीकार नहीं करते ।

ऐसी दशा में जब कि विक्रमादित्य की ही स्थिति सन्दिग्ध है तो कालिदास को उनका नवरत्न कैसे माना जाय ? ज्योतिर्विदाभरण बहुत बाद की रचना है और उसमें जो नौ नाम गिनाये हैं उनके स्थिति- काल में भी शताब्दियों का अन्तर है ।

श्री वैद्य ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के 'तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे' तथा पंचम सर्ग के 'अथोरगाख्यस्य पुरस्यनाथम्', 'पाण्ड्योऽयमंसार्पित लम्बहारः' तथा 'रत्नानुविद्धार्णव- मेखलायाः दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः' इन उल्लेखों के आधार पर सिद्ध किया है कि कालिदास के काल में पाण्ड्य बड़े प्रतापी राजा थे और उनकी राजधानी उरगपुर (वर्तमान उरय्यूर) थी । यह बात ई० पू० प्रथम शती में ही संभव है क्योंकि प्रथम ई० शती में वे चोलों से पराजित हो गये थे और उसके बाद तीसरी शती में पुनः शक्तिशाली हुए किन्तु तब उनकी राजधानी उरगपुर न होकर मदुरा हो गयी । विन्सेण्ट स्मिथ आदि इतिहासकार उरयूरपुर को कभी पाण्डयों की राजधानी नहीं मानते । उनके मत से उनकी राजधानी सदा ही मदुरा थी जिसे तमिलभाषा में 'प्रलवाय' कहते हैं और जिसका अर्थ नागपुर किया भी है । पाण्ड्य लोग प्रथम ई. पू. शती के समान चतुर्थ-पंचमी ई. सदी में भी प्रतापी थे । अतः यह प्रमाण प्रथम ई.पूर्व का ही पोषक नहीं माना जा सकता ।

प्रो. चट्टोपाध्याय तथा प्रो. परांजये का कहना है कि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने आवश्यक न होने पर भी कुछ ऐसी बातों का जानबूझ कर निर्देश किया है जो उनकी शुंग- काल विषयक सूक्ष्म जानकारी को व्यक्त करती हैं जैसे इरावती और धारिणी नामक दो उपनायिकाओं की सृष्टि कर धारिणी के भाई को निम्नवंशीय बतलाना, पुष्पमित्र के पत्र में 'विगतरोषचेतसा' यह पद बिना ही रोष का कारण बतलाये अनावश्यक रूप से रखना आदि । इतनी सूक्ष्म जानकारी शुंगों के सौ पचास वर्ष बाद के कवि को ही हो सकती है । यह कथन पूर्णतः सत्य नहीं है क्यों कि सातवीं शती में उत्पन्न वाण ने हर्ष चरित में शुंगों के विषय में जो जानकारी दी है वह उपलब्ध पुराणों तक में नहीं है । मुद्राराक्षस में मौर्यकाल की सूक्ष्म बातों का उल्लेख है ।

प्रो. शारदारंजन राय तथा चट्टोपाध्याय ने अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में कई स्थानों पर विलक्षण साम्य देखकर अनुमान लगाया कि अश्वघोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कालिदास का अनुकरण किया है क्योंकि श्रेष्ठ कवियों की उत्तम रचना का अनुकरण सामान्यत: छोटे कवियों द्वारा किया जाता है और अश्वघोष का समय शालिवाहन संवत् के प्रवर्तक कुषाण वंशीय सम्राट् कनिष्क के समकालीन होने के कारण ई. प्रथम शती माना जाता है । अत: कालिदास का समय ई. पू. प्रथम शती होना चाहिए । किन्तु प्रो. कावेल तथा अन्य भारतीय विद्वान् उलटी ही बात कहते हैं । उनके मत से कालिदास ने ही अश्वघोष की कल्पनायें लेकर उन्हें परिष्कृत कर दिया है । इसके अतिरिक्त कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से अनुमान होता है कि वह संस्कृत बौद्ध-साहित्य के रचनाकाल के बाद हुए । संस्कृत में बौद्ध साहित्य की रचना ई. प्रथम शती से प्रारम्भ हुई थी । अत: वे इसके बाद ही हुए होंगे ।

प्रो. राय ने प्रयाग के पास भीटा नामक गाँव की खुदाई में प्राप्त एक मिट्टी के पदक पर झोपड़ी, रथ, चार घोड़े, अस्थिपंजर पुरूष और हिरन आदि अङ्कित देखकर अनुमान लगाया कि चित्र शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक का है । कुछ लोगों ने पदक को शुंग काल के पास का माना है । अत: कालिदास का समय भी ई. पू. प्रथम शती होना आवश्यक है । यह युक्ति भी सर्वथा संगत नहीं है क्योंकि प्रथम तो पदक के शुंगकालीन होने का कोई प्रमाण नहीं, दूसरे कुछ लोगों के मत से यह चित्र राजकुमार सिद्धार्थ के विहारकाल का है जहाँ उन्हें वृद्धपुरूष के दर्शन हुए थे । बृद्धजीवन पर बने इस प्रकार के चित्र अन्यत्र भी मिले है, शाकुन्तल के दृश्यों पर कहीं नहीं ।

कथासरित्सागर के अन्तिम लम्बक में कहा गया है कि महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य शंकर का गण था और म्लेच्छों के विनाश, बौद्धों के पराजय तथा वैदिक धर्म के पुनरूत्थान के लिए अवतीर्ण हुआ था । गाथा सप्तशती में भी एक गाथा है (४६४) जिसमें सेवकों की परिचिर्या से प्रसन्न होकर विक्रमादित्य द्वारा उन्हें लक्ष लक्ष मुद्रा देने का वर्णन है । इस पर प्रो. शेंववणेकर ने निष्कर्ष निकाला है कि विक्रमादित्य मालवा के नरेश तथा संवत् प्रवर्तक थे । कथा सरित्सागर बृहत्कथा का रूपान्तर है । वह तथासप्त शती दोनों ईसवी प्रथम शती की रचना है । उत्कीर्ण लेखों में जो 'मालवगणस्थिति' शब्द मिलता है इसका अर्थ है मालवा प्रदेश में प्रचलित गणना पद्धति । गण शब्द का अर्थ शब्दार्णवकोश में गणना भी दिया हुआ है । तब मालवा का राजा विक्रमादित्य था विक्रम संवत् का प्रवर्तक और कालिदास थे उसके राजकवि । अत: उनका काल सुतराम् ही ई. पू. प्रथम शती हुआ । किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो. मिराशी आदि विद्वान् इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनके मत से कथासरित्सागर और बृहत्कथा में एक हजार वर्ष का अन्तर है। बृहत्कथा के जो चार रूप आज उपलब्ध हैं उनमें परस्पर भेद है। अतः सम्भव है कि विक्रम की बात वृहत्कथा में नहो और कथा- सरित्सागर में बाद में जोड दी गयी हो। फिर ऐसा मानने में काल- विरोध दोष भी है। कथासरित्सागर के अनुसार यह कथा काश्यप या कण्व मुनि ने नरवाहन दत्त से वन में कही थी। नरवाहन (उदयन का पुत्र) का समय ई. पूर्व पाँचवी सदी है। तब ई. पू. प्रथम सदी में विक्रम की चर्चा करना कैसे संगत होगा। फिर ईसा पूर्व प्रथम शती में इस प्रदेश का नाम मालवा नहीं, अवन्ति था। मालव नाम चौथी सदी में मालव लोगों के वहाँ बसने पर पड़ा। यदि गण का अर्थ गणना माने तो सिक्कों पर जो 'मालवगणस्य जयः' लिखा मिलता है वहाँ उसका अर्थ मालव की गणना की जय मानना पड़ेगा, जो असंगत है। रही गाथा सप्तशती की बात, सो उसमें सर्वसेन, प्रवरसेन, वाक्पतिराज आदि ८वीं सदी तक के कवियों की गाथायें शामिल हो गयी है। अतः उक्त गाथा प्रथमशती की है इसमें क्या प्रमाण? फिर लक्ष लक्ष मुद्रा दान करने की बात विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त के विषय में भी कही जाती है।

'लक्षं कोटिमलेखयत् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।'

प्रथम अमोघवर्ष (राष्ट्रकूटनृपति) के संजान ताम्रपत्र से यह बात स्पष्ट है। अतः मिराशी आदि बहुत से आधुनिक विद्वान् ई. पू. प्रथम शती के मत को स्वीकार नहीं करते।

(३) तृतीय ईसवी सदी—इस मत के प्रतिपादक हैं श्री द. वे. केतकर। आप का कथन है कि कालिदास ने रघुवंश (१६-४०) में—

निःश्वास-हार्यांशुकमाजगाम धर्मः प्रियावेशमिवोपदेष्टुम्।

इस पङ्क्ति से ग्रीष्ण के आगमन की सूचना देकर कहा है—

अगस्त्यचिह्नादयनात् समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते।

आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टिं हिमस्त्रुतिं हैमवती ससर्ज॥

अर्थात् जब सूर्य अगस्य-चिन्ह वाले अयन (दक्षिण दिशा) को छोड़ कर उत्तरा दिशा की ओर लौटा तो उत्तर दिशा ने पिघलती बर्फ के रूप में मानों आनन्द से शीतल आँसू गिराये। इस वर्णन में अगस्त्य नक्षत्र दक्षिणायन का चिह्न कहा गया है। वराह मिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका में अगस्त्य के अंश अश्विनी नक्षत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आरम्भ से ९० माने हैं। स्पष्ट हैं कि कालिदास के समय में दक्षिणायन या कर्कटक संक्रान्ति क्रान्तिवृत्त में अश्विनी नक्षत्र से ९० अंशों पर अर्थात् पुनर्वसु के पोलक्स तारा के पास होती थी किन्तु वराह मिहिर के समय (५२० ई.) में दक्षिणायन पुनर्वसु के मध्य में (८६ अंश ४०० कला पर) होता था। एक नक्षत्र को (१३ अंश २० कला) अयन चलन के लिये ९६० वर्ष लगते हैं। इस हिसाब से अर्थात् ९०-८६$\frac{२}{३}$ = ३$\frac{१}{३}$ अंश चलने में अर्थात् १३$\frac{१}{३}$, ३$\frac{१}{३}$ = $\frac{१}{४}$ भाग चलने में ९६०$\frac{१}{३}$ = २४०वर्ष लगे होंगे। इस काल को वराह मिहिर के काल ५२० ई. से घटा देने पर उक्त श्लोक का रचना काल ५२०—२४० = २८०ई. सिद्ध होता है। यह बात भी समीचीन नहीं। अगस्त्य का स्थान दक्षिण दिशा माना जाता है। इसलिये कालिदास सरल भाव से दक्षिण दिशा "अगस्त्याचरिता" कहते चले हैं। यथा—

ततो वेला-तटेनैव फलवत्पूग-मालिना

अगस्त्याचरितामाशामनाशास्य-जयो ययौ। रघु. ४-४४

ज्योतिष की इतनी ऊहापोह उन्हें अभीष्ट न थी। यदि दक्षिणायन का स्थान बतलाना ही अभीष्ट होता तो वे क्रान्ति वृत्त के बाहरी नक्षत्र अगस्त्य का नाम न लेकर पुनर्वसु का सीधा उल्लेख करते। फिर अयन चलन इतनी सूक्ष्म गति से होता है कि उस कारण २८० और ४०० ई. की परिस्थिति में विशेष अन्तर नहीं आता।

(४) पाँचवीं ई.शती—अमर कोश की टीका करते हुये क्षीरस्वामी ने रघुवंश के तीन श्लोकों (सर्ग ४, ६६ से ६८) को उद्‌धृत कर बतलाया है कि केसर प्रदेश को वाह्लीक क्यों कहते हैं। उन श्लोकों में उनके मत से वाह्लीक देश पर रघु की विजय का उल्लेख है। इसमें हूणों का राज्य था और वङ्क्षु नदी बहती थी। निश्चय ही यह प्रदेश बैक्ट्रिया (आधुनिक वल्ख) है। हूणों ने इस पर अपना राज्य ४५० ई. के लगभग स्थापित किया था। उन्होंने भारत पर भी आक्रमण किया पर स्कन्दगुप्त ने उन्हें पराजित कर दिया था। गिरनार के शिलालेख (४५५-५६ ई.) में इस बात का उल्लेख है। कालिदास ने रघुवंश में इसी परिस्थिति का वर्णन किया है और वह वर्णन ४५२-५३ का ही हो सकता है। यह मत प्रो. के. वी. पाठक का है। किन्तु केवल इस आधार पर कालिदास का कालनिर्णीत करना उचित नहीं। अवेस्ता, महाभारत, एवं ललित विस्तर में हूणों का उल्लेख है। ईसा से १४० वर्ष पूर्व से हूण आक्सस के उत्तरी किनारे पर अधिकार जमाये हुये थे। कालिदास को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस स्थिति का ज्ञान अवश्य रहा होगा जिसका उपयोग उन्होंने रघुवंश में किया है। यह आवश्यक नहीं कि उक्त वर्णन स्कन्द गुप्त के युद्ध के बाद का ही हो।

(५) ईसा की छठी सदी—पहले पहल प्रो. मैक्समूलर ने यह मत व्यक्त किया था पर वह विद्वानों को ग्राह्य नहीं हो सका। बाद में म. म. हर प्रसाद शास्त्री तथा अन्य कुछ विद्वानों ने भिन्न तर्कों के आधार यही मत प्रकट किया। इनमें प्रमुख ये हैं।

कल्हण के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ राजतरंगिणी में लिखा है कि उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने अपने विद्वान मित्र और कवि मातृगुप्त को काश्मीर की गद्दी पर बिठाया। विक्रमादित्य की मृत्यु के पश्चात् उसने सिंहासन छोड़ दिया। तब प्रवरसेन राजा हुआ। जिसने प्रवरपुर नगर बसाया था। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग सन् ६१९ से ६४५ तक भारत में रहा था। उसने जो प्रवर पुर का वर्णन किया है उससे यह नगर छठी शताब्दी का ठहरता है। ह्वेन्त्सांग ने एक जगह लिखा है कि मालव देश (Malava) में राजा शीलादित्य ने ५३० से ५८० ई. तक राज्य किया। विद्वानों में एक श्रुति यह भी चली आती थी कि विक्रमादित्य की आज्ञा से कालिदास ने प्रवरसेन के लिये 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत महाकाव्य लिखा। इस सब को मिला कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि ६वीं सदी में मालव देश में राज्य करने वाले राजा यशोधर्मन् जिनके दो लेख मन्दसौर से मिले है और जिन्होंने मिहिर कुल जैसे प्रतापी हूणराजा को हरा कर 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' की उपाधि धारण की थी, वास्तव में ह्वेन्त्सांग के शीलादित्य और कल्हण के विक्रमादित्य हैं और मातृगुप्त ही कालिदास हैं। राजतरंगिणी में विक्रमादित्य द्वारा शकों के पराजय का वर्णन है पर कल्हण ने शायद हूणों को ही शक कह दिया है। इससे विक्रमादित्य (यशोधर्मन्) कालिदास (मातृगुप्त) और प्रवर सेन ६वीं शती में समकालीन ठहरते है। पर यह मत विश्वसनीय नहीं है। राजतरंगिणी की रचना १२ वीं शताब्दी में हुयी। इसमें प्राचीन काल का इतिहास विश्वसनीय नहीं है, यह बात सर्वथा मान ली गयी है। फिर विन्सेण्ट स्मिथ ह्वेन्त्सांग के Malawa को साबरमती के पूर्व और राजपूताना के दक्षिण का प्रदेश मानते है जिसकी राजधानी उज्जयिनी नहीं थी क्योंकि ह्वेन्त्सांग ने उज्जयिनी का वर्णन अलग से किया है। प्रो. सिल्वाँ लेवी के मत से ह्वेन्त्सांग का शीलादित्य बलभी का है। यशोधर्मा की विक्रमादित्य उपाधि का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। कल्हण ने राजतरंगिणी में मातृगुप्त के सम्बन्ध में २०० श्लोक लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनमें कहीं भी उसके कालिदास होने का संकेत नहीं है। अत: मातृगुप्त के कालिदास होने की बात सर्वथा मनगढ़न्त है।

ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य वराह मिहिर का समय छठी शताब्दी है। उनसे पूर्व वर्षा ऋतु अर्थात् दक्षिणायन का प्रारम्भ श्रावण से माना जाता था किन्तु उनके समय से वह आषाढ़ के प्रारम्भ से माना जाने लगा। कालिदास ने मेघदूत में 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' कह कर वर्षा का प्रारम्भ आषाढ़ से स्वीकार किया है। अत: उनका समय वराह मिहिर के बाद ही होना चाहिये। उन्होंने वराह मिहिर की वृहत्संहिता से कई कल्पनायें भी ली हैं। यथा—

छाया हि भूमे:शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत: प्रजाभि:। रघु. १४-४०

तथा—

पुपोष वृद्धिं हरिदश्व- दीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा:॥ रघु. ३-२२

वराह मिहिर ने भी ये दोनों बातें (१) भूमि की छाया के कारण चन्द्र में ग्रहण लगना और (२) सूर्य की किरणों से चन्द्र का प्रकाशित होना, संहिता के राहुचार और चन्द्रचार प्रकरणों में कहीं हैं। इससे उनका समकालीन होना भी सिद्ध हो सकता हैं। यह मत ग्राह्य नहीं है क्योंकि प्रथम तो कुछ लोग 'प्रशमदिवसे' यह पाठ मानते हैं 'प्रथम दिवसे' नहीं। दूसरे कालिदास ने अपने ग्रन्थों में वर्षा का प्रारम्भ श्रावण से होने का ही उल्लेख किया है। यथा—

स जहार तयो र्मध्ये मैथिलीं लोक- शोषण:।
नभो- नभस्ययो वृष्टिमवग्रह इवान्तरे॥ रघु. १२-२९

तथा—

नभश्चरै र्गीतयशा: स लेभे नभस्तल- श्याम- तनुं तनूजम्।
ख्यातं नभ:-शब्दमयेन नाम्नाम् कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम्।

रघु. १८-६

इन दोनों में नभस् (श्रावण) मास से ही वर्षारम्भ की ओर संकेत है। तीसरे ज्योतिष- सम्बन्धी उपर्युक्त उद्धरणों में से प्रथम में चन्द्रग्रहण का नहीं, अपितु उसके मल (धब्बे) का उल्लेख है और द्वितीय में जो बात कही गयी है उस की जानकारी तो ऋग्वेद काल तक में थी। यास्क ने तो उसका स्पष्ट ही उल्लेख किया है। अत: कालिदास को वराहमिहिर का समकालीन नहीं माना जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत में निचुल और दिङ्नाग का नाम पाकर और दिङ्नाग का समय छठी सदी मान कर कुछ लोग उन्हें उनका पश्चाद्वर्ती बतलाते हैं। मेघदूत (श्लोक १४) —

स्थानादस्मात्सरस- निचुलादुत्पतोदङ्मुखः सन्,
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल- हस्तावलेपान्॥

इसके टीकाकार दक्षिणावर्त और मल्लिनाथ का कहना है कि निचुल रामगिरि के समीप रहने वाले कालिदास के सहाध्यायी थे। वह कालिदास के काव्यों पर होने वाले आक्षेपों का सहृदयता से निराकरण करते थे और दिङ्नाग हाथ फैला कर उनके काव्यों में दोष दिखाया करते थे। इसीलिये कालिदास ने रामगिरि को सरल निचुल का स्थान कहा है और मार्ग में दिङ्नाग के गर्व भरे स्थूल हाथों से बचकर जाने का निर्देश किया है। दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक थे और आचार्य वसुबन्धु के शिष्य। किन्तु यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि कीथ और मैकडानल दिङ्नाग का समय ४०० ई. के करीब मानते हैं। वामन की काव्यालङ्कार-सूत्र- वृत्ति में वसुबन्धु को चन्द्र गुप्त के पुत्र का मंत्री बतलाया है। यदि यह चन्द्रगुप्त प्रथम हो, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं तो वसुबन्धु का समय चौथी शताब्दी का पूर्वार्ध ही होगा और दिङ्नाग का काल भी ३५० ई. के आस-पास। दूसरे यदि 'दिङ्नागानाम्' में श्लेष मान लें तो बहुवचन की संगति कैसे बैठेगी ?

ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ के १२वें अध्याय में, जो कि ५८० ई. का ठहरता है, इस बात उल्लेख है कि यह ग्रन्थ विक्रमादित्य (शकारि) के आश्रित कविकालिदास का बनाया हुआ है, जो उनके नवरत्नों में एक थे। ये विक्रम यशोधर्मन् रहे होंगे। ज्योतिर्विदाभरण के अन्त में विक्रमादित्य की प्रशस्ति भी है। और उसकी शैली भी कालिदास से मिलती है। यह बात अब प्राय: मिथ्या सिद्ध हो चुकी है। ज्योतिर्विदाभरण को अब कोई प्रथम- कालिदास- कृत नहीं मानता। हो सकता है, यह किसी अन्य कालिदास द्वारा रचित हो।

प्रो. पी. सी. सेन गुप्त ने भी मेघदूत के 'आषाढ़स्य प्रशमदिवसे' 'प्रत्यासने नभसि' और "भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ" इन उल्लेखों के आधार पर गणित करके यह सिद्ध किया है कि आषाढ़ का यह प्रथम दिवस २० जून सन् ५४१ को था जबकि चान्द्र आषाढ़ की एकादशी को सौर आषाढ़ समाप्त हुआ था। इसी प्रकार उन्होंने शाकुन्तल के अन्तिम अंक के—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्।

इस श्लोकार्ध में वर्णित रोहिणी से युक्त चन्द्रमा के ग्रहण का हिसाब लगा कर बतलाया है कि उज्जैन में ऐसा खग्रास ८-११-५४२ में हुआ था जिसे कालिदास ने देखा होगा। अतः उनका समय छठी शताब्दी है। वास्तव में ऐसे स्थानों पर कवि को ज्योतिष गणना अभीष्ट नहीं है। उसका अभिप्राय सीधा सरल है और रोहिणी युक्त चन्द्रमा की उपमा को गणित में बदल देना कवि के साथ अन्याय करना हे।

इधर पूना के प्राध्यापक श्री टी. जी. माइणकर ने घनश्याम कवि की उत्तररामचरित आदि की टीकाओं में कालिदास के उद्धरणों के आगे 'इति रघुवंशे या 'मेघदूते ईश्वर कृष्णः' लिखा पाकर मत प्रस्तुत किया है कि सांख्य कारिका के रचयिता ईश्वर कृष्ण और कालिदास एक ही व्यक्ति थे। यदि यह बात मान ली जाय तो वह कवि के साथ दार्शनिक भी मान लिये जायँगे। डॉ. माइणकर ने नाटक कार और कवि कालिदास को पृथक माना है। डॉ. माइणकर के मत को विद्वानों का समर्थन नहीं मिल पाया यद्यपि इससे कालिदास की तिथि पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

वस्तुतः कालिदास की तिथि का वास्तविक ज्ञान तब तक संभव नहीं जब तक पुराणों में बिखरे सन्दर्भ, याज्ञिक परम्परा, ज्योतिष, और पुरातत्त्व आदि सभी को मिला कर समन्वित दृष्टि से उसपर विचार न किया जाय। अगले पृष्ठों में इसी दिशा में कुछ प्रयास किया गया है।

पौराणिक-सन्दर्भ

पौराणिक मान्यतायें और उनका विकास

कालिदास उस युग के रचनाकार थे जब वैदिक परम्पराओं का स्थान पौराणिक मान्यताऐं ले चुकी थीं। यद्यपि पुराण वेदों के उपवृंहण माने जाते थे और वे उनपर आस्था भी व्यक्त करते थे तो भी उन्होंने अपने स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित कर लिये थें। ये अपेक्षाकृत निम्न वैदिक स्तर के लोगों द्वारा पुरस्कृत कम पढ़े लिखे समाज में आदृत थे। वस्तुतः वैदिक काल में जो विश्वास और मान्यताऐं विश् (सामान्य जन) में प्रचलित थीं और उससमय महत्त्व नहीं पा सकीं, वे ही अब विस्फुटित होकर अग्र स्थान पर आ बैठी थीं। सौर, ब्राह्म, शैव, शाक्त और वैष्णव नामों से पृथक् सम्प्रदाय या आस्था केन्द्र स्थापित हो गये थे जिनमें प्रथम दो का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव धीरे धीरे कम होता गया। विद्वान् लोग प्रारम्भ से ही शिव के प्रति आस्थावान् थे किन्तु सामान्य गृहस्थ वैष्णव विश्वासों से जुड़े थे। शाक्त प्रारम्भ में शैवों का ही अंग थे किन्तु बाद में शैवों को पीछे छोड़कर प्रामुख्य प्राप्त करने में सफल हुए। इन दार्शनिक भेदों के अतिरिक्त पुराण ऐसी अनेक बातों का प्रतिपादन करते थे जिनका सम्बन्ध सामान्य जनजीवन से था। मिथक और पुराकथायें जिनमें सृष्टि विज्ञान, राजवंशचरित और अतिमाननीय कथायें और घटनाएँ सम्मिलित हैं, पुराणों की देन है। कालिदास ने अपनी कृतियों में उनका भरपूर उपयोग किया है। ये पौराणिक उल्लेख कालिदास के काल-निर्धारण में सहायक हो सकते हैं। उनकी कृतियों में उन मान्यताओं को छोड़कर जो तत्कालीन समाज के विश्वास का अंग बन गयी थीं और आज भी बनी हुई हैं, कुछ अन्य सन्दर्भ भी देखे जा सक्ते हैं। कालिदास की कृतियों की मूल कथायें भी पौराणिक हैं। विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् और कुमारसंभवम् की कथायें सीधे पुराणों से सम्बन्धित हैं। हाँ, विक्रमोर्वशीयम् का मूल उत्स अवश्य ही ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण है। रघुवंश में मनु,नन्दिनी, कामधेनु, लोकालोक अचल, भुजङ्ग-पिहित-द्वार पाताल लोक, शिव का कैलासगौर वृषभ, स्कन्द सेनानी,राजा में लोकपालों के अंश की अवस्थिति, शची, पुरन्दर, ब्रह्मा तथा उनकी मूर्ति विष्णु, सूर्य केहरित अश्व आदि अनेकों पौराणिक विश्वास इस प्रकार सरल भाव से बिखरे मिलते हैं, जैसे वे दैनन्दिन जीवन का भाग हों। उनमें सर्वाधिक प्रसंग हैं शिव से सम्बन्धित। मालविकाग्निमित्र के पूर्वरंग में शिव को कृत्तिवासस्, अर्धनारीश्वर, अष्टविग्रह या अष्टमूर्ति बतलाया है—'यः स्वयं कृत्तिवासाः' "कान्तासंमिश्रदेहः", "अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभि र्विभ्रतः" आदि विशेषण इसके पोषक हैं। विक्रमोर्वशीय के पूर्वरंग में उन्हें स्थाणु कहा है और अभिज्ञान शाकुन्तल में पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्रमा यजमान (आत्मा) ये आठ शिव की मूर्तियाँ बतलायी हैं जो लिङ्गादि पुराणों के अनुसार हैं—

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री

ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषय- गुणा या स्थिता व्याप्यविश्वम्।

यामाहुः सर्वबीज- प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नःस्तुनुभि रवतुवस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

रघुवंश के प्रथम श्लोक में भी उन्हें, अर्धनारीश्वर कहा है। रघुवंश में उनके उमापति, वृषाङ्क, त्रयम्बक, महेश्वर आदि विशेषण पुराण- प्रयुक्त हैं और कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव में तो वह सीधे मानवीय भावभूमि पर उतर आये हैं। शिव की यह स्थिति चतुर्थ शताब्दी ईसवी से पूर्व सम्भावित नहीं हैं। यही बात इन्द्र के विषय में भी है। शतक्रतु सम्पन्न कर जो राजा सर्वप्रथम नाक लोक का अधिकारी, शासक और देवराज बना वह वेदों में उल्लिखित इन्द्र कदापि नहीं है। वह विशुद्ध पौराणिक इन्द्र के साथ भी संपृक्त कर दिये गये हैं। वह अभी भी यज्ञांश भागी है। देवों में प्रथम है, कुलिशधारण करता है, वृत्र- हन्ता है किन्तु अब नाक से भी अधिक पृथिवी पर विचरण करता है। पृथ्वी के नरेशों का उसके पास आना जाना लगा रहता है। संकट में वह उन्हें सहायता के लिये बुलाता है। गूढ़ाकार बन कर वह चौर्य- कर्मकर सकता है। अस्तु, इनके विषय में अन्यत्र सविस्तर चर्चा की गयी है। उनके अतिरिक्त कालिदास ने अनेक पौराणिक कथाओं का अल्लेख किया है। यथा—

१-अत्रि की नेत्र-ज्योति चन्द्र—

अथ नयन- समुत्त्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः (रघु. २-७५)

अत्रि के नेत्र से उत्पन्न ज्योति (चन्द्र) को आकाश ने धारण किया। यह मान्यता पौराणिक है जो धीरे समाज में रूढ़ हो गयी। इसका उल्लेख हरिवंश में है। कहा है—

नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः।

तद्गर्भ- विधिना हृष्टा दिशो देव्यो दधुस्तदा॥

समेत्य धारयामासु र्न च ताः समशक्नुवन्।

स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रधावितः॥

पपात भासयँल्लोकान् शीतांशुः सर्वभावनः॥

इसी को आधार मान कर हलायुध ने कहा —'ऋक्षेशः स्यादत्रिनेत्र-सम्भूतः'।

२-गंगा द्वारा शिव-वीर्य- धारण—

सुर-सरिदिव तेजो वह्नि- निष्ठ्यूतमैशम्। (रघु. २-७५)

गङ्गा ने वह्नि द्वारा फेंका हुआ शिव का वीर्य ग्रहण किया। स्कन्द के जन्म की यह कथा कालिदास ने महाशिवपुराण के पार्वती खण्ड से ली है, और कुमार संभव में उसे कलात्मक विस्तार दिया है। रामायण में भी यह बात कही गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितः सर्वनिर्जरैः।
अभक्षच्छाम्भवं वीर्यं चञ्च्वा तु निखिलं तदा॥
गङ्गायां प्राक्षिपत्तूर्णमसह्यं दाहपीडितः॥
गङ्ग्यापि च तद्वीर्यं दुःसहं परमात्मनः।
निक्षिप्तं हि शरस्तम्वे तरङ्गैः स्वैर्मुनीश्वर ॥?
पतितं तत्र तद् रेतो द्रुतं बालो वभूव ह।
ग्रहीतुं मनश्चक्रुस्सर्वास्ताः कृत्तिकास्त्रियः॥
वादो वभूव तासां तद्- ग्रहणेच्छापरो मुने।
तद्वाद- शमनार्थं स षणमुखानि चकार ह।
अमुं रुदन्तमानीय स्तन्यपानेन ताः प्रभो।
वर्धयामासुरीशस्यसुतं तत्र रवि- प्रभम्।

३-राजा में देवांश—

नरपति- कुल- भूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोक- पालानुभावैः। रघु. २-७५

मनु के अनुसार—

इन्द्रानिल- यमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्र- वित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येषः सर्वभूतानि तेजसा ॥ ७-४५ ॥

४-अगस्त्य की दिशा—

अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ। रघु. ४-४४

अगस्त्य की कथा पौराणिक है। ब्राह्म पुराण में कहा है—

अगस्त्यो दक्षिणामाशांमाश्रित्य नभसि स्थितः।
वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यवातापि-मर्दनः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 83 362.9

५-भगीरथ द्वारा गङ्गा-धारण—

बभौ हर-जटा-भ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः। रघु: ४-३२

भगीरथ द्वारा शिव की जटा से निष्पतित गङ्गा को प्रवाहित करने की कथा अनेक- पुराण- प्रसिद्ध है और लोक में भी सुप्रथित है।

वाल्मीकीय रामायण के बालकाल में ३८ से ४४ वें अध्याय तक यह कथा मिलती है। वहाँ कहा है कि महान् तप के उपरान्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने भगीरथ से वर माँगने को कहा तो भगीरथ ने वर माँगा—सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमप्रुयुः-गङ्गायाः सलिल क्लिन्ने भस्मन्येषिमहात्मनाम्—स्वर्गं गच्छेयुरन्तं सर्वे च प्रपितामहाः। औरब्रह्मा ने वर दिया—

मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ।

एवं भवतु भद्रं तेइक्ष्वाकु-कुलवर्धन॥

गङ्गायां पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते—

तां वै धारयितुं राजन्नान्यं पश्यामि शूलिनः।

उमापतिः पशुपतिः राजानमिदमव्रवीत्—

प्रीतस्नेहंनरश्रेष्ठ करिष्यामि प्रियं तव।

शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम्।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

ततो हैमवती गङ्गा सर्वलोक नमस्कृता—आकाशादापतद्राम, शिवे शिव शिरस्युत। सा कथं चिन्महीं गन्तुं नाशक्नोद्यत्ल मास्थिता-नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमध्यतः- तामपश्यत्पुनस्तत्र तपः परममास्थितः-—विससर्जततो गङ्गां हरो विन्दुसरः प्रति।

113484

तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे।

भगीरथो हि नृपति र्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः—प्रायादग्रे महाराजस्तं गङ्गा पृष्ठतोऽभवत्। ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुत- कर्मणः—गङ्गा संप्लावयमास यज्ञवाटं महात्मनः। तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धो जह्नुश्च राघव- अपिवत्तु जलं सर्वं गङ्गायाः परमाद्भुतम्, ।ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च सुविस्मिताः— पूजयन्तिमहात्मानं जह्नुं पुरूषसत्तमम्। तत स्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु:—तस्माज्जह्नुसुता प्रोच्यते जाह्नवीति सा । भगीरथोऽपि राजर्षि गङ्गामादाय यत्नतः—पितामहान् भस्मकृतानपश्चाद्गतचेतनः ।

अथ तद् भस्मनां राशिं गङ्गासलिमुत्तमम्

प्लावयद्धूत पाप्मानः स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तम । वा. का. प्र. ४३, ४४

महाभारत में अनेक बार (वन. १०८, १०९ अध्याय) इस कथा का उल्लेख है ।

६-विष्णु का अवतार—

वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरूपेयिवान् ।

उन्मनाः प्रथम-जन्म-चेष्टितान्यस्मरन्नपि वभूव राघवः ।

रघु. ११-२२

वामनावतारं और रामावतार में विष्णु के एकत्व का प्रतिपादक यह श्लोक अनेक पुराणों में वर्णित इन दोनों- वामन और राम की कथाओं पर आश्रित है । साथ ही यह पुनर्जन्म और प्राक्तन जन्म के संस्कारों की स्थिरता की ओर भी इंगित करता है ।

(७) गौतमवधू—

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारू गौतम-वधूः शिलामयी ।

स्वं वपुः स किल किल्विषच्छिदां राम-पाद-रजसामनुग्रहः ।

रघु. ११-३४

गौतम की पत्नी अहल्या की कथा रामायण के साथ कई पुराणों भी में मिलती है । इसका मूल ऋग्वेद में है । वहाँ अहल्या भूमि का जार इन्द्र बतलाया गया है । यह रूपक शैली में वैज्ञानिक तथ्यों को प्रकाशित करने की वैदिक शैली का अच्छा उदाहरण है किन्तु पुराणकारों ने उसके चारों ओर ऐसा जाल बुन दिया कि उसने ऐतिहासिक घटना का- सा स्वरूप ग्रहण कर दिया ।

(८) परशुराम और कार्तवीर्य—परशुराम द्वारा यज्ञधेनु और वत्स का हरण करने वाले कार्तवीर्य (हैहय) का वध और उसके द्वारा राम को विष्णु कहना पुराणों के अनुसार ही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ

धेनु वत्सहरणाच्चहैहयस्त्वं च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः ।रघु.११-७४

महाभारत में कहा है—

प्रमत्तश्चाश्रमात्तस्य होमधेन्वाततो वलात्।

जहार वत्सं क्रोशन्त्या वभज्ज च महाद्रुमान्॥

राम को विष्णु का रूप मानना भी—

गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितोह्यसि मया दिदृक्षुणा॥

वही ८५

महाभारत सहित अनेक पुराण रामावतार की कथा कहते हैं। परशुराम की स्वोक्ति—

राजसत्त्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमंयदा

नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः।

वही ९०

परशुराम कहते हैं कि अब मैं माता से प्राप्तक्षत्रियोचित राजस बल का परित्याग कर पिता से प्राप्त ब्राह्मणोचित शमादि सात्त्विक वृत्ति को प्राप्त कर चुका हूँ। यह बात भी पौराणिक वार्ता के अनुसार है।

भृगु प्रतापी ऋषि थे। उनके पुत्र च्यवन भी ऋषि हुए। इन दोनों के पौनःपुनिक उल्लेख वेद संहिताओं में मिलते हैं। च्यवन का विवाह सत्यवती के साथ हुआ। एक बारभृगु जब पुत्रवधू को देखने आये तो उसकी सुश्रूषा से प्रसन्न हो कर उन्होंने उसे वर माँगने को कहा। तब उसने अपने लिये वेदादि शास्त्रों का ज्ञाता तथा माता के लिए अस्त्र शस्त्रादि में निष्णात पुत्र माँगा। तब भृगु ने उसे दो चरू देते हुए कहा—तुम्हारी माता पीपल वृक्ष का आलिङ्गन कर रक्त चरू का भक्षण करेगी और तुम उदुम्बर वृक्ष का आलिंगन कर इस श्वेत चरू का। ऋतु काल के बाद ऐसा करना। सत्यवती कान्यकुब्ज नरेश गाधि की पुत्री थी। उसके तथा उसकी माता के चरू भ्रान्तिवश बदल गये। परिणाम की चिन्ता से भृगु ने सत्यवती से कहा कि अब तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होकर भी अस्त्रविद्या में निपुण और तुम्हारी माता का पुत्र क्षत्रिय होकर भी वेदादि का ज्ञाता होगा। सत्यवती ने भूल के लिए बार बार क्षमायाचना की तो भृगु ने कहा कि मेरे दिये लाल चरू के फल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन सम्भव नहीं है किन्तु पुत्र के बदले अब तुम्हारा पौत्र वाह्मण हो कर क्षत्रिय कर्मकारी होगा। फलस्वरूप गाधि के पुत्र विश्वामित्र और च्यवन के जमदग्नि हुए और उनके पौत्र परशुराम महापराक्रमी योद्धा बने। यह बात महाभारत और पुराणों में उल्लिखित है।

९-हिमालय दोहन—

कुमार सम्भव में कहा है—

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥ कु.सं.१-२

अर्थात् सारे पर्वतों ने हिमालय को वत्स बनाया और पृथिवी को धेनु। तब मेरु ने दोग्धा बनकर उससे भास्वान् रत्न और श्रेष्ठ औषधियाँ दुहलीं। यह बात भी पुराणों की कल्पना के अनुसार है। विष्णु पुराण ने कहा है—"गौर्भूत्वातु वसुन्धरा।" तथा—"गौर्भूमिरचलाः सर्वे कर्तारोऽत्र पयांसि च—औषध्यश्च भास्वन्ति रत्नानि विविधानि च॥ वत्सश्च हिमवानासीद् दोग्धा मेरुर्महागिरिः॥" भागवत (४-१८) में कहा है कि पृथु ने गोरुपधरा पृथ्वी को मनु आदि वत्सों के माध्यम से दुहकर नाना औषधियाँ और रत्न प्राप्त किये—

वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत् सकलौषधीः।

तथाऽपरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः॥

ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम्॥ श्लोक १२,१३

पृथु द्वारा धरित्री के दोहन की कथा पुराणों की प्राचीनतम कथाओं में है और इसे प्रायः भिन्न-भिन्न पुराणों में मामूली अन्तर के साथ स्थान मिला है।

शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।

ओषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च॥

वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरू र्दोग्धा महागिरिः।

पात्रं तु शैलमेवासीत् तेन शैलाविवर्धिताः॥ हरिवंश १-६-४; ४१

(१०) शैलाधिपत्य

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरण-क्षमं च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापतिः कल्पित-यज्ञमागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठित्।

कुमार १-१७

यज्ञाङ्गयोनित्व के विषय में विष्णु पुराण का कथन है —"यज्ञाङ्गार्थं मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः।" शैलाधिपत्य की पुष्टि ब्रह्माण्ड पुराण करता है—शैलानां हिमवन्तं च नदीनां चैवसागरम्—गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं विधिः।

११-मेना—

तां मानसीं मेरुसखः मेनां मुनीनामपि माननीयाम्। वही १-१८

तथा—

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिवद्धसख्यम्।

वही १-२०।

मेना के विषय में पुराण कहता है—

तेभ्यः शुभास्पदं जज्ञे मेनका हरिणी तथा।

ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज॥

व्रह्माण्ड पुराण में कहा है—

तेषां तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः।

पत्नी हिमवतो यस्याः पुत्रो मैनाक उच्यते॥

१२-सती-शरीर-त्याग—

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्यकन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्ट-देहा तां जन्मने शैलसुतां प्रापदे॥

कुमार० १-२१

सती के देहत्याग का भागवत में प्राप्त विवरण इस श्लोक से पूरी तरह मेल खाता है। यह पुनर्जन्म के विषय में भारतीय आस्था को व्याख्यायित करता है—

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ। ४-९

अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यतीरुषा।

जगर्ह सामर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम्

स्पृष्ट्वाजलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योग-पथं समाविशत्।

४-२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।।
शनैर्हृदिस्थाप्य धियोरसि स्थितंकण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ।

४-२६

ददर्शदेहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ।।

४-२७

इस तथ्य की आवृत्ति कुमार० १-५३ में भी हुई है ।

१३-महावराह—

आसक्तबाहुलतया सार्धमुद्धृतयाभुवा ।
महावराह- दंष्ट्रायां विश्रान्ताः प्रलयापदि ।। कुमार. ६-८

महावराह द्वारा पृथिवी के उद्धार की कथा प्रायः सभी पुराणों में मिलती है । यह कथा इतनी प्रसिद्ध थी कि विदिशा के पास उदयगिरि गुफा में इस दृश्य का उत्कीर्णन हुआ था । यह उत्कीर्णन अपने ढंग का अपूर्व है । भागवत की उक्ति है—

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।

३-१३-३१

तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाङ्ग।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकै र्विरञ्चि मुख्याउपतस्थुरीशम् ।।

वही ३३

महाभारत में भी यह प्रसंग आया है । एक बार जब पृथिवी भार से अत्याक्रान्त हो गयी तो वह नारायण के शरण में गयी और उनसे भार-मुक्ति के लिये प्रार्थना करने लगी । तब नारायण ने वराह का रूप धारण कर उसका उद्धार किया ।

ततो वराहः संवृत्त एकशृङ्गो महाद्युतिः,
स गृहीत्वा वसुमतीं श्रृङ्गेणैकेन भास्वता ।
योजनानां शतं वीर समुद्धरति सोऽक्षरः ।।
तस्यां चोद्धार्यमाणायां संक्षोभः समजायत ।। वन. १४२-४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४-रन्तिदेव—

व्यालम्वेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्।

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥ मेघ. १-४५

श्लोक में कहा है कि चर्मण्वती (चम्बल) नदी महाराजरन्तिदेव की विग्रहवती कीर्ति है जो उन्होंने यज्ञों में गायों की बलि से अर्जित की थी। पुराण के अनुसार उन्होंने बीससहस्त्र गायों की बलि दी थी और गायों के उधेड़े हुए चर्मों से जो रक्त प्रवाहित हुआ वह चर्मण्वती के रूप में परिणत हुआ। रन्तिदेव चरित में कहा है—

अथप्रीतोराजा पशु- निवह मालभ्यविधिना,

बहूनीजे यज्ञान् बहुमतिपदं भू-दिवि-षदाम्।

विशस्तानां तस्यां मखभुवि पशूनामयुतशः,

स्त्रवन्ती सस्यन्दे क्षतज विसरैश्चर्मगलितैः॥

चर्मण्वतीति तवकीर्तिरनन्त कीर्तेः शश्वत्पुनातु धरणीं सरिदात्मनेति। रन्तिदेव दशपुर के राजा थे। महाभारत में कहा है—

उपातिष्ठन्त पशवः स्वयं तं संशितव्रतम्।

ग्राम्यारण्या महात्मानं रन्तिदेवं यशस्विनम्॥

महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजे यतः।

ततश्चर्मण्वीतत्येवं विख्याता सा महानदी॥

शान्ति० २९ ।१२२,३

१५-सहस्त्रबाहु कार्तवीर्य—

हैहयराज सहस्त्रबाहु कार्तवीर्य की कथा पुराण प्रसिद्ध और भार्गव परशुराम से सम्बद्ध है। पुराणों के अनुसार उसे दत्तात्रेय का वर प्राप्त था। वह स्वयं ब्रह्मविद् योगी था। एक बार जब वह अपने बाहुओं से नर्मदा की धारा को रोककर रमणियों के साथ जल क्रीड़ा कर रहा था तो दिग्विजय के लिए निकला हुआ इन्द्र- विजयी रावण वहाँ पहुँचकर उससे युद्ध करने लगा। तब कार्तवीर्य ने उसे धनुष की डोरी से कस कर बन्दी बना लिया और तब तक नहीं छोड़ा जब तक रावण ने उसे प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर लिया। महाभारत के अनुसार इसे अग्नि के वंशज प्रतीप को अग्नि देव ने वरदान दिया था कि तुम्हारे नगर को जीतने के लिए आने वाले शत्रुओं को मैं स्वयं जला दिया करूंगा। इसी लिये इक्कीस बार क्षत्रियों को जीतने वाले परशुराम इसे नहीं जीत पाये। कालिदास ने इसी महाभारतीय तथा पौराणिक कथा की ओर संकेत किया है—

ज्याबन्धनिष्पन्द- भुजेन यस्य विनिश्वसद्वक्त्र- परम्परेण।

कारागृहे निर्जित- वासवेन लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात्।

रघु. ६-४०

तथा—

आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम्।

धारां शितां रामपरश्वधस्य सम्भावयत्युत्पलपत्रसाराम्।।वही ४२

इस घटना का वर्णन रामायण उत्तर काण्ड के ३२-३३ अध्यायों में विस्तार के साथ हुआ है। रामायण के अधिकांश बाल और उत्तरकाण्ड पुराण ही है।

कालिदास पौराणिक वातावरण से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी रचनाओं में पदपद पर पौराणिक सन्दर्भ और मान्यतायें इतनी सहजता से गुम्फित हो गयी है कि उनकी ओर सामान्यतया ध्यान ही नहीं जाता। इसका एक और प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान भारतीय आर्यजनों के जीवन में ये बातें पूरी तरह समाहित हो चुकी हैं और हमारे चिन्तन और व्यवहार के साथ भाषा का भी अपरिहार्य अंग बन गयी हैं। उदाहरणार्थ गङ्गा को सामान्यतया भागीरथी कहा जाता है। पढ़े लिखे लोग जाह्नवी भी कहते हैं। समुद्र का एक सामान्य नाम सागर भी है। ये नाम सगर, भगीरथ और जह्नु की पौराणिक कथाओं के परिणाम हैं। हमारे अनेकों व्यक्तिवाचक नाम चाहे वे पुरुषों और स्त्रियों के हों या नगरों, नदियों और पर्वतों के, किसी न किसी रूप में पुराणों से जुड़े हैं। पौराणिक आख्यानों में कुछ बहुत प्राचीन है और कुछ नवीन भी। उनकी उच्चतमकाल-सीमा वैदिक युग का स्पर्श करती है तो निम्नतम चतुर्थ से अष्टम ईसवी का। यह बात अलग है कि कोई आख्यान या मान्यता समाज में प्रचलित रह कर भी साहित्य में देर से स्थान पा सकी हो। फिर मेरा विश्वास है कि केवल उन बातों को छोड़कर जो विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदायों की निजी वस्तु हैं, सामान्य आस्था और विश्वासों से सम्बन्धित कथाओं का स्वरुप आठवीं शती तक अवश्य ही निर्धारित हो चुका था। आज इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराकथाओं में से कुछ को छोड़कर शेष के विषय में कुछ कह सकना कठिन है। मजे की बाद यह है इनमें से प्राय: अनेक पुराणों का अंग हैं और सम्पूर्ण देश में समान रूप से स्वीकृत हैं। कालिदास के समय में भी पुराकथायें जीवन का अंग थीं और पुराणों का तो प्राण ये कथायें ही हैं। विश्वामित्र तक मार्ग में राम को पुराकथायें सुनाते चलते हैं। ये इतनी मनोरंजक है कि इनके कारण दोनों बालकों का मार्ग सरलता से कट गया। बाद में इन कथाओं में स्वयं विश्वामित्र की भी कथा जुड़ गयी। इन सब के प्रभावों को निकाल दें तो हमारी भाषा, साहित्य और मान्यताओं का भण्डार ही रिक्त हो जायगा। कालिदास की रचनाओं में इनमे बहुत सी अनायास ही प्रविष्ट हो गयी हैं। इनमें कुछ के सन्दर्भ निम्नलिखित हैं। ये सब इस सीमा तक स्वीकृत हैं कि किसी पौराणिक प्रमाण या उद्धरण की अपेक्षा नहीं करतीं।

(१६) बलराम— बलराम, रेवती और उनकी हालाप्रियता और साथ ही कृष्ण के प्रति प्रेम के कारण उनके द्वारा भारत युद्ध से निरत रहकर कुरुक्षेत्र में तटस्थ पड़े रहना निम्नलोक में संकेतित है—

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां,
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना,
मन्तः शुद्धस्त्वमपिभविता वर्णमात्रेण कृष्णः॥

मेघ १-४९

इस श्लोक में बलराम का लाङ्गली (हल-ध्वज) होना, हालासवी, तथा रेवती का पति होना तो स्पष्ट है ही। कौरवों और पाण्डवों के प्रति उनका समान स्नेह और सारस्वत- जलसेविता भी व्यक्त की गयी है। मल्लिनाथ ने कहा है —"वहिः शुद्धोऽपि सूतवध- प्रायश्चित्तार्थं सारस्वत- सलिलसेवी तत्रभवान् वलभद्र एव निदर्शनम्।" यह संदर्भ महाभारत और हरिवंश के आधार पर है। महाभारत शल्यपर्व में कहा है—

पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन् युद्ध उपस्थिते।
आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः॥
साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्तास्मि केशव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम्॥

तेषामपि महा बाहो साहाय्यं मधुसूदन।

क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रेवचस्तदा॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।

तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥

(म. भा. शल्य-३५/१,२तथा १२, १३)

कवि ने शुभ्रवर्ण कैलास-शिखर पर पसरे मेघ की उपमा हलधारी बलराम के नील-श्यामल वस्त्रों से दी है। बलराम का वर्ण गौर था और वे नीलवस्त्र पहनते थे। यह बात हरिवंश आदि पुराणों में कही गयी है।

अंसन्यस्ते सतिहलभृतो मेचके वाससीव। मेघ.१-५९

१९-जाह्नवी—

जह्नोः कन्यां सगरतनय- स्वर्ग- सोपान- पंक्तिम् । मेघ०. १-५०

गङ्गावतरण की कथा पौराणिक और लोक विश्रुत है। वह हिमालय से उतरी तो शम्भु कीजटाओं में लीन हो गयी। इस बात को कालिदास ने यों कहा—

गौरी वक्र-भ्रकुटि- रचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्भिहस्ता । वही

भगीरथ ने तप के द्वारा शिव को प्रसन्न कर उसे पृथिवी पर उतारा तो पूराप्लुत करने से क्रुद्ध जह्नु उसे पी गये। बाद में भगीरथ के अनुनय से उन्होंने उसे फिर प्रकट किया। तब से वह जह्नु की पुत्री कहलाने लगी।

२०-कुरूक्षेत्र—

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः,

क्षेत्रं क्षत्र-प्रधन- पिशुनं कौरवं तद् भजेथाः।

राजन्यानां शितशरशतै र्यत्र गाण्डीव-धन्वा

धारापातै स्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि॥ मेघ. १-४८

गाण्डीवधारी अर्जुन के द्वारा तीव्र वाणों से क्षत्रियों के शिरच्छेदन की भूमि कुरू क्षेत्र से हम सब परिचित ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१-कामधेनु—

कामधेनु और उसकी पुत्री नन्दिनी की कल्पना पौराणिक है। रघुवंश में कामधेनु को वरूण के दीर्घसत्र वाले यज्ञ के लिए हविष् (दुग्ध, घृत) प्रदान करने के निमित्त पाताल लोक में गया हुआ बतलाया है और पाताल का द्वार सर्पों से अवरूद्ध।

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः।

भुजङ्ग- पिहित- द्वारं पातालमधितिष्ठति॥ रघु. १-८०

दिक्पाल वरूण द्वारा पाताल लोक में दीर्घसत्र का अनुष्ठान आश्चर्यजनक है। पाताल लोक और भुजङ्ग पिहित द्वार पौराणिक उपज है। पुराणों मेंवरूण का स्वरूप भी वैदिक वरूण से भिन्न है।

२३-कपिल कथा—

अतोयमश्वः कपिलानुकारिणा पितु स्त्वदीयस्य मयापहारितः।

अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य सन्ततेः।

रघु. २-५०

पौराणिक कथा है कि सगर के अश्वमेध का अश्व इन्द्र ने चुरा कर पाताल में उस स्थान में ले जाकर बाँध दिया जहाँ कपिल तप में लीन थे। सगर के साठ सहस्र पुत्र अश्व के सहसा अदृश्य हो जाने पर हतप्रभ रह गये और उसे ढूँढते-ढूँढते थक गये तो पृथिवी को खोद कर पाताल में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होने जब कपिल के समीप अश्व बँधा देखा तो वे क्रुद्ध होकर उन्हें भला-बुरा कहने लगे। कपिल का ध्यान भंग हो गया और उन्होंने ज्यों ही नेत्र खोले कि उनसे निकली अग्नि से वे साठों हजार राजकुमार जल कर भस्म हो गये। इन्हीं पूर्वजों को तारने के लिए भगीरथ गंगा को पृथिवी पर लाये जो सगरपुत्रों द्वारा खोदी गयी भूमि के मार्ग से पाताल में पहुँची और उसके स्पर्श से उन सबकी मुक्ति हुई। सगर पुत्रों के द्वारा उत्खनित भूमि में स्थित जलराशि सागर कहलायी।

२४-मनु—

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।

आसीन् महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव। रघु. १-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि मनु की चर्चा छान्दोग्य तथा शतपथ में भी है किन्तु उनका यह रूप केवल पुराणप्रोक्त है। "रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनो-र्वत्मर्नः परम्-नव्यतीयुः प्रजास्तस्य"। यह भी इसी का विवरणमात्र है।

२५-लोकालोक पर्वत—

प्रकाशश्चा प्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः। रघु. १-६८

लोकालोक पर्वत की कल्पना भी पौराणिक है। भागवत ५-२० में इसका उल्लेख है।

२६-कल्पतरू—

आसीत् कल्पतरूच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि। रघु. १-७५

कल्पवृक्ष की कल्पना इसी प्रकार की है। कामधेनु के समान कल्पवृक्ष भी काल्पनिक है।

२७-दक्षसुता और चन्द्र—

नरेन्द्र कन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्ष-सुता इवावभुः।

रघु.३-३३

दक्ष की सत्ताईस अश्विनी आदि कन्याओं के चन्द्रमा के साथ परिणय की कथा कई पुराणों में है। कालिकापुराण के बीसवे अध्याय में कहा है—

सोमो दाक्षायणीः कन्याः सप्तविंशति- संख्यकाः।

अश्विन्याद्या वरवधू र्भायार्थं परिणीतवान्। १४०

यद्यपि इस पुराण में कहा है कि इनमें से केवल रोहिणी के साथ रमण करने और शेष की उपेक्षा करने के कारण दक्ष ने चन्द्रमा को यक्ष्म रोग से ग्रस्त हो जाने का शाप दिया था।

क्षयो नाम महारोगो नासिकाग्राद् विनिर्गतः।

प्रेषितः स तु चन्द्राय दक्षेण मुनिना ततः,

प्रविष्टश्च ततो देहे क्षपितस्तेन चन्द्रमाः। १२४ वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८-सूर्य के अश्व—

ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः । रघु. ३.२

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार विद्याओं की चर्चा मनुस्मृति में मिलती है । चारों दिशाओं से उनका साम्य बताकर सूर्य द्वारा सात पवनातिपाती पीतवर्ण अश्वों द्वारा उन्हें अतिकान्त करने की पौराणिक कल्पना सामान्य प्राकृतिक तथ्य को लेकर की गयी । इस कल्पना का उपजीव्य ऋग्वेद के सूर्य सूक्त हैं ।

२९-प्रजापति—

अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ।
स्वमूर्ति भेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ।

रघु. ३.२७

जैसे ब्रह्मा सृष्टि को अपने ही मूर्ति- भेद अर्थात् अवतार विशेष के द्वारा सुस्थिर मानते हैं वैसे ही दिलीप रघु के द्वारा अपने वंश को स्थितिमान् मानते थे । विष्णु ब्रह्मा का दूसरा रूप हैं यह कल्पना पूर्व पुराण काल की है । उत्तरकाल में विष्णु प्रधान और ब्रह्मा गौण ठहरा दिये गये थे ।

३०-कुम्भयोनि —

प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोने र्महौजसः । रघु. ४-२१

अगस्त्य कुम्भ से उत्पन्न हुए, यह कथा महाभारत और पुराणों में है । उनके द्वारा समुद्र- पान की कथा, शरद् में इस नक्षत्र के उदय के साथ जल सूखना प्रारम्भ होने से गढ़ ली गई ।

३१-भगीरथ—

वभौहर- जटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः । रघु. ४-३२

गङ्गावतरण की कथा रामायण बालकाण्ड में ३८ से ४४वें अध्याय तक विस्तार के साथ वर्णित है ।

३२-उदधि मार्ग—

अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ । रघु. ४-५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रसंग रामायण युद्ध काण्ड के २१वें और २२वें अध्याय में आया है।

३३-कैलासनाथ—

सामन्त- संभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसाजिगीषुः।

रघु. ५-२८

कैलास नाथ का अर्थ शिव भी है और कुबेर भी। उत्तर दिशा में यक्षाधि पति कुबेर दिक्पाल हैं- यह धारणा पुराणों की है। राजा होने से रघु में उनका अंश भी था—

अष्टानां लोकपालानामंशाज्जायते नृपः। मनु.

स्वयं कालिदास ने ही कहा—

"सुरेन्द्रमात्राश्रित- गर्भ- गौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया. . ."

रघु० ३-११

फिर उन्हीं कुबेर को सामन्त समझकर रघु उनसे युद्ध का उनका कोष लूटने किस प्रकार जा रहे थे। एक विद्यार्थी को गुरू-दक्षिणा की राशि देने के लिए कुबेर को लूटना नैतिक दृष्टि से कहाँ तक उचित था, यह बात विचारणीय है। फिर रघु अभियान पर निकल भी नहीं पाये कि उनके कोष गृह में आकाश से सुवर्ण की वर्षा हो गयी। कालिदास जैसे महान कवि की लेखनी से ऐसी अविश्वसनीय बातें कहाँ तक उचित हैं!

हिरण्मयी कोषगृहस्य मध्येवृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः। वही ५-२९

३४-सोमपुत्री नर्मदा—

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः।

रघु. ५-५८

दक्षिण भारत में नर्मदा का वही स्थान है जो उत्तर भारत में गङ्गा का। स्कन्दपुराण में इसका विशेष महत्त्व वर्णित है और इसे सोम से उत्पन्न बतलाया है। अमरकोष में भी इसे सोमोद्भवा कहा है—"रेवाति नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका"। सोमोद्भवत्व की कथा भी स्कन्द के रेखाखण्ड में आयी है। गङ्गा और नर्मदा के प्रति पवित्रता और पूज्यत्व का भाव पुराणों की देन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५-कालिय नाग—

त्रस्तेन ताक्ष्यात् किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षः स्थल-व्यापि रूचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम्।

रघु. ६-४९।

यमुनावासी कालियनाग का गरूड़ के भय से वहाँ आकर छिपना, सुषेण द्वारा कालिय को अभय प्रदान कर गरूड़ को उसकी हत्या से विरत करना और प्रत्युपकार- स्वरूप कालिय द्वारा सुषेण को मणि प्रदान करना कवि की अपनी कल्पना हो सकती है। हो सकता है किसी पुराण में भी इसका उल्लेख हो।

३६-विन्ध्य और अगस्त्य—

विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रे र्निःशेषपीतोज्झित- सिन्धुराजः।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्र-मूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः।

रघु. ६-६१

इस श्लोक में अगस्त्य को विन्ध्य का संस्तम्भक अर्थात् आगे या ऊपर बढ़ने से रोक देने वाला और सुमुद्र का सम्पूर्ण जल पी कर फिर उसे बाहर निकाल देने वाला कहा है। ये बातें भी पुराणानुसारी हैं। पूर्वकाल में सूर्य से स्पर्धा कर विन्ध्य पर्वत ऊपर की ओर बढ़ने लगा। तब देवताओं के साथ इन्द्र ने उसे रोकने के लिए अगस्त्य से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्य दक्षिण दिशा की ओर जाने लगे। विन्ध्य उनका शिष्य था। प्रयाण के समय उसने लेट कर गुरू अगस्त्य को साष्टांग प्रणाम किया तो उन्होंने विन्ध्य से कहा कि जब तक मैं वापिस लौट कर न आऊँ तुम यों ही पड़े रहना। उठना मत। अगस्त्य लौटे नहीं। तब से विन्ध्य उसी प्रकार भूमि पर लम्बा लेटा हुआ है।उठता नहीं। अगस्त्य दक्षिण की ओर गये थे, अतः कालिदास ने दक्षिण दिशा को 'अगस्त्याचरिता आशा' कहा है—

अगस्त्याचरितामाशामनाशास्य- जयो ययौ। रघु. ४.४४

वाल्मीकीय रामायण में कहा है—

नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणादिक् प्रदक्षिणा।

मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्यच लोपकः—संदेशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते। वा०रा०-अरण्य. ११-८६ इसी अध्याय में बाल्मीकि ने वातापि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके भ्राता इल्वल की अगस्त्य के द्वारा किये वध की कथा भी दी है। कहीं कहीं उनके द्वारा समुद्र के शोषण की भी कथा मिलती है।

३७-परशुराम और समुद्र—

रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत् सह्यलग्न इवार्णवः। रघु. ४-५३

परशुराम ने अपने अस्त्रों से समुद्र को बहुत पीछे हटा दिया था। महाभारत में कहा है —

त्रिसप्तकृत्वः पृथिवींकृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः- इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत। सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णाद्द्विजः- रामं प्रोवाचनिर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया।

स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम्-
इषुपाते युधां श्रेष्ठ कुर्वन् ब्राह्मण-शासनम्।

द्रोणपर्व. ७०- २० -२३

३८-अहल्यामोक्ष—

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारू गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्विषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः।

रघु. ११-३४

अहल्या के शाप और पुनरूद्धार की कथा बहुश्रुत है। वाल्मीकि ने बालकाण्ड में इसका विशद वर्णन किया है। अहल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी। उनका आश्रम मिथिला के जनपद के एक उपवन में था। गौतम तपस्या- रत रहते थे और पत्नी अहल्या थी अत्यन्त सुन्दरी, कम आयु की—

तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः।
मुनिवेषधरोभूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत्॥ वा. रा. बालका.४९-१०
ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते।
संगमन्त्वहमिच्छमि त्वया सह सुमध्यमे॥ १८
मुनि-वेषं सहस्रास विज्ञाय+ रघुनन्दन-
मतिंचकार दुर्मेधा देवराजः कुतूहलात्॥ १९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुश्रोणि परितुष्टोऽमि गमिष्यामि यथागतम्।
एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात्ततः ॥ २२
अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनि वेषधरं मुनिः—
दुर्वत्तं-वृत्तसंपन्नो रोषाद् वचन मब्रवीत् । २७
मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते—
अकर्तव्यमिदं यस्याद् विफलस्त्वं भविष्यसि। २८
तथा शप्त्वा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान्—
इह वर्ष सहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि। २९, ३०
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी—
अदृश्या सर्वभूता नामाश्रमेऽस्मिन् निवत्स्यसि। ३१
यदा त्वेतद् वनं घोरं रामो दशरथात्मजः—
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि। ३२
विश्वामित्र- वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः—
ददर्श च महाभागां तपसा द्योतित- प्रभाम्॥
राघवौतु तदा तस्याः पादौ जगृहतु मुदा—
स्मरन्ती गौतम- वचः प्रति जग्रह सा हि तौ। ४९-१३, १८

३९-ताटका—

तौ सुकेतुतनया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि।
निन्यतुः स्थल-निवेशिताटनीलीलयैव धनुषी अधिज्यताम्॥

रघु. ११-१४

सुकेतु की तनया ताटका का विवाह धुन्धु दैत्य के पुत्र सुन्द से हुआ था। उसे ब्रह्मा से महान् तथा सहस्रगजतुल्य बल- शालिनी होने का वर प्राप्त था। जब सुन्द को विष्णु ने युद्ध में मार डाला तो उसकी पत्नी ताटका ने अगस्त्य पर आक्रमण कर दिया। तब अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया—

पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं रूपमपाहाय दारुणं रूपमस्तु ते। वा. रा. बालकाण्ड २६-१३

इसी घटना को कवि ने 'विदितशापा सुकेतु तनया' से इंगित किया है।

४०-नहुष—

भ्रूभङ्ग मात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।

तस्या विलाम्भःपरिशुद्धि-हेतो र्भौमो मुनेः स्थान-परिग्रहोऽयम्।

रघु. १३-३

इस श्लोक में कालिदास ने अगस्त्य के भ्रूभङ्गमात्र से नहुष का स्वर्ग से पतन बतलाया है और उनका आवास स्वर्ग तथा पृथिवी दोनों स्थानों पर माना है। वा. रा. बालकाण्ड के अनुसार उन्हें इन्द्र ने स्वर्ग से गिराया था—

स्वर्गलोकगतं दृष्ट्वा त्रिशंङ्कुं पाकशासनः।

सह सर्वैः सुरगणैरिदं वचनमब्रवीत्।

त्रिशङ्को गच्छ भूयस्त्वं नासि स्वर्गकृतालयः—

गुरुशापहतो मूढोऽ पतद्भुवमवाक्- शिरः॥

एवमुक्तो महेन्द्रेण त्रिशङ्कुरपतन् पुनः।

विक्रोशमानस्त्राहीति विश्वामित्रं तपोधनम्॥ ६०-१६से १८।

नहुष का आख्यान महाभारत के उद्योग पर्व में मिलता है। नहुष ने ऋषियों को अपनी पालकी में जोता, देवर्षियों और ब्रह्मर्षियों से विवाद कर उनके मस्तक पर लातमारी। तब उनके शाप से वह स्वर्ग से पतित होकर दस सहस्त्र वर्षों तक सर्प योनि में भटकता रहा—

श्रमार्ताश्च वहन्तस्तं नहुषं पापकारिणम्।

देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥

ततो विवदमानः स मुनिभिः सह वासव।

अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि पादेनाधर्म- पीडितः॥

यस्मात् पूर्वैः कृतं राजन् ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम्।

अदुष्टं दूषयसि मे यच्च मूर्धन्यस्पृशः पदा।

यच्चापि त्वमृषीन् मूढ ब्रह्मकल्पान् दुरासदान्—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाहान् कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद् धतप्रभः ॥
ध्वसं पाप ! परिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतले ।
दशवर्ष सहस्राणि सर्परूपधरो महान् ॥
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवास्यसि ।
एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिन्दम ॥

उयोग. १९ से १ से १८

४१-पृथिवीका उद्धार—

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
अस्याच्छमम्भः प्रलय-प्रवृद्धं मुहुर्तवक्त्राभरणं वभूव ॥

रघु. १३.८

आदि वराह के द्वारा पृथिवी के उद्धार की कथा प्रायः सभी पुराणों में मिलती है । उदयपुर गुफाओं में तथा अन्यत्र प्रस्तरों पर यह दृश्य उत्कीर्ण है । भागवत में कहा है—स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महींनिमग्नां स उत्थितः संरूरुचे रसायाः । ३.१३.३१

तमालंनीलं सितदन्त-कोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गज- लीलयाङ्ग— । ३.१३.३३

अन्यत्र भी कहा है—

उद्धताऽसि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना ॥

४२-सागर का परिवर्धन—

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः । रघु. १३-३

सगर के पुत्रों तथा गङ्गावतरण की कथा महाभारत, रामायण एवं कई पुराणों में विस्तार- सहित मिलती है । इसकी चर्चा पीछे भी हो चुकी है । यद्यपि सगर का मेध्य अश्व इन्द्र ने चुका कर पाताल में कपिल के पास छिपा दिया था, इस बात पर ऐकमत्य है, तो भी कालिदास के इस श्लोक में कहा गया है कि कपिल अश्व को रसातल ले गये थे । इस विषय में भागवत का कथन है—

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः । ९-८-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः। वही ८

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः।

हयमन्वेषमाणास्ते समन्तात्र्यखन्महीम्।

प्रागुदीच्यं दिशि हयंददृशुः कपिलान्तके।

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्ठि सहस्त्रिणः॥

उदायुधा रभिययु रून्मिमेष तदा मुनिः—

स्व-शरीराग्निना तावन्महेन्द्र हृत चेतसः।

महद् व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात्।

सर्वलोक हितः शिवः

दधारावहितो गङ्गा पादपूतजलां हरेः।

भगीरथः स राजर्षि र्निन्ये भुवन-पावनीम्॥

देशान् पुनन्ती निर्दग्धानसिञ्चत् सगरात्मजान्।

सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देह- भस्मभिः॥ भाग. ९-१०

वस्तुतः सगरपुत्रों ने उत्खनन द्वारा जहाँ समुद्र को परिवर्धित किया वह स्थान कलकत्ता से कुछ दूर गंगा-सागर संगम है। कालिदास ने जिसे निर्दिष्ट किया है उस स्थान के समुद्र का कपिल या भगीरथ से सम्बन्ध नहीं है। रामायण के प्रारम्भ में भी इस घटना का सविस्तार वर्णन अध्याय ३८ से ४४ तक है।

कालिदास ने कई बार इस प्रसंग का उल्लेख किया है। यथा

स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद् भस्मावशेषीकृत- विग्रहाणाम्।

सुरालय- प्राप्ति- निमित्तमम्भ स्त्रैस्त्रोतसं नौ- लुलितं ववन्दे॥

रघु. १३-३४

कलिदास गङ्गा की तीनों धाराओं—अलकनन्दा, मन्दाकिनी और भागीरथी—से परिचित थे।

४३-सूर्य रश्मियों का गर्भधारण—

गर्भं दधत्यर्क मरीचयोऽस्माद् विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबिन्धनं वह्नि मसौ विभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन।

रघु. १३-४

समुद्र में वाडव अग्नि की स्थिति और उसके मन्थन से चौदह रत्नों की प्राप्ति बहु- पुराण- प्रसिद्ध है। अर्क मरीचियों के गर्भधारण के विषय में कहा है—

तासां शतानि चत्वारि रश्मीनां वृष्टि- सर्जने।

शतत्रयं हिमोत्सर्गे तावद् गर्भस्य सर्जने॥

आनन्दाश्च हि मेध्याश्च नूतनाः पूतना इति।

चतुः शतं वृष्टिवाहास्ताः सर्वा अमृताः स्त्रियः। यादवः

समुद्र से गर्भ धारण करने वाली सूर्य रश्मियों की 'अमृत' संज्ञा है।

४४-देवसेना—

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्।

स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुर- प्रवेशाभिमुखोवभूव॥ रघु. ७-१

इस श्लोक में अज द्वारा ले जायी जाती हुई इन्दुमती की उपमा देव सेना से और अज की स्कन्द से दी है। देवसेना का वरण स्कन्द ने किया था। ऐसा आगम है कि ब्रह्मा ने इन्द्र की दो कन्याओं का निर्माण किया था। ये थीं देवसेना और दैत्य सेना। उनमें देवसेना ने पति के रूप में स्कन्द को अभिषिक्त किया था। महाभारत में कहा है—

शतक्रतुश्चाभिषिच्य स्कन्दं सेनापतिं तदा।

सस्मार तां देवसेनां या तेन विमोक्षिता॥

अयं तस्याः पतिर्नूनम् विहितो ब्रह्मणा स्वयम्।

विचिन्त्येत्यानयामास देव- सेनां ह्यलंकृताम्॥

स्कन्दं प्रोवाच वलभिददियं कन्या सुरोत्तम।

अजाते त्वयि निर्दिष्टा तव पत्नी स्वयंभुवी॥

तस्मात्त्वमस्या विधिवत् पाणिं मन्त्र- पुरस्कृतम्—

गृहाण दक्षिणं देव्याः पाणिना पद्मवर्चसा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमुक्तः स जग्राह तस्याः पाणिं यथाविधि।

बृहस्पतिर्मन्त्र विद्धि जजाप च जुहाव च।।

एवं स्कन्दस्य महिषीं देव सेनां विदुर्जनाः।।

वन पर्व २२९-४४ से ४९

रेणुका-बध—

ऋतौ त्वं चैव माता च स्नाने पुंसवनाय वै।

आलिङ्गेतांप्रथग् वृक्षौ साश्वत्थं त्वमुदुम्बरम्।

आलिङ्गने चरौ चैव चक्रतुस्ते विपर्ययम्।

तव भृगु ने कहा—

उपयुक्तश्चरूर्भद्रे वृक्षे चालिङ्गनं कृतम्।

विपरीतेन ते सुभ्रू र्मात्रा चैवासि वञ्चिता।

ब्राह्मणः क्षत्रवृत्तिर्वै तव पुत्रो भविष्यति।

किन्तु जब सत्यवती ने अनुनय किया कि—"न मे पुत्रो भवेदीदृक् कामं पौत्रो भवेदिति"। तो भृगुने उसकी बात मान ली। उसने जमदग्नि को जन्म दिया। जमदग्नि का विवाह प्रसेनजित् की पुत्री रेणुका के साथ हुआ। रेणुका के पाँच पुत्र हुए जिनमें राम कनिष्ठ थे।

सातु चित्ररथं नाम मार्तिकावतकं नृपम्।

क्रीडन्तं सलिले दृष्ट्वा स्पृह्यामास रेणुका।।

पिता ने क्रमशः सब पुत्रों से चरित्र- भ्रष्ट माता का वध करने को कहा किन्तु उनमें से कोई इस नृशंस कृत्य के लिए तैयार नहीं हुआ। तब उन्होंने परशुराम को आज्ञा दी।

जहीमां मातरं पापां माच पुत्र व्यथां कृथाः।

तत आदाय परशुंरामो मातुः शिरोऽहरत्।

एक बार अनूपराज कार्तवीर्य ने जमदग्नि की अनुपस्थिति में आश्रम में आकर—

प्रमथ्यचाश्रमात् तस्माद्धोमधेनोस्तथा वलात्।

जग्राह वत्सं क्रोशन्त्या वभञ्जच महाद्रुमान्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—स मृत्युवशमामन्नं कार्तवीर्यमुपाद्रवत्।

चिच्छेदनिशितैभल्लैर्बाहून् परिध- सन्निभान्।

सहस्त्र संमितान् राजन्। (वनपर्व अध्याय ११५, ६)

यह कथा महाभारत के वनपर्व (अध्याय ११५, ११६) तथा द्रोणपर्व (अध्याय ७०) में मिलती है कि परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता रेणुका का वध किया और फिर प्रसन्न पिता से वर माँग कर माता को पुनरूज्जीवित कर दिया था।

ज्योतिष

कालिदास ने अपनी कृतियों में अनेक स्थानों पर ज्योतिष ज्ञान का परिचय दिया है। रघुवंश के ३-१३ श्लोक में सुदक्षिणा की प्रसूति के प्रसंग में कहा है कि उसने समय (दशममास) प्राप्त होने पर पुत्र को जन्म दिया जैसे शची ने जयन्त को। दूसरी उपमा देते हुए कहा—जैसे त्रिसाधना शक्ति अक्षय सम्पत्ति को जन्म देती है। यह उपमा राजनीति तन्त्र से सम्बन्धित है और इसकी व्याख्या यथा प्रसंग की गयी है। साथ ही उन्होंने कहा कि इस बालक की भाग्य- सम्पद् प्रसव काल के अनस्तमित, पाँच उच्च स्थान में स्थित ग्रहों ने ही सूचित कर दी थी।

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरूच्च- संश्रयैरसूर्यगैः सूचित- भाग्य- संपदम्।

प्रसूत पुत्रं समये शची- समा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थ मक्षयम्।

रघु. ३-१३

कूटस्थीय में कहा है—

सुखिनः प्रकृष्ट- कार्या राजप्रतिरूपकाश्च राजानः—

एक-द्वि-त्रि-चतुर्भिर्जायन्तेऽतः परंदिव्याः।

फिर रघु का जन्म तो पाँच उच्चग्रहों के योग में हुआ। कहा है—

अज वृषभ-मृगाङ्गनाकुलीराझषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गः।

दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवक विंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः॥

अर्थात् सूर्यादिक सात ग्रहों में सो वृषभादिशराशियाँ श्लोक में बताये क्रम से उच्च स्थानीय होती है और अपने अपने उच्चत्व की अपेक्षा सप्त स्थान वाली नीच। और उच्चों में भी दशमादि राशि के तीसवें अंश क्रमानुसार उच्चों में परमोच्च और नीचों में परम नीच होते हैं। इस जातक श्लोक में तीसवाँ भाग अंश का बोधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। "त्रिंशद्- भागात्मकं लग्नम्" इति नारदः। सूर्यप्रत्यासत्ति ग्रहों का अस्तमय होता है। लघुजातक में कहा है "रविणास्तमयो योगो वियोगस्तूदयो भवेत्।" ये ग्रह स्वोच्चस्थ होने पर फलते हैं,अस्तग और नीचग होने पर नहीं। राजमृगाङ्क में भी कहा है—"स्वोच्चे पूर्णं स्वर्क्षकेऽर्धं सुहृद्भे पादं द्विड्भेऽल्पं शुभं खेचरेन्द्र—नीच स्थायी नास्तगो वा न किञ्चित् पात्रं नूनं स्वत्रिकोणे ददाति।" इस प्रकार जिसको जन्मकाल में पाँच उपर्युक्त ग्रह स्वोच्चस्थ होते है वह तुङ्ग अर्थात् महान बनता है।

(२) दिलीप और सुदक्षिणा उज्जवल वेष धारण किये वन मार्ग में जा रहे हैं। कवि कहता है—

काप्याभिख्या तयोरासीद् ब्रजतोः शुद्धवेषयोः।

हिमनिर्मुक्तयो र्योगे चित्रा- चन्द्रमसोरिव॥ रघु. १-४६

दोनों के उज्वल वेष ने कवि को शिशिरवीत जाने पर चित्रा और चन्द्रमा के योग काल में उनकी शोभा का स्मरण करा दिया। चैत्री पूर्णिमा का प्रकाश उज्जलतर और सुखद होता है।

(३) पितुः प्रयत्नात् स समग्र- सम्पदः शुभैः शरीरावयवै र्दिने दिने।

पुपोष वृद्धिं हरिदश्व- दीधतेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा॥ रघु. ३-२२

सूर्य की रश्मियो के अनुप्रवेश से प्रतिपदा के पश्चात् चन्द्रमा प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है। यह अथर्व० काल में भी ज्ञात था। वराहमिहिर का कथन है—"सलिलमये शशिनि रवेर्दीधतयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्—क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः।"

(४) प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः। रघु. ४-२१

शरद में अगस्त्य नक्षत्र का उदय होने के साथ जल सूखना प्रारम्भ होता है मार्ग पङ्कहीन और नदियाँ प्रसन्न-सलिला होने लगती हैं। "अगस्त्योदये जलानि प्रसीदन्ति" इत्यागमः।

(५) पर्याय-पीतस्य सुरै हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः। रघु. ५-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक मान्यता है कि कृष्ण पक्ष में देवता चन्द्र की एक एक कला का प्रतिदिन पान करते हैं। इसी कारण वह क्षीण होता जाता है। फिर भी उसके सौन्दर्य का ह्रास श्लाध्य माना जाता है। भर्तृहरि की मान्यता है—

मणिः शाणोल्लीढ़ः समर- विजयी हेति- निहतो,

मदक्षीणो नागः, शरदि सरितः श्यान- पुलिनाः।

कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता,

तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः ॥ २-४४

(६) तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः, पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः। रघु. ७-३३

अमावस्या को सूर्य और चन्द्रमा एक साथ रहते हैं और फिर चन्द्रमा सूर्य से अलग हो जाता है। ज्योतिष शास्त्र का यह सिद्धान्त प्रस्तुत उपमा का आधार है।

(७) रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः। रघु. १७-३०

यह कवि की निरीक्षण शक्ति और उसके उपमान रूप में प्रयोग करने की कुशलता का उदाहरण है। प्रतिपद् को चन्द्र रेखामात्र ही रहता है और फिर धीरे धीरे पूर्ण गोलक का आकार ग्रहण कर लेता है।

(८) धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः। रघु. १७-३४

सूर्य पहले निरंशु प्रकट होता दिखता है और बाद में उसकी किरणें प्रकट होती हैं।

(९) तं प्रीति विशदै र्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः।

शरत्प्रसन्नै ज्योतिर्भि र्विभावर्य इव ध्रुवम्। रघु. १७-३५

नगर की नारियों ने प्रसन्न नेत्रों से राजा अतिथि का अनुगमन किया। वे उस के पीछे चलने लग गयीं जैसे शरत् काल में राशियाँ खिले हुए तारों से ध्रुव का अनुगमन करती है। ध्रुव के साथ रात्रि भी चलती है और साथ में तारे भी। ज्योतिष के अनुसार तारा- चक्र ध्रुव के पाश में बँधा है।

(१०) कुमार संभव में शिव के विवाह की वेला का निर्धारण भी ज्योतिर्गणना को ध्यान में रख कर किया गया था। अब यह बात कालिदास ही जानते होंगे कि शिव का विवाह किस युग में हुआ और तब ज्योतिष के ये सिद्धान्त प्रचलित थे या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं और यदि प्रचलित थे तो क्या सप्तर्षि और देवगण भी वाराही संहिता का ही अनुसरण करते थे। सप्तर्षि जब हिमालय राज से विवाह चर्चा के लिए मिले तो कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी या चतुर्दशी रही होगी। तभी उन्होंने तीन दिन बाद का मुहुर्त निकाला होगा क्यों कि शुभ कार्य शुक्ल पक्ष में ही संपन्न किये जाते हैं—

वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना।

ते त्र्यहादूर्ध्वमाख्याय चेरूश्चीरपरिग्रहाः॥ कुमार ६-९३

और—

अथौषधीनामधिपस्य वृद्धौ तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्।

समेतबन्धु र्हिमवान् सुताया विवाह- दीक्षा- विधिमन्वतिष्ठत्।

कुमार ७-१

चन्द्र जब वृद्ध्युन्मुख हो गया तो जामित्र की शुद्धि वाली तिथि को हिमवान् ने पुत्री की विवाह- दीक्षा सम्पन्न की। विवाह में जामित्र गुण अर्थात् जामित्र की शुद्धि आवश्यक है। लग्न से सातवें स्थान को जामित्र कहते हैं। लग्न के समय जामित्र का ग्रहरहित होना आवश्यक है क्योंकि वसिष्ठादि के मत से जामित्र में रहने वाले ग्रह मरणकारक होते हैं—"विवाहे स्युः सर्वे मदनसदने नैव शुभदाः" तथा "सर्वे जामित्र- संस्था विदधति मरणम्" जामित्र शुद्धि के साथ आपूर्यमाण पक्ष विवाहादि शुभ कर्मों के लिए आवश्यक है। यद्यपि जामित्र शुद्धि लग्न का धर्म है फिर भी यहाँ कवि ने उसके द्वारा तिथि का भी व्यपदेश कर दिया है।

(११) मालविकग्नि के तृतीय अङ्क की लगभग समाप्ति पर विदूषक कहता है—

"वअस्स दिट्ठआ इमस्स अविणअस्स, अप्पसण्णा गदा एसा। ता वअं सिग्घं अवक्कमाम। जाव अंगारओ रासिं विअअणुवक्कं परिगमणंणकरेदि।"

विदूषक कहता है—मित्र ! आप की इस अशिष्टता से रानी अप्रसन्न हो कर चली गयी। अतः हम लोगों को शीघ्र ही यहाँ से चले जाना चाहिये। जब तक अङ्गारक (मङ्गलग्रह) राशि के प्रति अनुवक्र गमन नहीं करता। ज्योतिष के अनुसार मंगल यदि राशि में प्रविष्ट हो और सम्मुख हो तो वह पीडाप्रद और हानिकारक होता है। ग्रहलाघवादि में कहा है कि "अङ्गारको राशि- प्रविष्टः संमुखश्च पीडाहानिकरो भवति"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) विक्रमोर्वशीय (५-४) में कहा है—

आभाति मणि- विशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः ।

नक्तमिवलोहिताङ्गः परूषधनच्छेदसम्पृक्तः ॥

पक्षी द्वारा दूर ले जायी गयी चूडामणि अब इस प्रकार चमक रही है जैसे घने मेघ- खण्डों से संयुक्त मङ्गलग्रह रात के समय चमकता है । मणि रक्त है और मंगल ग्रह भी ।

(१३) सूर्यः समेधयत्यग्निमग्निः सूर्यं स्वतेत्रसा । विक्रमो. ५-२०

सूर्य अग्नि को समेधित (प्रज्वलित या संवर्धित) करता है और अग्नि अपने तेज से सूर्य को । पुरातनविश्वास रहा है कि जब सूर्य अस्त को प्राप्त होने लगता है तो वह अपना तेज अग्नि में न्यस्त कर देता है । इसीलिए अग्नि रात्रिवेला में अधिक तेजस्वी लगती है और दिन में वह सूर्य का तेज उसे लौटा देती है । इससे अग्नि की चमक मन्द पड़ जाती है किन्तु सूर्य की बढ़ जाती है । "अग्नितेजोहि दिने सूर्यमनुप्रविशति रात्रौ सूर्यतेजोऽग्निम्" इति पौराणिकाः । "आदित्योवाऽस्तं यन् अग्नि मनुप्रविशति अग्निर्वाऽऽदित्यं सायं प्रविशति" इति श्रुतिः ।

(१४) चन्द्र की पत्नी रोहिणी है । रोहिणी नक्षत्र और चन्द्रमा के दम्पतीयुगल होने और उनके देवता रूप में पूजे जाने का प्रसंग भी कालिदास (विक्रमो. अंक ३) में मिलता है । पुरुरवा की राजमहिषी कहती है—"एषा देवदा-मिहुणं रोहिणी मिअलंछणं सक्खी करिअ अज्जउत्तं अणुप्पसादेमि ।"

उक्त सन्दर्भ जहाँ कालिदास के ज्योतिष ज्ञान को उजागर करते हैं, वहीं उनकी स्थिति चतुर्थ-पञ्चम शताब्दी ईसवी से पूर्व नहीं थी, इस बात की भी पुष्टि करते हैं क्योंकि ज्योतिष की जिन मान्यताओं पर अपना विश्वास उन्होंने व्यक्त किया है उनका प्रचार भारत में इस काल से पूर्व नहीं था । 'जामित्र' शब्द इस तथ्य का सर्वोत्तम साक्षी है ।

यह भी आश्चर्यजनक बात है कि कालिदास जैसा प्रबुद्ध कवि शिवविवाह, पुरूरवा-प्रणय, ई. पू. द्वितीय शती के मालविका-प्रसंग और रघुजन्म जैसी अति प्राचीन काल की घटनाओं के संदर्भों पर भी ये ही ज्योतिष सिद्धान्त लागू करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्त्व

(क) प्रस्तर- शिल्प

पुरातात्विक सम्पदा में सैभाग्य से मौर्ययुग (३२०से १८५ ई. पूर्व) से शुङ्ग युग (१८५ से ७२ ई. पूर्व), सातवाहन-कुषाण-इक्ष्वाकु-यवन युग (२०० ई. पू० से २०० ई. तक), गुप्त वाकाटक युग (३००से ५५० ई.) तथा चालुक्य-राष्ट्र कूट युग (५५० से ९७३ ई. तक) तक का मूर्तिशिल्प प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । इनमें गुप्त वाकाटक युग अर्थात् ३०० ई. से पूर्व के प्रसिद्ध ३९ कलावशेषों में बुद्ध और महावीर या उनसे सम्बन्धित शिल्प तो हैं किन्तु राम, कृष्ण और शिव से, जिनके सीधे या आनुषंगिक प्रसंग कालिदास में बिखरे पड़े हैं, सम्बन्धित शिल्प उनमें नहीं है। यद्यपि मथुरा घोसुंड़ी, वेसनगर, मल्हार और नासिक भागवत (संकर्षण-वासुदेव) की अर्चा के केन्द्र रहे हैं किन्तु वे वैष्णव धर्म के, जिस रूप में हम उसे जानते हैं क्षेत्र नहीं रहे । हाँ, गुप्त काल से महाविष्णु और उनके अवतारों के शिल्पित रूप मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं । देवगढ़, उदय गिरि और भीतरगांव इस बात के साक्षी है । आश्चर्य की बात है कि कट्टर ब्रह्मण- धर्मी माने जाने वाले शुङ्ग, सातवाहन और इक्ष्वाकु राजाओं के भी समय में मूर्ति-शिल्प के उपजीव्य बृद्ध ही बने रहे, विष्णु या राम नहीं हुए । यहाँ तक कि शुंग युग में अशोककाल से भी अधिक बौद्ध कला केन्द्र सक्रिय रहे । सर्वाधिक २६ कला केन्द्र ब्राह्मण वंशीय राजाओं के काल में ही पल्लवित हुए और उनमें केवल अवैदिकधर्मी कला का ही विकास होता रहा किन्तु गुप्त युग से वे मूर्ति शिल्प मिलने लगते है जिनके शाब्दिक चित्र या संकेत कालिदास ने दिये हैं। इनमें विष्णु विषयक २३ शिल्प हैं। यथा-लक्ष्मी नारायण की मूर्ति में विष्णु के चरण दबाती हुई पद्मासनस्थालक्ष्मी, उसकी गोद में पाँव रखे विष्णु (रघु. १८.८) ,शेष को शय्या बना कर लेटे और उसकी फणामणि से द्योतित विग्रह वाले विष्णु (रघु. १०-७), विष्णु का वाहन गरूड़ और उसका मानवीकरण । यहाँ गरुड़ इन्द्र के कुलिश-व्रण चिन्ह्न वाले और शेषनाग से विरोध का त्याग कर नम्रता से खड़े हैं । (रघु. १०-१३)„ स्तनों के बीच कौस्तुभ मणि को लटकाये और हाथ में कमलपत्र का व्यजन लिये विष्णु की सेवा में रत लक्ष्मी (रघु. १०-६२), उर्वशी को अपनी जंघा से उत्पन्न करने वाले नर-नारायण (विक्रमो. १-४), त्रिविक्रम वामन (कुमार. ६-७१,मेघ. १-५७. रघु. ७-२५, ११-२२, १६-२८), इन सबका मूर्त्यङ्कन देवगढ़ (झांसी जिले में वेतवा तट पर स्थित मन्दिर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४७५ ई.) में मिलता हैं। शेष शायी योगनिद्रागत पद्मनाभ विष्णु भीतरगाँव मन्दिर (४२५ ई.) में, दिव्याभरणों से भूषित विद्याकरवाहुओं (चार) वाले चतुर्भुज विष्णु, क्षीरसागरशायी (रघु. ११-११) उदयगिरि (४५० ई.) पर सप्तार्णव जलेशयविष्णु (रघु. १०-२१) गंग के लेख (५७५ ई.) में, चतुर्मुखविष्णु (रघु. १०-२२) अलीगढ़ के मंकरी गाँव (५वीं शती) में, चतुर्भुज शेषशायी विष्णु (रघु, १०-११) उदय गिरि में, विष्णु के आयुधों का वामनीकरण (रघु. १०-६०) जिसमें दशरथ की तीनों रानियों द्वारा रात्रि वेला में स्वप्न में "जल जासि गदा-शार्ङ्ग-चक्र-लाञ्छित मूर्ति" वामनों के द्वारा स्वयं की रक्षा किये जाने की बात कही है, उदयगिरि भीतर गाँव तथा काश्मीर से प्राप्त गान्धारकला में क्रमश: असि और चक्र के वामन पुरुष का शिल्पन है जो ५-६ वीं सदी का है। विष्णु के लक्षण श्रीवत्स और कौस्तुभ (रघु. १०-१०। के विषय में कहा है कि कभी कभी लक्ष्मी श्रृङ्गार के समय उसमें अपना मुख देख लेती थीं और उसकी प्रभा से श्री वत्स भी चमक उठता था। इनमें श्रीवत्स उदयगिरि (४५० ई.) तथा कौस्तुभ ४७२ ई. के दशपुर लेख में प्राप्त है। वलि द्वारा दी गयी लक्ष्मी को ग्रहण करते समय प्रह्लाद द्वारा वामन के चरण के बीच में ही रोक लिये जाने का दृश्य (रघु. ७-३५) पवाया के गुप्तकालीन शिल्प में देखा जा सकता है। पुरुष केसरी अर्थात् नृसिंह सर्वप्रथम एरन में कुमारगुप्त की मुद्रा पर अङ्कित मिलते हैं।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि किसी भाव की अभिव्यक्ति साहित्य और शिल्प कला में एक समान मिलती है तो निश्चय ही उनकी रचना परस्पर सन्निकट काल में ही संभव है। उपर्युक्त समस्त मूर्तियों और लेखों के दर्शन सर्वप्रथम पाँचवीं सदी में ही होते हैं, तत्पूर्व नहीं तो इससे यह निष्कर्ष निकलना स्वाभाविक है कि इन भावों को व्यक्त करने वाले साहित्यिक लेख भी लगभग इसी काल के समीपवर्ती होंगे। उदाहरणार्थ चरण सेविका लक्ष्मी के साथ या अकेले शेषशायी विष्णु या सागर शायी विष्णु को भारतीय कला देवगढ़ (४७५ ई.) उदय गिरि (४५० ई.) भीतर गांव (४२५ ई.) और एरण शिलालेख (४८५ ई.) से पूर्व नहीं जानती। यदि रघुवंश तथा अन्य कृतियों में अभिव्यक्त कालिदासीय भावों से भारतीय शिल्पकारों को इससे पूर्व परिचय होता तो वे उत्कीर्णन में अवश्य अभिव्यक्त होते। बात यह है कि भागवत और शैव श्रद्धा का जो बीज कई शताब्दियों से जैन, बौद्ध तार्किकता की कठोर मिट्टी के नीचे दब गया था वह अनुकूल वर्षा जल पाकर धीरे धीरे अंकुरित और पल्लवित होकर तृतीय चतुर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शताब्दी में शाखी पुष्पी बन गया। गुप्तों के काल की अनुकूल वतास से उस पर फूल लद गये। यही युग था जब विष्णुपुराण की रचना हुई और अन्य अनेक पुराणों को वैष्णव आस्था के अनुकूल ढाला गया। त्रिदेवों के ऊपर महाविष्णु की कल्पना और प्रतिष्ठा हुई। विष्णु के अवतारों को मान्यता मिली। समानान्तर ही मालव प्रदेश में अष्टमूर्ति महाकाल को भी आराध्य मान लिया गया। शिव को भी विष्णु के समान सर्व- भूतमय प्रतिष्ठापित करने के उद्देश्य से इसी युग में अष्टमूर्ति या अष्ट विग्रही रूप प्रदान किया गया। फिर भी वह विष्णु की समकक्षता प्राप्त नहीं कर सके। कालिदास की रचनायें भी इसी युग की देन हैं और समकालिक लोक मान्यताओं का प्रतिबिम्बन करती हैं। विष्णु-प्रतिष्ठा की आँधी इतनी प्रबल थी कि स्वयं शैव होने पर भी वह अपने आराध्य को विष्णु के अवतार राम की बराबरी पर नहीं रख पाये। शिव पर श्रद्धा जल अर्पित करने के लिये लिखा गया उनका कुमार- संभव रघुवंश के राम के सामने बिल्कुल फीका पड़ गया है। कुमारसंभव के शिव कहने भर को 'स्वयं विधाता तपसः फलानां' रह गये हैं। कवि लेखनी से उनका जो चित्र उभरा है वह साधारण पति का और विलासी गृहस्थ का ही है जबकि राम के चरित्र में शालीनता और उदात्तता है। इतना ही नहीं रघुवंश में जिन २८ राजाओं का वर्णन १९ सर्गों के १५६९ श्लोकों में किया गया है, उनमें ५५२ श्लोक अकेले राम के विषय में हैं। इस सब का प्रभाव कलाकारों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। साहित्य के क्षेत्र में उसे कालिदास ने वाणी दी तो शिल्प के क्षेत्र में देवगढ़ भितरगांव, उदयगिरि और एलोरा आदि कला केन्द्रों ने। पाँचवीं शती की विदिशा के उदयगिरि की वैष्णव गुफायें ही सर्वप्रथम इस चिन्तनधारा को प्रकट करने वाली गुफायें हैं। इससे पूर्व अजन्ता, वाघ आदि सब बौद्ध जैन कला केन्द्र है।

मंगलाचरण में विष्णु की वन्दना सर्वप्रथम जूनागढ़ के ४५६ ई. के शिलालेख में मिलती है। इसके बाद विष्णु वन्दना की प्रथा सी चल पड़ी। ४८५ ई. के एरण शिलालेख में भी विष्णु की स्तुति है। चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने विष्णु को मुद्रांकित कराया। यही समय था जब लक्ष्मी को विष्णु पत्नी घोषित किया गया। गुप्तों से पूर्व लक्ष्मी का उत्कीर्णन है किन्तु वह या तो एकाकिनी है या फिर इन्द्र, कुबेर या कार्तिकेय के साथ। महाभारत तक में समुद्र-मन्थन से उत्पन्न होकर लक्ष्मी विष्णु का वरण नहीं करती किन्तु विष्णु पुराण में वह विष्णु की सहचरी बन जाती हैं। समुद्र गुप्त और चन्द्र गुप्त के सिक्कों पर भी लक्ष्मी एकाकिनी हैं। उनके हाथ में कमल है किन्तु उसे व्यजन बनाकर विष्णु को वीजित करने के लिये नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास की लक्ष्मी विष्णु की पत्नी है और सेविका भी। शिल्पकला और शिलालेख भी उन्हें पाँचवीं सदी से ही विष्णु पत्नी के रूप में आलिखित करना प्रारम्भ करते हैं। विष्णु का शेष के साथ सम्बन्ध भी इसी युग की कला में व्यक्त हुआ है।

कालिदास ने पद-पद पर शिव को 'सर्पवलय'और भुजङ्गालङ्कृत एवं भुजङ्गमोन्नद्ध जटाकलाप कहकर सम्बोधित किया है। उनके कटि और कण्ठ भी भुंजगालंकृत हैं । शिव का यह रूप ५-६वीं शताब्दी से पूर्व नहीं मिलता किन्तु इस काल के एलीफैंटा के अंकनों में गंगावतरण तथा नर्तन के प्रसंग में उनकी जटायें विषधरों से मण्डित मिलती हैं। यहाँ शिव के साथ अंकित पार्वती सर्पों के सामीप्य में भी सस्मित और निर्भीक है, यद्यपि कालिदास के मेघदूत (१-६०) में वह भीता हैं। एलिफैंटा के अतिरिक्त इस काल के कलाकेन्द्रों—यथा उदयगिरि, नचना, अहिच्छत्र, भूमरा, खोह आदि में शिव की जटायें भुजंगमोन्नद्ध नहीं हैं। एलिफैंटा में ही सर्वप्रथम गङ्गा का त्रिपथगा रूप व्यक्त हुआ है। जिसकी चर्चा कवि ने मेघ, (१.५०) में की है। कालिदास ने ब्रह्मा को चतुर्मुख और पद्मासनस्थ बताया है- (कुमार. २-९७, रघु. १३-६, कुमार. ७-८६)। ब्रह्मा का यह रूप देवगढ़ में मिलता है। विक्रमो. जिसे पर्यङ्क-ग्रन्थि वन्ध आसन कहता है (१-१) वह ५वीं सदी के नचना में मिलता है। ध्यानस्थ और पद्मासनस्थशिव सर्वप्रथम नचना और एलिफैंटा में मिलते हैं। गरुड़ का मानवीकरण ४५० ईसवी तक नहीं हुआ है किन्तु कालिदास ने रघु० १०-१३ में उसे विनीत प्राञ्जलिमुद्रा में उपस्थित बतलाया है। ४७५ ई० में देवगढ़ में ऐसा उत्कीर्णन देखा जा सकता है। कालिदास देवगढ़ शिल्प से पूर्ववर्ती थे। उर्वशी के उरुभवत्व और इन्द्र को प्रदान किये जाने की कथा भी देवगढ़ में वर्तमान हैं। यहां की नर-नारायण मूर्तियों में वे हाथ में जप माला लिए पद्मासन में बैठे हाथ से माला जप रहे हैं। कालिदास ने इस क्रिया को ब्रह्म-गृणन (कुमार. ८-४७) तथा मन्त्रपूर्वक उपस्थान (वही ८-५०) कहा है। जपमाला या अक्षमाला (कुमार. ५-११, ६३) इसी युग की ब्राह्मणीय मूर्तियों में मिलती है। शिव के पास भी अक्षमाला है और वह उसका प्रयोग करते है (कुमार.३-४६)। इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय अक्षमाला का व्यवहार होने लगा था। स्वतन्त्र देवगृहो या देव मन्दिरों का निर्माण भी गुप्त युग से ही प्रारम्भ हुआ। कालिदास ने भी रघु.(१६-३९) कुमार. (१५-४) मेघ.(१-३३) आदि में देवगृहों का उल्लेख किया है। कालिदास ने मत्स्य कूर्म का तो नहीं किन्तु वराह, नरसिह, वामन, बलराम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परशुराम, दाशरथिराम, नारायण और कृष्ण का अवतार रूप में उल्लेख किया है । महाभारत भी दशावतारों में मत्स्य, कूर्म, बुद्ध और कल्कि को छोड़ कर उक्त छः को स्वीकार करना है । गुप्त पूर्व काल तक मस्त्स्यादि प्रजापति के अवतार माने जाते थे और ब्रह्मा नाभि-प्रसूत न होकर आकाश-प्रसूत ब्रह्मा विष्णु से ऊपर । विष्णु को सर्वोच्चता जिसकी चर्चा कालिदास ने बार बार की है (रघु. १०-४८, १३-६) गुप्त युग में ही मिली । रघुवंश में देवगण रक्षा के लिए अष्टमूर्ति शिव या ब्रह्मा की नहीं, अपितुविष्णु की शरण में जाते हैं और उन्हें ही परब्रह्म कहकर २७श्लोकों से उनकी स्तुति करते हैं । आश्चर्य यह है कि विष्णु के इस अवतार की जिसका कालिदास ने सर्वातिशायी वर्णन किया और उन्हें रघु-श्रेष्ठ कहा है उनकी एक भी मूर्ति गुप्त काल में नहीं बनी जबकि इसी युग में बुद्ध की एक से एक सुन्दर मूर्तियाँ तराशी गयीं । इसका कारण यह है कि विष्णु के रामरूप में अवतरित होने और राम के विष्णुवत् प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बात चौथी सदी में ही हुई । कलाकारों की छेनी तक पहुँचते- पहुँचते सौ वर्ष तो लग ही गये । यह सर्वथा स्वाभाविक था । इसीलिए देवगढ़ का दशावतार मन्दिर ४७५ ई. से पूर्व नहीं बन सका । रघुवंश के देवगढ़ युगीन रचना होने की बात इसी से स्पष्ट है कि उदयगिरि और भीतरगांव की तुलना में रघुवंश का उसी के साथ अधिक सामीप्य है । इस काल के लगभग २३ कलाकेन्द्रों में कालिदास की सम-भाव ६६ कला कृतियाँ मिलती हैं जिनमें २३ अकेले देवगढ़ में पायी गयी हैं ।

यह कालिदास का युग था जब राम की पूजा प्रचलित हुई । कालिदास स्वयं भी राम को विष्णु का अवतार मानते थे—विभक्तात्मा विभुस्तासामेक-कुक्षिष्वनेकधा (रघु. १०-६५) । किन्तु एरण वाले समुद्रगुप्त के शिलालेख में समुद्रगुप्त के लिए कहा है-"सुवर्णदाने न्यक्कारिता नृपतयः पृथुराघवाद्याः" । इसमें राघव राम ही हैं । उन्हें न्यक्कारित करने से स्पष्ट है कि सन् ३७४ तक राम विशिष्ठ नृपति तो थे किन्तु अवतार नहीं बन पाये थे । कालिदास ने समुद्रगुप्त की सुवर्णदान विषयक कीर्ति को ध्यान में रख कर रघुवंश का कौत्स-रघु प्रसंग लिखा होगा । यह भी अनुमान करना सहज होगा कि रघुवंश में दिलीप का अश्वमेघ और रघु की दिग्विजय यात्रा भी बहुत कुछ समुद्रगुप्त से प्रेरित है । समुद्रगुप्त 'अश्वमेध- पराक्रमी' था और प्रयाग प्रशस्ति उसकी लोकविजय की कहानी कह ही रही है । फिर यह अलग बात है कि कालिदास की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविप्रतिभा ने इन तीनों प्रसंगों को भव्य काव्योचित रूप प्रदान कर दिया । वासुदेव, बलराम, शिव, स्कन्द, विशाख, कुबेर आदि की पूजा तो पाणिनि-पतञ्जलि काल में ही प्रचलित थी । इन देवों के प्रासाद भी थे । मन्दिर या देवगृह शब्द का चलन द्वितीय ई. पू. तक नहीं था किन्तु राम को अवतार के रूप में चतुर्थ ईसवी शती तक नहीं जाना जाता था । इस काल में रचित अमरकोष तक में जिसमें शिव के ५२, विष्णु के ३९, इन्द्र के २६, स्कन्द के १७ और गणेश के ८ पर्याय दिये हुए हैं, वरुण, यम, कुबेर और लक्ष्मी आदि के पर्याय हैं, कृष्ण को विष्णु का पर्याय मान कर उनका सपरिवार उल्लेख है वहाँ दाशरथि राम उपेक्षित हैं । किन्तु कालिदास चित्रकूट पर्वत को रघुपति के पदों से अंकित होने के कारण वन्द्य मानते हैं। वह रामगिरि-आश्रम को जनक तनया के स्नान से पवित्रित जलों वाला घोषित करते हैं—वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु-मेघ.१-१२ तथा—जनकतनया- स्नान-पुण्योदकेषु-मेघ १-१ । वन्द्यैःपुंसाम् से यह बात भी स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि मेघदूत के रचनाकाल में चित्रकूट तीर्थ बन गया था । राम की पादुकायें तक इतनी पवित्र मानी जाने लगी थीं कि उन्हें राज्य की अधिदेवता के रूप में सिंहासन पर रखा जा सके । तभी तो भरत कहते हैं—

तमशक्यमपाक्रष्टुं निर्देशात् स्वर्गिणः पितुः ।

ययाचे पादुके पश्चात् कर्तुं राज्याधिदेवते ।। रघु. १२-१७

अहल्योद्धार जिसकी चर्चा कालिदास ने (रघु.११-३४) में की है, वह भी राम की अलौकिकता का प्रमाण है । इससे निश्चित है कि राम को अवतार का रूप ३७६ ई. के पश्चात् दिया गया और मेघदूत या रघुवंश की रचना से पूर्व उन्हें विष्णु के दिव्य अवतार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी । यह तथ्य कालिदास का समय पंचमशती से पूर्व न होने की पुष्टि करता है ।

शिव के सम्बन्ध में भी कालिदास ने ऐसी कई बातों का उल्लेख किया है जो गुप्तकाल से पूर्व संभावित नहीं है । यथा—शिव द्वारा गंगा को जटाजूट में धारण करना, गंगा और पार्वती में सापत्न्य और तज्जनितईर्ष्या, सती का योग द्वारा शरीर त्याग, रावण द्वारा शिव को शिरकाट कर अर्पित करना, रावण का कैलास को उखाड़ना, काम द्वारा शिव की समाधि को भंग करने का प्रयास, शिव का गजचर्म धारण करना, सर्पभूषा, शार्दूलासन तथा गङ्गा-यमुना का चामरग्राहिणीत्व आदि । शिवालयों में गङ्गा-यमुना प्रायः द्वार के दोनों ओर उत्कीर्ण की जाती थीं किन्तु आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलकर गंगा ने शिव पत्नी का रूप ले लिया। इतना ही नहीं, वह शंभु के केश-खींचने तक का साहस करने लगी और गौरी की सपत्नी बन गयी—

गौरीवक्रभृकुटि-रचनां या विहस्येव फेनैः ।

शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ।। मेघ. १-५०

यद्यपि कालिदास गंगा की उस मूल स्थिति से परिचित है जब वह यमुना के साथ विष्णु पर चँवर डुलायी करती थी—मूर्ते च गङ्गा यमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्- (कुमार. ७-४२) जिसके बाद वह जह्नु की तनया और "सगरतनय स्वर्ग-सोपान-पङ्क्ति" बनी । प्रायः पुराविद् मानते हैं कि शिवालयों के द्वार की प्रतीहारी गंगा गुप्तकालीन है । शिवपत्नी के रूप में उनका अंकन पांचवी सदी से पूर्व नहीं मिलता और सगरसुत-कपिल कथा का अंकन तो सर्व प्रथम गुप्तोत्तर काल में मिलता है । रावण द्वारा शिरों का उच्छेदन राष्ट्रकूटकालीन एलोरा शिल्प में पाया जाता है । लगता है कि ये कथायें कालिदास काल में विद्वानों तक सीमित रहीं और शिल्पियों के हाथों तक पहुँचने में कुछ समय लगा ।

कालिदास द्वारा उल्लिखित मुक्तायज्ञोपवीत, राम- नामांकित अंगुलीय, किरीट, वैजयन्ती माला, चार के स्थान पर सप्तसागरों की कल्पना, सप्त स्वर, वीणावादन का व्यापक प्रचार आदि ऐसे अनेकों तथ्य हैं जो कालिदास की स्थिति गुप्त काल में निर्धारित करते हैं ।

इसमें नारद द्वारा गोकर्णेश्वर शिव को वीणा-वादन द्वारा प्रसन्न करने का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है—

अथरोधसिदक्षिणोदधेः श्रितगोकर्ण निकेतमीश्वरम् ।

उपवीणयितुं ययौ रवेरूदयावृत्तिपथेन नारदः ।। रघु. ८-३३

यह गोकर्णतीर्थ गंजामजिले के महेन्द्रगिरि पर था और यहाँ के गोकर्णेश्वर शिव ५-६ वीं सदी के गंगराजाओं के आराध्य देवता थे । शिव की वीणा- प्रियता भी नचना के गुप्तकालीन मन्दिर में अंकित हुई है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य भी महत्त्वपूर्ण बाते हैं जो कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करती है । सप्तमातृकाओं के वाहनों का कालिदास द्वारा उल्लेख (कुमार. ७-३८), स्कन्द का कृत्तिकाओं से सन्बन्ध सप्तकुल पर्वतों की कल्पना, अष्टादशद्वीपों की मान्यता, तप के षष्ठांश का बलि रूप में प्रदान, कीर्ति स्तम्भों की स्थापना, श्री और सरस्वती की संगति, द्वार पर शंख और पद्म का आलेखन, प्राग्द्वारवेदि पर कुम्भ की स्थापना आदि अनेकों ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें कालिदास में मिलती हैं जिनका उद्‌गम गुप्तकाल ही है। कालिदास ने पद-पद पर जिन पौराणिक मान्यताओं और कथाओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है वे तृतीय शताब्दी के बाद ही प्रतिष्ठित हुई हैं। स्कन्द गुप्त की मुद्राओं में मयूर पर आरूढ़ स्कन्द, चामरधारिणी गंगा-युमना का शिवालयों के द्वार पर तथा समुद्र गुप्त की व्याघ्रांकित मुद्राओं पर अंकन और सबसे बढ़ कर उदयगिरि (विदिशा) में वराह द्वारा दंष्ट्रा में दबाकर उद्धृत की जाती हुई पृथ्वी का। कालिदास के कुमार संभव के निम्न श्लोक—

> **सपदि मुकुलिताक्षीं रूद्रसंरम्भ-भीत्या**
>
> **दुहितरमनुकम्प्यामद्रिरादायदोर्भ्याम्।**
>
> **सुरगज इव विभ्रत् पद्मिनीं पङ्कलग्नां**
>
> **प्रतिपथगति रासीद् वेगदीर्घीकृताङ्गः।** कुमार ३-७६

के साथ पूर्ण चित्रात्मक साम्य—इन सब बातों से यही धारणा बनती है कि कालिदास चौथी पाँचवी शताब्दी की उन पौराणिक मान्यताओं के, जो तब तक समाज में प्रतिष्ठा पा चुकी थीं या पा रही थीं, साहित्यिक अधिवक्ता थे। यह अलग बात है कि वे मान्यतायें समाज में पहले से चली आ रही थीं किन्तु प्रबुद्ध जनों की आस्था और विश्वास का अंग वे इसी काल में बनीं और इसी काल में वे शिल्प, मूर्ति, चित्र और काव्य-नाट्यकलाओं की उपजीव्य भी।

यहाँ यह जान लेना उपयुक्त होगा कि भारत में मूर्ति पूजा के प्रमाण मौर्ययुग से ही मिलने लगते हैं। हिरण्यार्थी मौर्यों ने अपना कोष भरने के लिए विविध धातुओं की पण्य देवमूर्तियाँ गढ़ायी थी। इसलिए इस युग में अपण्य (पूजार्थ) और पण्य(क्रीडनक) देवमूर्तियाँ भी थीं। पतञ्जलि ने महाभाष्य में "जीविकार्थे चापण्ये" (५-३-८९) सूत्र पर भाष्य करते हुए कहा है—"यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति अपण्य इत्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति शिवः स्कन्दः विशाख इति। किं कारणम्: मौर्यैं र्हिरण्यार्थि भिरर्चाः प्रकल्पिताः। भवेत्तासुनस्यात्।" इससे पाणिनि काल (५०० ई. पू.) में भी मूर्तियों का पता चलता है। इनमें कुछ का व्यवहार व्यक्तिगत पूजा के लिये लोगों द्वारा होता था। कुछ मन्दिरों में प्रतिष्ठित की जाती थीं। कुछ पुजारी जनों द्वारा घर घर ले जा कर दिखायी जाती थीं। मन्दिरों के चढ़ावे तथा इस प्रकार घर घर ले जाने से प्राप्त दक्षिणा बहुतों की जीविका थी। तीसरे प्रकार की मूर्तियाँ खिलौनों के रूप में व्यवहृत होती थी। प्रथम दो प्रकार की मूर्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस देवता के नाम पर ही सम्बोधित की जाती थी जिसकी वे होती थीं । यथा-शिवः स्कन्दः, विशाखः । किन्तु खिलौनों के रूप में बनायी मूर्तियों में देवता के नामके आगे 'क' जोड़ दिया जाता था । यथा-शिवकः । कुछ देवताओं के द्वन्द्व भी होते थे । ऐसे द्वन्द्वों में ब्रह्मा और प्रजापति, शिव और वैश्रवण तथा स्कन्द और विशाख अति प्रसिद्ध थे । कालिदास के मेघदूत तक शिव और कुबेर की जोड़ी का स्मरण लोगों को था । मेघदूत में इसके अनेकों साक्ष्य विद्यमान है । हाँ शिव और स्कन्द तथा पार्वती और स्कन्द में किसी पारस्परिक सम्बन्ध का पता इस समय तक नहीं चलता ।

ई. पू. द्वितीय शती से पूर्व भी शिव भक्ति का व्यापक प्रचार था। शिवोपासकों का अपना स्वतन्त्र सम्प्रदाय बन चुका था और ये लोग शिव भागवत कहलाते थे। ये लोग अपने पास सम्प्रदाय-चिह्न के रूप में त्रिशूल रखते थे। इसलिए ये आयः शूलिक कहलाते थे । देवता द्वन्द्वे च (६-३-२६) तथा अयः शूल दण्डाजिनाभ्यां ठक्ठत्रौ (५-२-७६) सूत्रों के भाष्य में पतञ्जलि ने उपर्युक्त तथ्यों पर प्रकाश डाला है ।

एक देवता जिसकी पूजा होती थी, वह हैं प्रजापति काश्यप । काश्यप वरूण और विष्णु का भी एक नाम है । शिव के समान काश्यप की मूर्ति भी कुछ लोगों की जीविका का साधन थी । कालिदास ने शाकुन्तल के सप्तम अंक में काश्यप के प्रति महान् आदर व्यक्त किया है किन्तु कालिदास काल में काश्यप की देवता रूप में पूजा का कोई संकेत नहीं मिलता । पतञ्जलि ने १-२-६४ सूत्र के भाष्य में इस ओर संकेत किया है ।

ईसा पूर्व तृतीय-द्वितीय शताब्दी तक देवताओं के स्थान को प्रासाद कहते थे । देवगृह या मन्दिर शब्दव्याकरण महाभाष्य में नहीं है । हाँ देवताओं के उत्सव अब मनाये जाते थे ।जो 'मह' कहलाते थे । इन्द्रमह और गंगामह समाज में प्रचलित थे । इससे गंगा की प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है । संभव है, यह मह गंगा को समर्पित न होकर गंगातट पर किया जाने वाला कोई उत्सव हो, जैसे गंगा दशहरा तो आज भी प्रचलित है ही ।

द्वितीय ईसवी पूर्व तक अवतारों की पूजा का उल्लेख नहीं मिलता । हाँ, बलराम और केशव के प्रासाद (मन्दिर) में पूजा-वाद्यों का उल्लेख अवश्य है । २-२-३४ सूत्र के भाष्य में "मृदङ्ग शंङ्ख पणवाः पृथङ् नदन्ति संसदि प्रासादे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनपति-रामकेशवानाम् ।" राम (बलराम) की पूजा काफी समय तक प्रचलित रही । भास ने भी स्वप्नवासवदत्त के मंगलाचरण में उनकी वन्दना की है । वासुदेव शब्द का उल्लेख भाष्य में अनेक बार हुआ है किन्तु अर्जुन के सहचर, महाभारत के योद्धा के रूप में । ये दोनों वृष्णि वंश के नेता के रूप में प्रसिद्ध थे । सम्मानार्थ उनके नाम से पूर्व 'तत्र भवान्' विशेषण का प्रयोग होता था—"जघान कंसं किल वासुदेवः ॥" (सूत्र. ३-२-१११) तथा 'संकर्षण- द्वितीयस्य बलं कृष्णस्य वर्धताम्" (सूत्र २-२-२४ भाष्य ।) एक स्थान (४-३-९८ सूत्रभाष्य) पर कहा है- "अथवानैषाक्षत्रियाख्या । संज्ञैषा तत्रभवतः" । इन सब बातों को साथ मिला कर देखें तो स्पष्ट होगा कि धीरे धीरे कृष्ण में देवत्व का आरोप तो प्रारम्भ हो गया था किन्तु कृष्ण वासुदेव में विष्णुत्व की प्रतिष्ठा अभी शेष थी । वह बलराम के साथ पूजित तो होने लगे थे किन्तु शिव, स्कन्द और विशाख के समान सर्वमान्य देवता के रूप में स्वीकृत नहीं हो पाये थे । अन्य अवतारों, विशेषतः राम के विष्णुत्व की प्रतिष्ठा की तो बात ईसा पूर्व युग में नहीं उठी । यही स्थिति अन्य अवतारों के विषय में कही जा सकती है । कृष्ण, राम आदि की अवतारी पुरूषों के रूप में गणना परवर्ती काल की बात है । और यही बात शिव और स्कन्द के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कही जा सकती है । स्कन्द इस समय तक शिव के पुत्र नहीं थे ।

अच्छा होगा यदि इस प्रसंग में गुप्त कालीन चित्र कला पर भी एक दृष्टि डाल ली जाय ।

(ख) चित्रकला—कालिदास की कृतियों में चित्रकला के उल्लेख प्रचुरता से मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि उनके समय में चित्रकला न केवल अति लोकप्रिय थी, प्रत्युत उच्च धनी परिवारों और राज प्रासादों में तो वह जीवन का सहज अंग बन चुकी थी । मेघ दूत का यक्ष वियुक्ता प्रिया का चित्र बनाना चाहता है तो वियोगी दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र बनवा कर मन बहलाना चाहता है । राजधानी अयोध्या के भवनस्तम्भ मनोरम चित्रकारियों से सजाये गये थे जिन्हें देखकर जीवन्तता का आभास होता था । फिर भी अभी तक द्वितीय शती ईसा पूर्व के चित्र अप्राप्त हैं । सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण चित्र अजन्ता की गुफाओं में ही मिलते हैं और वे ५-६ वीं शताब्दी के हैं । कालिदास निश्चित ही उनसे परिचित नहीं थे । उन्होंने चित्रशाला का जो उल्लेख किया है वह राज महलों या धनाढ्यों के हर्म्यों के सन्दर्भ में हैं । बाघ की गुफा २,४ और ५ तथा अजन्ता की गुफा १६, १७ के चित्रों से कालिदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भाव- साम्य अवश्य है। कालिदास ने कहीं न कहीं स्तम्भचित्रों को अवश्य देखा था। अयोध्या में जिस गम्भीरता से उन्होंने योषिताओं और गजों के चित्रों का वर्णन किया है वह केवल कल्पना के द्वारा दुर्बर्ण्य है। ये वर्णन उन्हें गुप्तवाकाटक कालीन अजन्ताचित्रों के समकालीन सिद्ध करते है, भले ही उनमें बौद्ध प्रभाव का स्थान श्रृंगार भावों ने ले लिया हो।

यद्यपि स्तम्भों का निर्माण अशोक काल से भी पहले प्ररम्भ हो गया था, तो भी स्तम्भ-चित्र कला के प्रमाण पाँचवी शती के पूर्व उपलब्ध नहीं होते। इसी प्रकार कालिदास द्वारा वर्णित स्वर्ण-सिंहासन, रत्नासन और गजदन्तासन, कनकासन (रघु. १९-५७, ६-४, १७-२१ तथा कुमार० ७-२८), कमलवलय (मेघ० १-२), जाम्वूनदपट्ट (रघु० १८-४४), काञ्चन कुण्डल (ऋतु. ३-१९), चामीकराङ्गद (विक्रमो. १-१५) आदि विविध स्वर्णाभूषण, तिरस्करिणी (कुमार. १-१४) गवाक्ष (रघु. ७-११) पालितमयूर या क्रीडामयूर (मेघ.२-१६) दोलारोहण (माल. ३-२) सीमन्ताभूषण (विक्रमो. ५-५), ओष्ठ-राग, पादरंजन यालाक्षाराग (शाकु. ४-५, रधु.१९-४१) ताल-व्यजन (कुमार. ३-३५) स्तनांशुक (शाकु. १-७) आयताकार शिविका (रघु. ६-१०) वेणु- वादिनी अप्सरा (रघु, १९-३५) जैसे सरस चित्र जो कालिदास की रचनाओं में आये हैं बे वाकाटक गुप्त युग के अजन्ता गुहा चित्रों तथा बाघगुफा चित्रों में देखे जा सकते हैं किन्तु वे सर्वथा भिन्न सन्दर्भों में है। इन दोनों के बीच केवल भाव-सादृश्य हैं, उद्देश्य दोनों के भिन्न हैं। फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस प्रकार के रूपांकन चौथी-पाँचवी शती में बहुत लोकप्रिय थे। इन में धार्मिक भावना से जिनका चित्रण गुफाभित्तियों पर हुआ वे जीवित बच गये, शेष काल के गर्त में समा गये।

ध्वजों और रंग मंच के पर्दों तथा प्रेक्षागृह के बाहर चित्र बनाने की प्रथा भारत में तीसरी ई० पू० शती से ही प्रचलित थी। ध्वजों पर गरुड़ आदि के तथा प्रेक्षाग्रहों में कंसबध, बलिबन्ध, जाम्ववती जय, त्रिपुर दहन आदि नाटकों के भावपूर्व चित्र दर्शकों को आकर्षित करने के लिए लगाये जाते थे।

फलित ज्योतिष—कालिदास को कुमारगुप्त प्रथम के समय अर्थात् पाँचवी ईसा शती में माननेवालों का अपने पक्ष में एक तर्क यह भी है कि भारत में गणित ज्योतिष का प्रचार तो ईसा से बहुत पहले से चला आ रहा था किन्तु राशियों का ज्ञान ईसा की चौथी शती से पूर्व नहीं था। बारह राशियों का और नवग्रहों से फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताने का ज्ञान भारत को ग्रीक विद्वानों से प्राप्त हुआ। ४७६ ई० के आर्यभट्ट से पूर्व यहाँ के लोगों को राशिओं का ज्ञान नहीं था। फलित ज्योतिष के प्राणभूत राशि, होराजन्मचक्र और सप्ताह आदि का उल्लेख न तो रामायण में है और न महाभारत में ही। अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ यथा वेदांग, ज्योतिष, सूर्य प्रज्ञप्ति या सूर्य सिद्धान्त भी इनका उल्लेख नहीं करते। मेषादि राशियों के नाम किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलते। क्रान्ति वृत्त के बारह भाग (राशि) मानकर उनके अनुसार ग्रहों की स्थिति बताने की पद्धति के बदले यहाँ नक्षत्रों के द्वारा चन्द्रमा की स्थिति बतलाने की प्रथा रही है। पुरातत्त्व की दृष्टि से सर्वप्रथम अजन्ता में बुद्ध की जन्मपत्रिका का चित्रण मिला है जो ५-६वीं सदी काहै। राशियों का सर्वप्रथम शिल्पांकन पाँचवी सदी के उत्तरार्ध की एरण की वराहमूर्ति पर मिला है और राशियों—वृषभ, तुला, धनु, मेष आदि के चित्र सर्वप्रथम गुप्तमुद्राओं पर मिले हैं, इससे पूर्व नहीं जबकि कालिदास में गणित के साथ फलित ज्योतिष के सन्दर्भ अनेकशः मिलते हैं। यथा—

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्च- संश्रयैरसूर्यगैः सूचित- भाग्य- संपदम्॥
असूत पुत्रं समये शची-समा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थ मक्षयम्॥

रघु० ३-१३

तथा—

अथौषधीनामधिपस्य वृद्धौ तिथौच जामित्र-गुणान्वितायाम्।
समेत- बन्धुर्हिमवान् सुताया विवाह- दीक्षाविधिमन्वतिष्ठत्॥

कुमार ७-१

तथा—

तिष्ठत्येकः क्षणमधिपति ज्योतिषां व्योममध्ये,
षष्ठे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमह्नः। विक्रमो० २-१

तथा—

नक्षत्र-तारा-ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।

रघु० ६-२२

तथा—

वयं शीघ्रमपक्रामः यावदङ्गारको
राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति। माल० ३-२२ के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के उद्धरण कालिदास में बिखरे पड़े हैं। मैंने "ज्योतिष" शीर्षक से उनकी पृथक् चर्चा आगे की है फिर भी उपर्युक्त उद्धरण उच्च संस्थ पाँचग्रहों के द्वारा यदि वें सूर्यग न हों, भाग्य श्री की सूचना, जामित्रगुणान्वित तिथि, मध्याह्न का दिन का षष्ठ भाग होना; नक्षत्र, तारों और ग्रहों का पृथक्-पृथक् ज्ञान, अंगारक का राशि के अनुवक्र प्रतिगमन करना आदि को सूचित करते हैं।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात है कि फलित ज्योतिष और भाग्यवाद की चर्चा सर्वप्रथम वराह मिहिर (छठी शती ५०५-५८७) में उपलब्ध होती है और वराहमिहिर ने अपनी कृति में कम से कम ३६ ग्रीक शब्दों का प्रयोग किया है। कालिदास के 'षष्ठे काले' से स्पष्ट है कि उनके समय में दिन को १२ भागों में विभक्त करने की अर्थात् अहोरात्र को २४ होराओं (hours) में बाँटने की प्रथा चल पड़ी थी। भारत में यह युग ३३६ ई० के बाद ग्रीक प्रभाव से आया था। वारों की उत्पत्ति भी भारत में नहीं हुई क्योंकि रवि सोम आदि का मूल कारण होरा-काल दिभाग है। जामित्र शब्द भी ग्रीस मूलक है और डायमेट्रान (Dia metran) से विकसित हुआ है। होरा, केन्द्र, द्यूत, कोण आदि शब्दों के समान जामित्र भी आयातित शब्द है। कुछ लोगों के अनुसार ये शब्द शकों के माध्यम से ग्रीस से भारत आये। स्वयं वराहमिहिर शकवंशीय थे। उनके नाम में ही ईरानी-शक प्रभाव स्पष्ट है। उनके द्वारा विक्रम के शत्रु शकों के संवत् का प्रयोग इस धारणा को पुष्ट करता है क्योंकि उनके जन्म से १०० वर्ष पूर्व से ही मालवों के द्वारा प्रवर्तित संवत् का प्रचलन हो गया था और स्वयं उनके जीवन काल (५३२ ई.) में ही मन्दसोर के शिलालेख में जो उनके स्थान उज्जयिनी के समीप ही था, मालव संवत् का प्रयोग हुआ था। स्पष्ट है कि वराह मिहिर ज्योतिष की दृष्टि से शक संवत् के प्रयोग को अधिक उपयुक्त समझते थे। इसका एक कारण यह भी होगा कि प्रथम से चतुर्थ शती के बीच उज्जयिनी में शकों के संरक्षण में ही फलित ज्योतिष का विकास हुआ था। प्रथम शती ई. से पूर्व होरा के प्रयोग का ज्ञान भारत को नहीं था। इसी प्रकार फरमिकस और पोलस (चौथी सदी) से पूर्व राशियों का ज्ञान नहीं था। फलित ज्योतिष का मूल ग्रीस में इस बात से भी मालूम होता है कि राशिओं आदि से सम्बन्धित कथायें ग्रीस साहित्य में हैं किन्तु भारतीय साहित्य में नहीं। हाँ, चन्द्रमा और नक्षत्रों से सम्बन्धित कथायें अनेक पुराणों में देखी जा सकती हैं। इस सबसे सिद्ध होता है कि वराहमिहिर से पूर्व फलित ज्योतिष भारत में निश्चित रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। यद्यपि वह इस दिशा में बढ़ रहा था और यह भी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राशि तथा फलित ज्योतिष भारत में शक काल में ही आयातित हुआ था। यों तो आर्य भट्ट (४७६ ई.) के पूर्व भी भारत में ज्योतिर्विज्ञान था किन्तु वह गणितीय और नक्षत्रीय मात्र था। स्वयं वराहमिहिर के अनुसार पोलिस और रोमक इससे अधिक विकसित और व्यवस्थित सम्प्रदाय थे—

पोलिसकृतः स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।

स्पष्टतारः सावित्रः परिशेषौदूरविभ्रटौ ।।पञ्चसिद्धान्तिका।। १-४

पैतामह और वसिष्ठ शाखाओं को उन्होंने परिभ्रष्ट माना। वराहमिहिर ने ग्रीक राशिनामों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर उन्हें संस्कृत रूप दिया। इसलिए चौथी शती के पूर्व भारत में राशि नाम, होरा और सप्ताह आदि शब्द नहीं मिलते। इसलिए कालिदास में आये फलित ज्योतिष विषयक सन्दर्भों के आधार पर जैकोबी का यह कथन कि कालिदास का अस्तित्व ३५० ई. से पूर्व संभव नहीं, ठीक है।

फलित ज्योतिष ने भारत में भाग्यवादिता को जन्म दिया। जन्म कुण्डली इस में प्रथम फलित था। परिणामतः कालिदास में भाग्य वादिता के भी प्रचुर सन्दर्भ विद्यमान हैं। वैसे तो भाग्य पर आस्था भास में भी है किन्तु कालिदास में वह उनसे कहीं अधिक हैं। कुछ उदाहरण—

१. अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा। रघु. ८-४७

२. इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्षं समादिष्टा-आसंवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः सदृशभर्तृगामिनी भविष्यतीति। तदेवं भाविनमादेशमस्यास्त्वत्पादसुश्रूषया परिणमन्तमवेक्ष्य कालप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि।

३. अनसूया-गुणवदे कण्ण आ पडिवादणिज्जेत्ति अअदाव पढमो संकप्पो। तंजइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्प आसेण किदत्थो गुरूअणो। शाकु ४-१ से पहले।

४. शकु- एत्थदाव विहिणा देसिदं पहुत्तणं शाकु. ५.२१ के बाद।

६. सा निन्दन्ती स्वानिभाग्यानि वाला वाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।
शाकु. ५-३

७. वैखानसः—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथि-सत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमदितुं सोमतीर्थं गतः। शाकु. १-१३ के आगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार शाकु. ६-२५ के आगे "देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति," ६-१२ के आगे, "रमणीय: खलु:" आदि, ७-२४ के आगे, "नूनं में सुचरित प्रतिवन्धकम् आदि तथा रघु .१४-६२ में 'ममैव जन्मातर पातकानां विपाक विस्फूर्जथुरप्रसह्य:'। विक्रमो. ५-१९ के आगे 'त्रिकाल दर्शिभिर्मुनिभिरादिष्ट:" आदि, रघु. ६-५८ में "तस्मादपावर्तत दूरकृष्टानीत्येव लक्ष्मी: प्रतिकूलदैवात्"। तथा कुमार. १-५ तमादिदेशैक वधूंभवित्रीं नाम्नाशरीरार्ध हरां हरस्य ॥

ऊपर जिन निमित्तकों का उल्लेख हुआ है उनको कालिदास काल में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ये लोग ग्रहों और राशियों के आधार पर जन्म- पत्रिका बनाते थे और भविष्य कथन करते थे। रघु. ३-१३ में ग्रहों के आधार पर भाग्य की सूचना दी गयी है। यह विज्ञान ४-५ वीं शती से पूर्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कालिदास ने मुहूर्त शब्द का प्रयोग मांगलिक-वेला के अर्थ में भी किया है जो फलित ज्योतिष के ही अन्तर्गत है। वह पार्वती की मांगलिक प्रसाधन क्रिया मैत्र मुहुर्त में बतलाते हैं जो चन्द्रमा और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के योग से बनता है—

मैत्रे मुहूर्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्तर- फाल्गुनीषु ॥

कुमार. ७-६

मुहूर्त विज्ञान का ५वीं सदी से पूर्व उल्लेख नहीं मिलता। इस समय यात्रा के लिए भी मुहूर्त निकाले जाने लगे थे और यात्रा के लिए सम्मुख शुक्र अशुभ माना जाता था। (कुमार. ३-४३) । पार्वती के विवाह के लिए सप्तर्षियों ने मुहूर्त निकाला था। (कुमार. ६-९३)। मुहूर्त का पुरातात्त्विक उल्लेख सर्वप्रथम छठी शती के मिहिरकुल के ग्वालियर लेख में मिलता है—"तिथि नक्षत्र मुहुर्ते संप्राप्ते सु प्रशस्त दिने"। इसी प्रकार कालिदास ने धूमकेतु के उदय, एवं सूर्य के परिवेष को भी विनाश कारी माना है—कुमार. २-३२ तथा रघु. ११-६१ । उन्होंने परिवेष-मुक्त सूर्य को मंगल्य बताया है—रघु. ८-३० । वराहमिहिर ने वृहत्संहिता के १४ वें अध्याय ने ऐसे अपशकुनों को मान्यता दी है। श्रृगाल का वाशन, अंगों का स्फुरण, काला टीका, आर्द्र हरिताल और मैनसिल का तिलक (शाकु. १-१५, मेघ. २-३२, कुमार. ७-२०, २३) आज के समान ही उस युग में अंमगल्य या मंगल्य माने जाते थे। इसी प्रकार कालिदास की कृतियों में विवाह सम्बन्धी ऐसी लौकिक विधियों का उल्लेख है जो आज भी प्रचलित हैं किन्तु सूत्र- काल में नहीं थी—कुमार. ७-८८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलित ज्योतिष के उपर्युक्त परवर्ती विस्तार के समान सामुद्रिक विज्ञान भी उसका उत्तरकालीन विकास है। मुहूर्त विज्ञान, शकुन शास्त्र और सामुद्रिक विज्ञान भी सर्वप्रथम वराहमिहिर में ही उल्लिखित हुआ है। कालिदास भी लक्षणों पर आस्था प्रकट करते हैं—शाकु. ५-१५ के आगे "कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते" तथा रघु. ६-१८ में "कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखा ध्वजलाम्छनेन", शाकु. ७-१६ में "जाल- ग्रथिताङ्गुलिः करः", शाकु. ४-९ के पूर्व "नैतादृशा आकृति-विशेषा गुण विरोधिनो भवन्ति।" तथा रघु. ४-८८ में "ते रेखाध्वज- कुलिशातपत्र-चिह्नं-सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम्" आदि।

इन सब बातों के आधार पर कालिदास की तिथि पाँचवी ई. शती से पूर्व ठहराना युक्तियुक्त नहीं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अद्यतन की परिभाषा दी है—"अतीताया रात्रेः पश्चार्धेनागामिन्याश्च पूर्वार्धेन सहितो दिवसोऽद्यतनस्तद्भिन्नश्चानद्यतनः"। उन्होंने अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन, वत्सर, ऋतु, नक्षत्र सन्धिवेला आदि की चर्चा की है किन्तु राशियों और सप्ताह की नहीं। उन्होंने आर्द्रा, मूल, पुनवसु (दो), कृत्तिका और रोहिणी (वहु.) विशाखा (दो) कृत्तिका (छै) तथा अन्य नक्षत्रों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये हैं। वह सत्ताइस नक्षत्रों में प्रत्येक की सूक्ष्म जानकारी रखते थे। कौन नक्षत्र युग है और कौन अनेकों का समूह, यह बात वह जानते थे। तैत्तरीय ब्राह्मण को तो सात-अम्बा, दुला, नितिली, अग्रयन्ती, मेघायन्ती वर्षयन्ती और चुपुणिका-कृत्तिकाओं का ज्ञान था। मासों के नाम पूर्णचन्द्र के साथ नक्षत्र के योग के आधार पर रखे गये थे। वैदिक नक्षत्रों का प्रारम्भ कृत्तिका से होता है। बाद में ४९० ई. के लगभग दिनरात का तुलमान द्योतित करने के लिए अश्विनी का स्थान प्रथम माना जाने लगा। पाणिनि ने सात नक्षत्रों की गणना में श्रविष्ठा का उल्लेख प्रथम किया है। वेदाङ्गज्योतिष की सूची भी श्रविष्ठा से प्रारम्भ होती है। गर्ग की दृष्टि से धार्मिक कार्यों में कृत्तिका तथा सामान्य कार्यों में श्रविष्ठा प्रथम है। महाभारत के आदिपर्व में श्रवण (७१-७४) प्रथम है। राशि के उदय से माने जाने वाले लग्न का ज्ञान पाणिनि को नहीं था। यद्यपि उन्होंने शब्द का प्रयोग किया है पर भिन्न अर्थ में।

पुराण—यह बात इस ग्रन्थ में बार बार दोहारायी गयी है कि कालिदास पुराणों के सर्वोत्तम अधिवक्ता कवि हैं। दो को छोड़ कर उनकी अन्य सब कृत्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण कथाओं पर आश्रित हैं उन्होंने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है वह भी प्रायेण पुराण-प्रसूत हैं—यथा पिनाकपाणि, शूली, कपाली, दिगम्बर, पञ्चवाण आदि। प्रसिद्ध पुराण कथाओं में गंगावतरण, उर्वशी का ऊरुद्भवहोना, कलिन्दकन्या, सोमोद्भवा सरित्, अहल्यामोक्ष, रामावतार, रावण, तारक आदि की कथायें, शिव सम्बन्धी अनेक सन्दर्भ, इन्द्र सम्बन्धी आख्यान आदि हैं। कालिदास को पाँचवीं शती से विद्यमान मानने वालों का तर्क है कि पुराणों का पृथक् पृथक् ग्रन्थों के रूप में संकलन और व्यवस्थापन चौथी शताब्दी के ही लगभग सम्पन्न हुआ था। फिर पुराणों को वैष्णव प्रभाव में पुनः संस्कृत करने का काम तो गुप्त युग में ही हुआ यहाँ तक कि इस युग में दुर्गा या काली के ऊपर योगमाया, विष्णुमाया, महामाया की प्रतिष्ठा और त्रिदेवों के ऊपर महाविष्णु की प्रतिष्ठा हुई। फिर विष्णु के दशावतारों की कल्पना हुई। इस सब के बीच भले ही लोक विश्वास और पुराण कथाएँ रहीं हों किन्तु उन्हें चातुर्य पूर्ण ढंग से आस्था और विश्वास का अंग बना देने का काम तीसरी-चौथी सदी में ही हुआ।

यह सत्य है कि पुराण साहित्य की चर्चा ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व से ही होती आ रही थी और वैदिक साहित्य के समानान्तर ही इतिहास और पुराण साहित्य विपुल परिमाण में इकट्ठा होता रहा था और उसमें वरावर नया भी जुड़ता जा रहा था। यह भी कहा जा रहा था कि वेदों को समझने के लिये इतिहास पुराण का जानना आवश्यक है। फिर भी इन कथनों से रामायण और महाभारत तथा वर्तमान पुराण, जो आगे चलकर अठारह महापुराणों के रूप में ही नहीं अठारह उपपुराणों के भी रूप में निबद्ध किये गये, अभिप्रेत न थे। कम से कम पाणिनि-पतञ्जलि काल तक किसी व्यवस्थित पुराण का पता नहीं चलता। यह बात अलग है कि पुराण कथाओं या आख्यानों के नाम पर देश के अनेक भागों में काफी सामग्री जमा हो गयी थी और वह लोकप्रिय थी। इसीलिये पाणिनि जब पुराण शब्द का प्रयोग करते हैं तो अपने से पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के अर्थ में, किसी ग्रन्थ विशेष के लिये नहीं। उनके ऋगयनादिगण (४-३-७३) में छन्दोमान, छन्दों-भाषा, छन्दोविचिति, वास्तु विद्या, क्षत्र विद्या, उत्पाद, उत्पात, उपनिषद्, निरुक्त, न्याय, व्याकरण, शिक्षा, मुहुर्त, निमित्त आदि अध्ययन क्षेत्रों का उल्लेख है किन्तु पुराणों का नहीं। हाँ, वायसविद्या, अङ्ग विद्या, शकुन आदि पर भी साहित्य विद्यमान था। ईसा पूर्व में आख्यानविदों का भी एक वर्ग था। ये लोग सौपर्ण आदि आख्यान सुनाया करते थे। पुराण संभवतः एक ही ग्रन्थ था। पतञ्जलि ने आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन चारों को पृथक माना है । पुराण शब्द का सर्वत्र एकवचन में प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि कम से कम ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक पृथक् पृथक् पुराणों का संकलन नहीं हुआ था । इसीलिये पुराणों का बहुत सा अंश महाभारत में भी मिल गया । मेरा विचार है कि चतुर्थ शताब्दी में हूणों के आगमन के बाद जब महाभारत को पूर्णता मिली तो उसी के अनुसरण पर पुराणों को अठारह भागों में निबद्ध करने का उपक्रम आरम्भ हुआ और चौथी शती के अन्त तक प्राय: प्रमुख पुराणों का निबन्धन हो गया यद्यपि उनमें निबद्ध कथाओं और उपदेशों को समाज में पहले ही मान्यता मिल चुकी थी और खुले रूप से उनका वाचन भी होने लगा था ।

अवतारवाद—कालिदास के युग में अवतारवाद ने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी । इनमें से कालिदास ने राम, कृष्ण, परशुराम, बलराम, वामन, को अपने काव्य में स्थान दिया, यद्यपि अन्य अवतारों को भी तब तक स्वीकृति मिल चुकी थी । इनमें अपनी जंघा से उर्वशी को जन्म देने वाले नारायण भी हैं । इन अवतारों को मान्यता देने वाले पुराणों में से प्राय: में गुप्तों का उल्लेख होने से इनका रचना काल स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है । कालिदास पर इन पुराणों का प्रभाव भी पूरी तरह है अन्यथा उनके जैसा महान् कलाकार यह कभी न लिखता—

पृथ्वीं शासतस्तस्य पाक- शासन- तेजसः ।

किंचिदूनमनूनर्धेः शरदामयुतं ययौ । रघु. १०-१

और न यह ही कहते—

समदिवस- निशीथं सङ्गिनस्तत्रशंभोः शत

मगममदृतूनां साग्रमेका निशेव । कुमार ८-९ ।

और न गन्धर्वगज तथा नागराज कुमुद आदि की जादुई कथाओं का ही समावेश अपनी रचनाओं में करते । कालिदास ने ये सारी बचकानी बातें विष्णु आदि पुराणों से ग्रहण कीं जिन का रचना काल चौथी शताब्दी के पूर्व नहीं ठहराया जा सकता । अत: कालिदास सुतरां पंचम शताब्दी के सिद्ध होते हैं । इस बात का इससे बढ़कर प्रमाण क्या हो सकता है कि वायु और भविष्य पुराण स्वयं ही अपने को गुप्त राजाओं से परवर्ती बतलाते हैं—

अनुगङ्ग प्रयागं च साकेतं मगधां स्तथा ।

एतान् जनपदान् देशान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः । वायु. ९९-३८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय तक अनेक श्रृंगारिक ग्रन्थ भी लिखे जा चुके थे। तभी तो शाकु० में अनसूया शकुन्तला की वेदना को लक्ष्य कर कहती है कि हमें मदन के विषय में कुछ पता नहीं किन्तु इतिहास निबन्धों में कामार्तों की जैसी दशा बतायी गयी है वैसी ही यह भी है—"हला सउंदले ! अण अन्तरा खुअम्हे मदणगदस्त वृत्तं तस्सा। किंदु जादि सी इतिहास-णिवंधेसु काम अमाणाणं अवत्था सुणी अदितादिसीं दे पेक्खामि।" शाकु० २-७ के आगे

इसके अतिरिक्त कालिदास में इन्द्र की जो स्थिति है वह चतुर्थ-पंचम ईसवी से पहले संभाव्य नहीं थी। इन्द्र को केवल इतना ही स्मरण है कि वह यज्ञांश भोगी देवताओं में प्रथम है। वह सोमपायी है। कुलिश उसका अस्त्र है। वह स्वयं ऐरावत परवैठ कर चलता ही नहीं, उसे अंकुश से चलाता भी है। वह शतक्रतु हैं और अन्य किसी को शतक्रतु नहीं बनने देता। उसका समय अपने सिंहासन की सुरक्षा की चिन्ता में बीतता है। वह तपस्वियों को तपोभ्रष्ट करने के लिये अप्सराओं और मकरध्वज का उपयोग करता है। नाकलोक का अधिपति है किन्तु अपनी रक्षा के लिये वह पृथिवी के नरेशों से मैत्री बनाये रखता है। उसका रूप बौद्ध ग्रन्थों के मार-जैसा है। वह प्राय: शची के साथ रहता है। उसके जयन्त नामक पुत्र है जिसका चरित्र इसी से स्पष्ट है कि उसने सीता के अनावृत स्तनों पर चोंच मारी थी, और फलस्वरूप उसे एक आंख गँवानी पड़ी थी। इन्द्र भी गौतम वधू अहल्या का सतीत्व हरण करने का अपराधी है। इन्द्र का यह चरित्र उसके वैदिक रूप से कितना भिन्न है ?

यज्ञपरम्परा—

याज्ञिक परम्परा कालिदास में गौण हो गयी है, यद्यपि वह अश्वमेध की चर्चा करते हैं। दूर तक गड़े हुए यज्ञ यूपों,अग्न्यगार आवसथ आदि की चर्चा करते है किन्तु अतीत की बातों के समान। ऋत्विजों और अध्वर्यु जनों का स्थान आथर्वण पुरोहितों ने ले लिया है जो शान्ति- पुष्टि का पूरा दायित्व सम्हाले हैं। विघ्न शान्ति के लिए किये जाने वाले उपचारों की चर्चा, जो आथर्वण विधियों का भाग हैं, कालिदास बड़ी श्रद्धा और आस्था के साथ करते हैं। ये सारी बातें उन्हें वैदिक युग से काफी पीछे के पौराणिक युग का सिद्ध करती है। "अमी वेदिं परितः" जैसे जगती छन्द कोई भी लिख सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य—

कालिदास मनु-स्मृति के पश्चाद्वर्ती हैं । उन्होंने बार-बार मनु स्मृति अर्थात् मनुवर्त्म में विहित और निषिद्ध बातों का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है और राजतन्त्र सम्बन्धी प्रसंगों में तो उसकी पारिभाषिक शब्दावली तक का व्यवहार किया है । संस्कार, आश्रम चर्या आदि के नियम और बातें पूर्णतः मनु पर आश्रित है । कौटिलीय अर्थ शास्त्र से वह परिचित हैं और विरोधी के उन्मूलन तथा व्यवस्था के विषय में जिन बातों का उल्लेख करते हैं वे कौटिल्य के प्रभाव को स्पष्ट सूचित करती है । कामसूत्र की उनकी जानकारी गहरी है । वह उसका अनुसरण ही नहीं करते अपितु उसकी शब्दावली तक को दोहराते हैं । यह प्रभाव कुमार० के अष्टम, रघुवंश के १९ वें सर्ग तथा शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में देखा जा सकता है । इसकी चर्चा पर्याप्त हो चुकी है ।

कालिदास पर नाट्य शास्त्र का प्रभाव इसी से जाना जा सकता है कि उन्होंने ना. शा. के प्रथम अध्याय के समान ही विक्रमो० के द्वितीय अंक में भरत के द्वारा अप्सराओं को लेकर इन्द्रसभा में लक्ष्मी स्वयंवर नाटक के प्रयोग की व्यवस्था कर डाली है—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगः भवतीष्वरसाश्रयो निबद्धः ।

ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः ।

२-१७

नाटकों की शान्तवर्ज अष्टरसाश्रयिता, और ललिताभिनय ही नहीं अपि तु सारा वन्ध-प्रबन्ध नाट्य शास्त्र का अनुगामी है । वह वर्तमान नाट्यशास्त्र के मायूरी मार्जना, सन्धि, वृत्ति, नान्दी, तान, विट, विदूषक आदि अनेक शब्दों का प्रयोग वह इस प्रकार करते हैं जैसे वे सर्वग्राह्य हों । नाट्यशास्त्र का प्रथम संकलन २०० ई. के लगभग हुआ और उसे वर्तमान रूप ४०० ई. के लगभग मिल पाया । इस अवधि में बहुत कुछ जुड़ता रहा । संगीताध्याय भी ऐसे ही परवर्ती काल की देन है । उन्होंने नृत्य, अभिनय और देशी रागों की चर्चा जिस प्रकार की है वह उन्हें भरत से परवर्ती सिद्ध करता है । एक मनोरंजक बात यह है कि पतंजलि काल में निम्न दृष्टि से देखी जाने वाली नट-भार्याओं का स्थान भरत ने काफी ऊँचा उठाया है और नाटक सामान्य मनोरंजन के स्थान पर शान्त चाक्षुषक्रतु का स्थान पा गये हैं । इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वह युग है जब नाट्य, नृत्य, संगीत आदि बौद्ध, जैन और याज्ञिकों के पाशों को तोड़कर मुक्त वातावरण में साँस लेने लग गये थे। शान्त रस के अभिनय पर अवश्य कट्टरतावादियों की कड़ी दृष्टि अभी शेष रह गयी थी किन्तु उस पर भी प्रश्न चिह्न लग गया था। यह स्थिति एक दिन में नहीं बनी। कामसूत्र का युग और इस नये मुक्त वातावरण का युग भी वस्तुत: एक ही है। कामसूत्र कौटिलीय अर्थ शास्त्र से पूरी तरह प्रभावित ही नहीं है प्रत्युत दोनों ग्रन्थों का प्रकरण विभाजन भी एक जैसा ही है। भाषा तथा प्रतिपादन शैली की दृष्टि से अर्थशास्त्र, कामसूत्र से सौ वर्ष से कम पुराना नहीं है। अर्थशास्त्र अपने वर्तमान रूप में २०० ईसवी के लगभग की रचना है तथा कामसूत्र, नाट्यशास्त्र और मनुस्मृति लगभग ३०० ई. की। कालिदास पर इन तीनों का काफी ऋण है। कुमार०, रघु०, माल०, और शाकु० के अनेक अंश इन चारों के प्रतिपाद्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस विषय में विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। इस सब को ध्यान में रखते हुए कालिदास को ३५० ई. से पूर्व स्वीकार करना संभव नहीं है।

दिङ्नाग-प्रसंग

मेघदूत में कालिदास मेघ को उसके मार्ग के विषय में निर्देश देते हुए कहते हैं—

स्थानादस्मात् सरस-निचुलादुत्पतोदङ्मुखःसन्,

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल- हस्तावलेपान्॥ १-१४

इन पदों पर टीका करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं—"अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति। रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदास- प्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात्। तथा—दिङ्नागानां पूजायां बहुवचनम्। दिङ्नागाचार्यस्य कालिदास- प्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्त विन्यासपूर्वकाणि दूषणानि पारिहरन्। तथा— अद्रेरद्रिकल्पस्य दिङ्नागाचार्यस्य श्रङ्गं प्राधान्यं हरति किं स्विदिति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धै र्महाकविभि रङ्गनाभिश्च दृष्टोत्साहः। दक्षिणावर्तथ इन पंक्तियों में प्रयुक्त दिङ्नागानां के सम्बन्ध में लिखते हैं—"दिङ्नाग इति कोऽपि आचार्य: कालिदास- प्रबन्धान् अन्यत्रोक्तोऽ यमर्थ इति स्थूल- हस्ताभिनयैर्दूषयति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार दोनों टीकाकारों के मत में इन पंक्तियों में श्लेष हैं। वे आचार्य दिङ् नाग और दिग्गज दोनों की ओर संकेत करती हैं। इसी प्रकार निचुल शब्द तत्कालीन सरसकवि और नरकुल लता दोनों की ओर इंगित करता है। प्रश्न यह है कि ये टीकायें विश्वसनीय है, प्रमाण रूप में ग्रहण की जा सकती हैं या केवल जनश्रुति को ही दोहराती हैं ? इतना स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास मे जानबूझ कर ही श्लेष का प्रयोग किया है अन्यथा वे इस पदावली का प्रयोग न करते। निचुल जिसकी गणना तृणवर्ग में है, झुक कर पानी के वेग को झेलने के लिये प्रसिद्ध है, सरसता के लिये नहीं। जल में होने के कारण उसे श्लेषादि के प्रसंग में सरस भी कहा जा सकता है। उदङ् मुख पद का प्रयोग भी विजेता की मुद्रा प्रकट करने के लिये हुआ है जो विरोधी के दर्पदलन से उत्पन्न होती है। दिङ्नाग तो अपनी अपनी दिशा में रहते हैं आशापालों के समान। उत्तर की ओर जाता मेघ उत्तर दिङ्नाग के अवलेप का हरण कर सकता है, सब दिग्गजों का नहीं। फिर दिग्गजों के पास गर्व की वस्तु यदि कोई वर्णित की जाती है तो वह है उनका मदजल, दान, उनके मस्तक के मुक्ता न कि उनकी मोटी सूँड। उससे अधिक स्थूल तो उनके पाँव ही होते हैं। और अवलेप में बहुवचन क्यों ? क्या प्रत्येक दिग्गज का अवलेप पृथक् पृथक् है ? पथि से यह प्रतीति होती है कि गज उसे मार्ग में मिलेंगे और मार्ग में ही वह उनके स्थूल अवलेप का हरण करेगा किन्तु दिङ्नाग तो दिगन्तों में रहते हैं। चित्रकूट और कनखल के बीच नहीं घूमते। इतनी सारी विसंगतियों की चिन्ता न करते हुए कालिदास जैसा सिद्धभाषा का रचनाकार उक्त पदावली का प्रयोग किसी विशेष उद्देश्य के लिये ही कर सकता था और वह उद्देश्य तभी सिद्ध हो सकता था जब उससे निचुल के प्रति आत्मीयभाव और दिङ्नागों (आचार्य दिङ्नाग और उनके जैसे अन्य विद्वानों) के विरोध भाव को अभिव्यक्ति मिले। इसलिये मल्लिनाथ और दक्षिणावर्तनाथ ने कालिदास के प्रदेश से इतनी दूर रह भी जिस जनश्रुति को पकड़ा है, वह इतनी अधिक प्रसिद्ध रही होगी कि शताब्दियों बाद तक सुदूर दक्षिण के विद्वानों ने उसे याद रखा होगा। यह बात यों भी ठीक लगती है कि वैदिक विद्वानों का विरोध बौद्ध दार्शनिकों और भिक्षुओं का स्वभाव बन गया था। अवश्य ही वसुबन्धु, असंग और दिङ्नाग के मित्र और साथी बौद्ध विद्वान् विश्रुति को ओर बढ़ते कवि कालिदास का जो बिना किसी मान्यता का खण्डन किये कला के माध्यम से वैदिक मान्यताओं की पुनः प्रतिष्ठापन्न कर रहे थे, विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे होंगे। ऐसे में कवि का दिङ्नाग सदृश तार्किकों के दर्प का दलन कर अपनी कीर्ति के दिगन्त (अलका) तक पहुँच जाने की कामना करना स्वाभाविक ही था।

अवश्य ही कालिदास के समकालिक निचुल की कोई काव्यकृति हमें प्राप्त नहीं है और न काल ने ही उनके चरणों के कोई चिह्न वर्तमान पीढ़ी के लिये छोड़े हैं किन्तु नियति ने ऐसा अकेले निचुल के साथ ही नहीं, अनेक अन्य कवियों के भी साथ किया है। सौमिल्ल जैसे श्रेष्ठ नाटककार ठीक ऐसे ही नियति के मारे लोगों में हैं और स्व० गणपति शास्त्री के हाथों में पड़ने से पूर्वभास तक की यही स्थिति थी। इसलिये केवल रचना या अन्य विवरण न मिल पाने के कारण हम निचुल के अस्तित्व को नकार नहीं सकते। यह नाम रखा जाता था, यह बात इसी नाम के अन्य परवर्ती विद्वान् के नाम से जिसे शेषाद्रि शास्त्री ने नानार्थ-शब्द-रत्नावली का टीकाकार और भोजकालीन बतलाया है, सिद्ध होती है।

जहाँ तक दिङ्नाग की बात है, यह बात प्रायः निर्विवाद है कि वह विज्ञानवादी बौद्धशाखा के अग्रपंक्ति के विद्वान् थे और वसुवन्धु के शिष्य। श्री एफ डब्ल्यू थॉमस ने जिस 'हस्तवाल' नामक कृति को कुछ समय पूर्व ढूँढ निकाला है, उसका तिब्बती अनुवाद उपलब्ध है। यह कृति दिङ्नाग से पूर्ववर्ती विद्वान आर्य देव की बतायी जाती थी किन्तु थॉमस का विचार है कि यह कृति दिङ्नाग की है। मूलकृति न भी हो, तो भी उनकी कारिकाओं की व्याख्या दिङ्नाग-कृत अवश्य होंगी क्योंकि दिङ्नाग की प्रसिद्धि व्याख्याकार के रुप में हैं। कालिदास को शून्यतावादी वसुबन्ध की यह कृति "स्थूल हस्त का अवलेप" लगी होगी। संभव है कवि ने उनके हाथ उठा उठा कर किये गये विरोध में बुद्धि की स्थूलता देखी हो—स्थूलान् हस्तावलेपान्।

आधुनिक विद्वान् प्रमाणशास्त्र के इस अधिकारी महापण्डित को वसुबन्धु से परवर्ती तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय का उत्तरकालीन मानते हैं। अनेक विचारकों के अनुसार उनका समय ४७५ से ५२५ ई० माना जा सकता है। चीनी परम्परा के अनुसार वसुबन्धु और उनके ज्येष्ठ भ्राता असंग बुद्ध की मृत्यु के नौ सौ वर्ष बाद हुए। इत्सिंग भी दिङ्नाग का कार्यकाल पञ्चम ई० शती माने है। इससे भी कालिदास के पंचम शताब्दी में विद्यमान होने की पुष्टि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द और शिव

कालिदास के ग्रन्थों से उनके समय में स्कन्द की प्रतिष्ठा निःसन्दिग्ध है। उनके विषय में अन्यत्र भी विचार किया गया है। मेघदूत में कवि उनके विषय में कहता है—

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना

मत्यादित्यंहुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः। मेघ. १-४३

अर्थात् इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिये चन्द्रमौलि शिव ने स्कन्द के रूप में अग्नि के मुख में अपना तेज स्थापित किया था। पार्वती उनकी माता हैं और वह पुत्र प्रेम के कारण उनके वाहन मयूर का वर्ह धारण करती है। (वही १-४४)। रघुवंश में भी कवि ने पार्वती को स्कन्द की माता कहा है (रघु २-३६) और उनके वाहन मयूर की भी पुष्टि की है—

भूयिष्ठमासीदुपमेय- कान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणागुहेन। रघु. ६-४

स्कन्द की पूजा के प्रमाण तो ई. पू. द्वितीय शताब्दी में भी मिलते हैं। किन्तु उनके पार्वती-शिवपुत्र और मयूर-वाहन होने का उल्लेख इससे पूर्व का नहीं मिलता। छान्दोग्य उपनिषद् से पता चलता है कि सनत्कुमार का एक नाम स्कन्द भी था—स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विमोक्षस्तस्मैमृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते तं स्कन्द इत्याचक्षते। छान्दो. ७-२३-२। यहाँ वह ब्रह्मवादी ऋषि हैं जो नारद को उपदेश देते है। स्कन्द के दो वाहन हैं कुक्कुट और मयूर। समराङ्गण सूत्रधार के प्रतिमा-प्रकरण में भोज ने उनके दोनो वाहनों का उल्लेख किया है। पहले द्वितीय तृतीय शताब्दी में उनका वाहन कुक्कुट था किन्तु मध्य गुप्तकाल में मयूर भी उसमें जुड़ गया। कालिदास के ग्रन्थों में और कुमारगुप्त प्रथम के सिक्कों पर वह मयूर- वाहन अंकित किये गये हैं। यह केवल संयोग नहीं है। सह प्रयोग है। स्कन्द का शिव पार्वती के साथ सम्बन्ध भी इसी युग में प्रारम्भ हुआ। पहले वह अग्नि और स्वाहा के पुत्र माने जाते थे। शिलालेखीय और वनपर्व (महा. २२५-२३२) तक के साहित्यिक प्रमाण उनके अग्निपुत्र होने की पुष्टि करते हैं। कालिदास ने उन्हें शिवपुत्र, अग्नि पुत्र और कृतिका पुत्र (जिससे कारण वह षडानन कहलाये) तीनों मान लिया है। उनके इस रूप का विकास चौथी सदी से पूर्व संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूण विजय—रघु विजय के प्रसंग में कालिदास ने हूणों का उल्लेख किया है। रघु पश्चिम में पारसीकों और हूणों को जीतकर द्राक्षावलय भूमि में मधुपान के द्वारा अपने योद्धाओं की थकान मिटाते हैं और फिर कौबेरी दिशा की ओर चल पड़ते हैं। मार्ग में उसके अश्व सिन्धु (बङ्क्षु) नद के किनारे लोटपोट कर अपना अध्व-श्रम दूर करते हैं। तब उनके कन्धों के बालों कुकुम का केसर लिपट जाता है। वहां वह हूणों पर अपना पराक्रम प्रकट करते हैं और हूणों को हरा कर कम्बोज पर आक्रमण करते हैं। (रघु. ४-६५ से ६९)

प्रश्न यह है कि ये हूण भारत में कब आये थे। अब यह बात प्राय: स्वीकार कर ली गयी है कि हूणों के दो वर्ग थे—योरोपीय जो अफगानिस्तान में थे और भारतीय हूण जो कम्बोज और पंचनद के दक्षिण में थे। भारतीय हूण यहाँ चतुर्थ शती में आये थे और हिमालय के दक्षिण में जम गये थे। यहाँ केसर की खेती होती थी। हूणों ने यहां अपनी सत्ता स्थिर कर ली थी।

यह बात तर्कपुष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय (४१४ ई.) तक हूणों का भारत में प्रवेश नहीं हुआ था। हाँ चन्द्रगुप्त के अन्तिम काल में कुषाणों के साथ उनका आना संभाव्य है। ४१३ ई. तक उनके पर्शिया के उत्तर पूर्वी अंचल तक सीमित रहने का प्रमाण यह है कि ४२१-४३८ ई. के मध्यबहराम पंचम ने उन्हें मध्यएशिया में हराया था और वे ईरानी राज्यसीमा में प्रविष्ट नहीं हो पाये थे। सन् ३७९ तक तो वे वल्ख के भी समीप नहीं पहुँच सके थे। यदि वे समुद्र गुप्त या चन्द्रगुप्त के काल में भारत में प्रवेश का साहस करते तो क्या ये महावीर उन्हें यों ही छोड़ देते? इसलिये ४५५ ई. से पूर्व किसी भारतीय अभिलेख में हूणों का उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम भितरी के शिलालेख से हमें उनकी शक्ति का पता चलता है। कहा है—

१. पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं

भुजबल विजितारिः यः प्रतिष्ठाप्य भूयः।

जितमिति परितोषान्मातरं सास्रनेत्रां

हतरिपुरिव कृष्णोदेवकीमभ्युपेतः ॥श्लोक १२

२. संवर्धमान द्युतिः—

गीतैश्चस्तुतिभिश्च वन्दक- जनोयं प्रापयत्यार्यताम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूणैर्यस्य समागतस्य समये दोर्भ्यां धरा कम्पिता ॥ श्लोक १४

और कहोम (जिला देवरिया, यू.पी.) का शिलालेख भी इस बात का समर्थन करता है कि स्कन्दगुप्त का शासन काल पूर्णतया शान्त था। स्कन्दगुप्त ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् भारत को शत्रुहीन बना दिया था। इतना ही नहीं उसने हूण, यवन, पारसीकादि म्लेच्छ प्रदेशों के शासकों का दर्पदलन कर दिया था। राज्य में शान्ति स्थापित कर पिता की मृत्यु से आनृण्य प्राप्त किया था—

१. नृपति-गुण-निकेतः स्कन्दगुप्तः पृथु श्रीः

चतुरुदधिजलान्तां स्फीत-पर्यन्त-देशाम्।

अवनिमवनतारिर्यश्चकारात्मसंस्थां

पितरि सुर-सखित्वं प्राप्तवत्यात्मशक्त्या। श्लोक ३

तथा—

अपि च जितमेव तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्यरिपवोऽपि।

आमूल-भग्न दर्पा नि(र्वचना) म्लेच्छ-देशेषु। श्लोक ४

४५५-६७ ई. के इस जूनागढ़ शिलालेख से स्पष्ट है कि अपने पिता कुमार गुप्त की युद्ध में मृत्यु हो जाने पर स्कन्द गुप्त ने म्लेच्छ देशों पर पुनः विजय प्राप्त की और कृष्ण के समान अपनी माता के नेत्रों के आँसू पोंछे। कालिदास इस घटना से परिचित नहीं हैं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि कुमार गुप्त के स्वर्ग चले जाने पर गुप्त राजलक्ष्मी विप्लुप्त भी हुई थी। कुमारगुप्त ने ४० वर्ष (४१५ से ४५५ ई.) शासन किया। कालिदास इस स्वर्णिम युग को ही देख पाये। सन् ४४० तक हूण भारत में सत्ता स्थापित नहीं कर पाये थे। भारत में उनका प्रवेश इस काल के बाद ही हुआ। संभवतः इसके बाद ही धीरे-धीरे उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ायी। कुमारगुप्त ने उन्हें पराजित कर अपने अधीन किया किन्तु सन् ५५ में उन्होंने कुमार गुप्त की राज्य सीमा पर आक्रमण किया। जिसकी प्रति रक्षा में कुमार गुप्त ने वीरगति प्राप्त की। वह इस समय वृद्ध हो चुके थे। फिर भी इसके तुरन्त बाद स्कन्दगुप्त ने अपना विजित क्षेत्र फिर शत्रुओं से जीत लिया। जूनागढ़, कहोम और भितरी के शिलालेख इस बात की पुष्टि करते है।

कुछ लोगों का कहना है कि हूण भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के भीतर शुगयुग में ही आ गये थे और ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य ने उन्हें हराया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जिसका उल्लेख रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में मिलता है। इस संबन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि शुंग युग में हूण चीन के उत्तरी अंचल यथा-मंगोलिया, मंचूरिया आदि स्थानों में ही थे, हिमालय या तिब्बत तक नहीं पहुँच पाये थे। उनका संघर्ष चीनियों के साथ चल रहा था न कि भारतीयों से। जब वे चीनियों से हारते तो पश्चिम की ओर बढ़ कर यूचियों को लूटते थे। उनके भय से यूची लोग कांगू प्रान्त से भाग कर सोग्दिया और वलख में शरण ले रहे थे। इस संघर्ष से पीड़ित होकर वलख के यवन हिन्दू कुश पार करते हुए भारत में घुस आये। बलख पर उनके स्थान पर शकों ने अधिकार किया और यूचियों ने तिब्बत में शरण ली। ३२१ से ३७८ ई. पू. तक हूणों, चीनियों और यूचियों के मध्य संघर्ष चलता रहा। भारत की सीमा उनसे अस्पृष्ट ही रही। शक और यवन हिन्दू कुश की सीमा के पास पड़ोस अवश्य थे, अतः यह मान्यता कि हूण ईसा से पूर्व भारत में आ चुके थे, तथ्यों के विपरीत है। वस्तुतः हूणों का प्रथम उदय ही तृतीय शती ई. पू. में हुआ। उनकी सात प्रजातियाँ थीं और भारत में आने वाले हूण पर्शिया के श्वेत हूण (इफ्थलाइट) थे। कालिदास ने उनकी पराजय वंक्षु या सिन्धु नदी को बिना पार किये और हिमालय पर चढ़ने से पूर्व ही बतलायी है। पश्चिम में केवल पारसीक यवन ही ऐसे थे जिनसे रघु का युद्ध हुआ। पारसीकों के पास अश्वों की शक्तिशाली सेना थी। वे दाढ़ी मूछें रखते थे और उनकी स्त्रियों के मुख कमलों के समान सुन्दर थे। ये लोग शिर पर रक्षार्थ टोप पहनते थे। इन लोगों को रघु ने बिना कोई नदी या पर्वत पार किये ही पराजित किया। इससे स्पष्ट है कि इस समय यवन उत्तर पश्चिमी पर्वतों और सिन्धु आदि नदियों के दक्षिणा पूर्व में थे। उत्तर की ओर प्रस्थान करने पर हिमालयारोहण से पूर्व रघु को केबल हूणों और कम्बोजों का सामना करना पड़ा किन्तु बिना कोई नदी या पर्वत पार किये ही। अतः यह मानना कि रघु ने हूणों को अफगानिस्तान की आमू नदी के किनारे हराया और वह, ई. पू. प्रथम शती में भी तर्कानुकूल नहीं है। यवन और पारसीक एक ही थे जिन्हें गौतमी पुत्र शातकर्णी ने १२० ई. में हराया था। गौतमी वलश्री के नासिक गुफालेख में उसे 'सक यवन पल्हवनिसूदन' कहा है। मालविकाग्नि मित्र के वसुमित्र ने भी सिन्धु के दक्षिणी किनारे पर हराया था। इससे स्पष्ट है उस समय यवन सत्ता सिन्धु के दक्षिणी किनारे पर ही थी—"सिन्धो र्दक्षिणरोधसिचरन्नश्वानी केन यवनेन प्रार्थितः" माल. ५-१५ से पूर्व। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हूणों की पराजय ४५० ई. के लगभग ठहरती है और यही कालिदास का काल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा—कालिदास की भाषा भी उनके गुप्तकालीन होने का विश्वास दिलाती है। मन्दसोर के ४३६ ई. के वत्सभट्टि के प्रस्तर लेख की भाषा कालिदास से इतनी अधिक मिलती है कि कहीं-कहीं उसके कालिदासीय होने का भ्रम होता है। न केवल वर्ण्य-शैली और विशिष्ट बातों अपितु शब्दावली तक में अद्भुत सादृश्य है। यथा—क्षीवाङ्गनाजन कपोलतलाभिताम्रः, मद प्रगल्भालिकुल स्वनैश्च, पूर्णेन्दुकरामलानि, श्रवण सुभगम्, कुचशालिनीनाम्, कैलासतुङ्ग शिखरप्रतिमानि, नेत्रसुभगेन, रूचिरपल्लवकर्णपूर, कुसुमचाप इवद्वितीयः, नयनाभिरामम् आदि शब्दावली का प्रयोग किसी न किसी रूप में कालिदास ने भी किया है।और भी देखें—

१. वत्सभट्टि—कुसुमभरानततरूवर सभाविहाररमणीयात्। श्लोक ४

कालिदास—पर्याप्त-पुष्पस्तवक-स्तनाभ्यः—लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुः।
कुमार ३-३९

तथा—पर्याप्त पुष्पस्तवकावनम्रः। वही ३-५४

२. वत्सभट्टि—प्रफुल्ल पद्माभरणानि यत्र सरांसि कारण्डव-संकुलानि।
श्लोक ७

कालिदास—प्रफुल्लनीलोत्पल- शोभितानि सोन्माद- कादम्ब- विभूषितानि।
सरांसि चेतांसिहरन्ति पुंसाम्। ऋतु. ४-९

तथा—विकच कमल वक्त्र फुल्लनीलोत्पलाभिः। वही ३-२६

तथा—कारण्डवानन-विघहित- वीचिमाला। वही. ३-८

३. वत्स०—आभान्ति- दीर्घ- वलभीनि सवेदिकानि
गान्धर्व शब्द मुखराणि निविष्ट चित्रकर्माणि-गृहाणिपुर्णेन्दुकरामलानि।

तथा—चलत्पताकान्यवला- सनाथान्यत्यर्थ शुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लता-चित्र-सिताभ्रकूट तुल्योपमानानिगृहाणियत्र। श्लोक १०,११

कालिदास—हर्म्येष्वस्याः कुसुम सुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः।
लक्ष्मीं पश्यंल्ललित वनिता पादरागाङ्कितेषु। मेघ. १-३८

तथा—तां कस्याञ्चिद् भवनवलभौसुप्तपारावतायां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीत्वा रात्रिं चिर विलसनात्खिन्न-विद्युत्-कलत्रः । वही. १-६८

तथा—विद्युद्वन्तं ललित- वनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्ध गम्भीरघोषम् ।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादा स्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः । वही २-१

४. वत्स०—प्रासाद मालाभिरलंकृतानि गृहाणिपूर्णेन्दुकराणि यत्र । श्लोक. १२

कालिदास—प्रासाद-मालासु वभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ।

कुमार. ७-५६

तथा—तावत्पताकाकुलमिन्दुमौलिरूत्तोरणं राजपथं प्रपेदे ।

प्रासादशृङ्गाणि दिवापि कुर्वञ्ज्योत्स्नाभिषेकद्विगुण द्युतीनि

वही ७-६३

तथा—सितेषु हर्म्येषु निशासु . . . . ह्रियेव पाण्डुताम् । ऋतु. १-९

५. वत्स०—चतुः समुद्रान्त विलोल मेखलां सुमेरूकैलासवृहत्पयोधराम् ।

श्लोक. २३

कालिदास—सवेलावप्रवलयं परिखीकृत सागराम् । रघु. १-३०

तथा—स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलय- दर्दुशै । वही. ४-५१

६. वत्स०—वैधव्यतीव्रव्यसनक्षतानां स्मृत्वा यमद्याप्यरि सुन्दरीणाम् ।

भयाद् भवत्यायत लोचनानां घनस्तनायास करः प्रकम्पः ।

श्लोक.२८

कालिदास—भयोत्सृष्ट विभूषाणां तेन केरल- योषिताम् ।

अलकेषु चमूरेणु श्चूर्ण-प्रतिनिधीकृतः । रघु. ४-५४

तथा—तत्र हूणावरोधानांभर्तृषुव्यक्तविक्रमम् ।

कपोलपाटलादेशि वभूव रघु चेष्टितम् ॥ वही. ६८

७. वत्स०—काले तुषार- कण- कर्कशशीतवात- वेग- प्रनृत्तलवली नगणैकशाखे । श्लोक. ३२

कालिदास—विलीन-पद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्त कालः समुपागतः प्रिये । ऋतु. ४-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुमभर नतानां लासकः पादपानाम् । वही. २-२६

तथा—नवायवः सान्द्र तुषार-शीतलाः जनस्यचित्तं रमयन्तिसाम्प्रतम् ।
वही. ५-७

तथा—विनिपतितुषारः- कौञ्च नादोपगीतः । वही. ४-१८

तथा—आनर्तयत् तरूवरान् कुसुमावनम्रान् । वही. ३-१०

८. वत्स०—वहिन् प्रताप सुभगे जललीनमीने । श्लोक. ३१

कालिदास—हुताशनो भानुमतो गभस्तयः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् । वही. ५-७

९. वत्स०—चन्द्रांशु हर्म्यतलचन्दन- तालवृन्त हारोपभोग- रहिते हिमदग्धपद्मे । श्लोक. ३१

कालिदास—न नन्दनं चन्द्र- मरीचि- शीतलं नहर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुमण्डलम् ।

नवायवः सान्द्र तुषारशीतलाः जनस्य चितं रमयन्ति साम्प्रतम् । ऋतु. ५-३

१०. वत्स०—स्मरवशतरूगण जनवल्लभाङ्गना विपुलकान्तपीनोरू-

स्तनजघन- घनालिङ्गन- निर्भर्त्सिततुहिनहिमपाते । श्लोक. ३३

कालिदास—पयोधरैः कुङ्कुमरागरञ्जितैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः ।

विलासिनीभिः परि पीडितोरवः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥ ऋतु. ५-९

तथा—परस्पराङ्गव्यतिरिक्तशायी शेतेजनः काम- रसानुविद्धः । वही. ४-७

तथा—प्रबलसुरतकेलि र्जात-कन्दर्प-दर्पः । वही. ५-१६

११. वत्स०—यः सिद्ध्यर्थमुपास्यते सुरगणैः सिद्धैश्चसिद्ध्यर्थिभिः ।

ध्यानैकाग्रपरै र्विधेय विषयै मोक्षार्थिभि र्योगिभिः । श्लोक१

कालिदास—अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमित प्राणादिभिर्भृग्यते । विक्रमो. १-१

इसके साथ ही कालिदास के मान्य आदर्श तथा शब्दावली गुप्तवंशीय अभिलेखों से भी मेल खाती है । पहले प्रयाग के प्रस्तर स्तम्भ पर टंकित समुद्रगुप्त के ३५० ई. के शिलालेख को लें—

१. प्रस्तरलेख—यस्य प्रज्ञानुषङ्गोचितसुखमनसः शास्त्र तत्त्वार्थभर्तुः,

विद्वल्लोके... स्फुट बहुकविता कीर्ति राज्यं भुनक्ति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकाव्य श्री विरोधान् वुधगुणित गुणाज्ञा दृतानेव कृत्वा,

कालिदास—आकार- सदृश- प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः

आगमैः सदृशारम्भः आरम्भ सदृशोदयः ॥ रघु.१-१५

तथा—परस्पर विरोधिन्योरेकसंश्रय- दुर्लभम् ।

संगतं श्री- सरस्वयो र्भूतयेऽस्तु सदा सताम् । विक्रमो. ५-२५

तथा—सरस्वती श्रुति- महतीमहीयताम् । शाकु. ७-३५

२. लेख—स्नेहव्यालुलितेन वाष्पगुरूणातत्त्वेक्षिणा चक्षुषा ।

यः पित्राऽभिहितो निरीक्ष्य निखिलां पाह्येवमुर्वीमिति ॥

कालिदास—गुणवत् सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीप वंशजाः ।

पदवीं तरूवल्कवाससां प्रयतां संयमिनां प्रपेदिरे ॥ रघु. ८-११

तमरण्य समाश्रयोत्सुकं शिरसा वेष्टन- शोभिना सुतः ।

पितरं प्रणिपत्यपादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥ वही. १२

रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सित मात्मज प्रियः ॥ वही. १३

यहां अन्तर केवल इतना है अभिलेख में पिता द्वारा पुत्र को राज्य सम्भालने की बात कही गयी है- तत्त्वदर्शी पिता के द्वारा नेत्रों में अश्रुभर कर, और रघुवंश में भी वही हुआ है किन्तु यहाँ अश्रु पुत्र के नेत्रों में है । पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को पिता की आज्ञा समझ कर स्वीकार तो कर लेते है—तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेतिन भोगतृष्णया—किन्तु साश्रुमुख हो कर पिता को वानप्रस्थले कर वन जाने से रोकते हैं और रघुप्रेम के कारण उस का अनुरोध स्वीकार कर लेते हैं । पितृभक्ति गुप्तकुल और रघुकुल दोनों में निरपवाद देखी जा सकती है ।

३. अभिलेख—तस्यविविधसमरशतावतरण दक्षस्य

स्वभुजवल पराक्रमैकवन्धोः पराक्रमाङ्कस्य ।

कालिदास—तस्य द्वयमेवार्थ साधनम्-

शास्त्रेष्वकुण्ठिताबुद्धि र्मौर्वी धनुषिचातता । रघु. १-१८

षड्विधंवलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया रघु. ४-२६

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम् । रघु. २-४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. अभिलेख—सर्व- दक्षिणापथ- राजग्रहण- मोक्षानुग्रह- जनित- प्रतापोन्मिश्र-
माहाभाग्यस्य ॥

कालिदास—अनभ्राणां समुद्धर्तुस्तस्माद्-
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृतिमाश्रित्यवैतसीम्। रघु. ४-३५

तथा—आपादपद्म- प्रणताः कलमाइव ते रघुम्फलैः संवर्धयामासुः।वही. ३७

तथा—गृहीत- प्रतिमुक्तस्य सधर्म-विजयीनृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्यजहार न तु मेदिनीम्॥ वही. ४३

तथा—स प्रतापं महेन्द्रमूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्। वही ३९

५. अभिलेख—मृदुहृदयस्यानुकम्पावतोऽनेकगोशत- सहस्र प्रदायिनः।

कालिदास—अदेयमासीद् द्वयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे।
रघु. ३-१६

तथा—तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं—दिदेशकौत्साय समस्तमेव। रघु. ५-३०
गुरू प्रदेयाधिक निःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थि कामादधिक-प्रदश्च। वही. ३१

तथा—स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुक-वालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः। वही. २-४५
स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत् पिण्ड मिवामिषस्य। वही.५९

६. अभिलेख—गान्धर्व-ललितै व्रीडितत्रिदशपति- गुरू-तुम्बुरू- नारदादेः।

कालिदास—उपवीणयितुं ययौ रवेरूदयावृत्तिपथेन नारदः। रघु. ८-३३

तथा—रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्। वही. १५-६५
तद्‌गीत श्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी वभौ। वही. १५-६६

तथा—सस्वयं प्रहत- पुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत्। वही १८-१९।

७. अभिलेख—महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य. . . . कीर्तिमितत्रिदशपति-भवन
गमनावासललितसुखविचारणामाचक्षाण इव. . . . . ।

कालिदास—ब्राह्मेमुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
रघु. ५-३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—महीतल स्पर्शन मात्रभिन्नमृद्धं मृद्वं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः। वही २-५०

तथा—पुराशक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रतियास्यतः। वही १-७५ तथा रघु० ६-७३

तथा—ममहिदिवौकसां समक्षमर्धासना पवेशितस्य

अन्तर्गत प्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।

आमृष्ट- वक्षो हरिचन्दनाङ्का मन्दारमालाहरिणा पिनद्धा। शाकु. ७-२

८. अभिलेख—पुनातिभुवन- त्रयं पशुपतेर्जटान्तर्गुहा

निरोध परिमोक्षशीघ्रगाङ्गं पयः शीघ्रमिव।

कालिदास—तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां

जह्नोः कन्यां सगरतनय- स्वर्ग सोपान- पङ्क्तिम्।

गौरी वक्त्रभ्रकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः,

शम्भोः केशग्रहणमकरो दिन्दुलग्नोर्मिहस्ता। मेघ. १-५०

समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तराभिलेख (३५०-३७५ ई.)

१. सुवर्ण दाने संवारितानृपतयः पृथुराघवाद्याः

कालिदास—तमध्वरेविश्वजितिक्षितीशं निःशेष-विश्राणित-कोषजातम्।

रघु. ५-१

२. अभिलेख—नृपतिरप्रतिवार्यवीर्यः

कालिदास—रथेनानुद्धातस्तिमितगतिनातीर्णजलधिः

पुरासप्तद्वीपां जवति वसुधामप्रतिरथः। शाकु. ७-३३

कमरदण्ड (फैजाबाद) में प्रस्तरलिङ्ग पर कुमारगुप्तप्रथमकालीन लेख (४३६ ई.)

१. अभिलेख—चतुरुदधि- सलिला- स्वादित- यशसो महाराजाधिराजकुमार गुप्तस्य

कालिदास—भूत्वा चिराय चतुरन्त- मही- सपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथंतनयं निवेश्य। शाकु. ४-२०

तथा—पयोधरीभूतचतुः समुद्रां जुगोपगोरुपधरामिवोर्वीम्। रघु. २-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहोम (देवरिया, यू. पी.) में प्रस्तर स्तम्भ पर स्कन्दगुप्तशिलालेख (४६० ई०)

अभि०—राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप शतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्ति वर्षे।

कालिदास—क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूत सहस्रनेत्रः। रघु. ६-२३

तथा—उपेयुषः स्वामपिमूर्तिमग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ॥ वही ६-७३

तथा—कामंनृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वती माहुरनेन भूमिम्॥ वही. ६-२२

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख (४५५ तथा ४५७ ई.)

१. अभिलेख—नृपतिगुणनिकेतः स्कन्दगुप्तः पृथुश्रीः चतुरुदधिजलान्तां स्फीतपर्यन्तदेशाम्- अवनिमवनतारिर्यः चकारात्मसंस्थाम्-पितरि सुरसखित्वं प्राप्तवत्यात्मशक्त्या।

कालिदास—अजयदेकरथेन समेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः। रघु. ९-१०

तथा—अवनिमेकरथेन वरुथिनाजितवतः। विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवाः। वही ९-११

तथा—शमितपक्षवलः शतकोटिना—सशरवृष्टिमुचाधनुषाद्विषाम्। वही १२

तथा—निववृते समहार्णवरोधसः सचिव- कारित वालसुताञ्जलीन्।
समनुकम्प्यसपत्न परिग्रहान्। वही ९-१४

अभिलेख—प्रथयन्ति यशांसि यस्यरिपवोऽपि।

तथा हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धराकम्पिता।
आमूलभग्न दर्पा निर्वचनाम्लेच्छ देशेषु॥

कालिदास—इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञाम्। रघु. ७-७०

तथा—अनेनपर्यासयताश्रुविन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रु विलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेणविनैव हाराः॥ वही ६-२८

तथा—जयोदारणं वाह्वोर्गापयामास किन्नरान्। वही ४-७८

तथा—यवनीमुखद्मानां सेहेमधुमदं न सः
अपनीत शिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषुव्यक्तविक्रमम्

कपोल पाटलादेशि वभूव रघु- चेष्टितम्। वही ४-६१ से ६८

अभिलेख—क्रमेण बुद्ध्या निपुणं प्रधार्यध्यात्वाचकृत्स्नान् गुण- दोषहेतून्।

व्यपेत्य सर्वान् मनुजेन्द्र- पुत्रान् लक्ष्मीः स्वयं यंवरयाञ्चकार॥

कालिदास—अस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च। वही ६-२९

तथा—कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनय- प्रधानैः।

त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन। रघु. ६-७९

आसञ्जया मास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम्। वही ८३

अभिलेख—तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्मादपेतोमनुजः प्रजासु

आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड्यो नवायोभृशपीडितः स्यात्।

कालिदा्स—रेखा मात्रमपि क्षुण्णादामनोः वर्त्मनः परम्।

न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः॥ रघु १-१७

तथा—कामंनृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेनभूमिम्। वही ६-२२

तथा—यस्मिन् नृपेशासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथेगतानाम्।

वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्॥ वही ६-७५

तथा—जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुतएव सपत्नजः।

तथा—न मृगयाभिरतिर्नदुरोदरं न च शशि- प्रतिमाभरणं मधु॥ वही. ७

अभिलेख—प्रबुद्धपद्माकरवक्त्रपद्मो नृणां शरण्यः शरणागतानाम्।

स रञ्जयाञ्च प्रकृतीर्वभूव पूर्वस्मिताभाषण- पूर्वदानैः।

कालिदास—प्रसन्नमुखरागं तंस्मितपूर्वाभिभाषिणम्। वही. १७-३१

तथा—असौशरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्वोमगध- प्रतिष्ठः।

राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपोनाम यथार्थनामा॥ वही ६-२१

अभिलेख—आनृण्यभावोपगतान्तरात्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास—जातोममायं विशदः प्रकामंः प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा। शाकु. ४-२२

स्कन्द गुप्त का भितरी (गाजीपुर यू. पी.) का स्तम्भ लेख (४५५-४५७)

अभिलेख—अनेक गोहिरण्यकोटिप्रदस्य-चिरोत्सन्नाश्वमेधाः हर्तुः—प्रथिव्यामप्रतिरथस्य धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य। भुजवलाढ्यो गुप्तवंशैकवीरः॥

कालिदास—ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्। रघु. १-४४

तथा—जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यां मनुराजधानीम्।

तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि॥रघु १३-६१

तथा—तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षः- कपिनरेश्वराः अभ्यवर्षन्नुपायनैः। वही १५-५८

तथा—ततः परं तेन मखाय यज्वनातुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलंपुनः। वही ३-३९

तथा—मरुत्सखस्येव वलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहितद्ररथस्य। वही ५-२७

तथा—ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जित- वीरशब्दः। वही २-११७

अभिलेख—क्षितितलशयनीये येन नीतात्रियामा।

कालिदास—तच्छिष्याध्ययन निवेदितावसानां संविष्टः कुशशयने निशांनिनाय। रघु. १-९५

अभिलेख—समुदित वलकोशान् पुष्पमित्रांश्च जित्वा क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपादः।

कालि० इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञामुदवहदनवद्यांतामवद्यादपेतः। वही ७०

अभिलेख—चरितममलकीर्तेर्गीयते यस्य शुभ्रं दिशिदिशिपरिपुष्टैराकुमारं यशोभिः।

कालिदास—शुश्राववकुञ्जेषु यशः स्वकीयमुद्गीयमानं वनदेवताभिः। वही २-१३

तथा—इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्यगोप्तुर्गुणोदयम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्योजगुर्यशः ॥वही ४-२०

अभिलेख—पितरि दिवमुपेते विप्लुतां राजलक्ष्मीं भुजबल- विजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः ।

जितमिति परितोषान्मातरं सास्रनेत्रां हतरिपुरिवकृष्णो देवकीमम्युपेतः ॥

कालिदास— भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने ।

विस्पष्टमस्रान्धनयान दृष्टौ ज्ञातौ सुत-स्पर्श-सुखोपलम्भात् । वही-३

यहाँ दशरथमरण, अयोध्या की राजलक्ष्मी सीता का अपहरण, रामद्वारा रावण वध और फिर माता के आँसू पोंछने में पूर्ण साम्य है- ऊपर जो उद्धहरण दिये गये है वे न केवल समान स्थितियों और भावों अपितु भाषा और कहींकहीं शैली में समानता को प्रकट करते है । इससे कालिदास और इन शिलालेखों का समय लगभग एक ही लगता है । निश्चय ही कालिदास इन शिलालेखों से परिचित थे क्योंकि कालिदास की कृतियों, मुख्यतः रघुवंश की अनेक बातें इन दो— प्रयाग प्रशस्ति और भितरी स्तम्भ लेख से पूरी तरह मेल खाती हैं ।

अन्य संकेत— कालिदासीय रचनाओं में गुप्तवंशीय राजाओं और उनके काल के प्रभाव पर विचार करने से पूर्व इस वंश के विषय में जान लेना आवश्यक है । स्कन्द गुप्त के भितरी स्तम्भ लेख के अनुसार इस राजवंश का प्रारम्भ राजा श्री गुप्त से हुआ । श्री गुप्त का पुत्र घटोत्कच और उनका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ । श्री गुप्त महाराज की उपाधि धारण करते थे और घटोत्कच का भी यही विरुद था । घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त महाराजाधिराज बने। चन्द्रगुप्त की पत्नी प्रसिद्ध लिच्छिविकुल की कन्या थी, जिसका नाम कुमार देवी था । चन्द्रगुप्त और कुमार देवी के पुत्र समुद्रगुप्त भी महाराजाधिराज हुए। वह गर्व से साथ स्वयं को लिच्छिविदौहित्र कहते थे । लिच्छिविदौहित्र होना उनके लिये गर्व की वात थी क्योंकि उनकी पौत्री प्रभावती गुप्त ने भी, जोकि वाकाटक वंश के राजा रुद्रसेन द्वितीय से ब्याही गयी थी अपने पूना ताम्रपत्रलेख में गर्व के साथ समुद्र गुप्त को लिच्छिविदौहित्र कहा है । स्पष्ट ही यह बात गुप्तों के लिये गौरव-वर्धक रही होगी । समुद्रगुप्त का पुत्र महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त द्वितीय था । उसकी माता का नाम दत्त देवी थी । चन्द्र गुप्त की पत्नी ध्रुव देवी से कुमार गुप्त का जन्म हुआ । कुमार गुप्त भी अपने बाबा और पिता की उपाधि से विभूषित रहा। कुमारगुप्त का पुत्र महाराजाधिराज स्कन्द गुप्त हुआ जिसने अपनी विप्लुत कुल लक्ष्मी का स्तम्भन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। यहाँ इसके पश्चात्कालीन राजाओं—पुरुगुप्त, नरसिंह गुप्त, कुमार गुप्त द्वितीय, बुध गुप्त, भानुगुप्त, चन्द्र गुप्त तृतीय, विष्णु गुप्त, और जयगुप्त की चर्चा की आवश्यकता नहीं। हमारे कवि का सम्बन्ध समुद्रगुप्त लेकर स्कन्दगुप्त तक सीमित है। चन्द्रगुप्त की द्वितीय पत्नी नाग वंशीय कुबेर नागा थी जिससे उत्पन्न पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक वंशीय महाराज रुद्रसेन से हुआ था। प्रभावती गुप्ता के एक पुत्र हुआ जिसका नाम दिवाकर सेन था। रुद्रसेन की मृत्यु अपरिपक्व आयु में ही हो गयी थी और पुत्र के वयस्क होने तक राज्य के शासन का दायित्व प्रभावती गुप्ता ने सम्हाला था जिसमें उसे पिता से पर्याप्त सहायता मिलती रही।

यहाँ मेरा उद्देश्य गुप्त राजाओं और उनके साम्राज्य का ऐतिहासिक विवेचन न कर इनके काल में साहित्य और कला की स्थिति पर एक दृष्टि डाल लेना मात्र है। सन् ३२० ई० से लेकर ४६८ ई० तक का स्कन्दगुप्त के शासन तक का समय भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस युग में सारा भारत एक छत्र के नीचे संगठित हुआ जिसके कारण देश युद्धों और पारस्परिक संघर्षों से मुक्त रहकर बाह्य और आन्तरिक उद्योगों और व्यापार वाणिज्य में आशातीत प्रगति कर सका। सम्पूर्ण उत्तर भारत को अपने अधीन कर और दक्षिण भारत पर अपना दबदबा कायम कर स्कन्द गुप्त ने एकीकरण की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की उसे उसके पुत्र चन्द्र गुप्त द्वितीय ने पूर्णता पर पहुँचा दिया। उसने मगध से लेकर काठियावाड़—पोरबन्दर तक का प्रदेश शकों से खाली करा कर शकारि विक्रमादित्य का विरुदधारण किया। मार्ग निरापद हो गये। फलत: बंगाल से लेकर काठियावाड़ तक निर्वाध व्यापार होने लगा। बंगाल का रेशम और मलमल सीधे पोरबन्दर से पश्चिमी देशों को भेजा जाता और बदले में सोना लाता। जब छोटे छोटे राज्य थे तो व्यापारियों को प्रत्येक राज्य में प्रवेश के समय आते जाते कर देना होता था किन्तु अब एक ही साम्राज्य के कारण उन्हें केवल एक ही बार शुल्क चुकाने की सुविधा मिल जाने से माल का मूल्य काफी कम हो गया और मुनाफे की राशि में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। उत्पादक, व्यापारी, सार्थ वाहक, निर्यातक और पत्तन के कर्मचारी सभी मालामाल होने लगे। सूरत, भृगुकच्छ, खम्भात, सोपारा और वेखाल (पोरबन्दर) व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गये। माल के विनिमय में पाश्चात्य देशों से प्रचुर सोना भारत में आने लगा। व्यापारी और सार्थवाह उज्जैन और विदिशा के मार्ग से लौटते और बीच में कई दिन पड़ाव डालकर आनन्द प्रमोद करते। मथुरा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्वालियर, वाराणसी, पटना आदि सभी नगर इन दिनों आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गये। उज्जयिनी और विदिशा इन दो नगरों पर तो जैसे सुवर्ण की वर्षा होने लगी। बड़े बाजारों में सोने और रत्नों के क्रय विक्रय ने स्थानीय व्यापारियों की स्थिति अकल्पनीय ढंग से सुधार दी। संगीत, नृत्य आदि कलाओं और गणिकाओं के सम्मान और प्रतिष्ठा में अद्‌भुत वृद्धि हुई। देश सोने से माला माल था। इसका प्रमाण चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्राप्त सुवर्ण मुद्राओं से मिलता है। समुद्रगुप्त के समान चन्द्रगुप्त के सिक्कों में उतना वैविध्य नहीं है, फिर भी उनमें मानकता है। वे प्रायः सुवर्ण के है और बहुत बडी संख्या में मिले भी है। पश्चिम भारत पर अधिकार करने के बाद उसने चाँदी और ताँबे के सिक्के भी स्थानीय शासकों की परम्परानुसार ढलवाये थे। इन सिक्कों पर उसके विक्रमादित्य, विक्रमांक और सिंह- विक्रम, ये विरुद अंकित है।

गुप्त शासक संस्कृत के महान उन्नायक और वैष्णव थे। उनसे पूर्व शक शासकों ने बौद्ध धर्म, बौद्ध कला और बौद्ध साहित्य को प्रोत्साहन दिया था। गुप्तों ने बौद्धों के साथ हिन्दुओं को भी पूरा संरक्षण दिया। फलतः शैव- वैष्णव- मन्दिरों, मूर्तियों और चित्रों तथा प्रस्तर शिल्प को महत्ता प्राप्त हुई। मूर्ति पूजा का प्रसार हुआ और अवतारों की मूर्तियाँ बनने लगी। इस काल में प्रमुख पुराणों का पुनः संस्करण हुआ और उन्हें वैष्णव स्वरुप प्रदान किया गया। इनके अन्त में गुप्तवंश का विवरण जोड़ा गया। भारतीय दार्शनिक चिन्तन का विस्तार हुआ और वेदान्त दर्शन को महत्त्व मिला। पाश्चात्य देशों से निकट सम्पर्क का प्रभाव भारतीय ज्योतिष पर सर्वाधिक पड़ा जो आज भी वारों और राशियों के नाम के रुप में स्पष्ट देखा जा सकता है। खगोल विज्ञान का यह आदान प्रदान जूलियन सुधारों से पहले ही अर्थात् स्कन्दगुप्त के काल तक सम्पन्न हो चुका था। गुप्तकाल की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है उसका मुद्रासुधार। समुद्रगुप्तीय सिक्के कुषाणों के रोमन मानों परटिके थे। वे ११८ से १२२ ग्रेन के बीच होते थे। गुप्तों ने लेटिन डेनेरियस को भारतीय रुप में ढाल कर अपने सिक्कों को दीनार नाम दिया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उनके परिमाण में परिवर्तन कर उन्हें १२६ और १३२ ग्रेन का कर दिया। फिर स्कन्दगुप्त ने तो रोमन मानकों का सर्वथा परित्यागकर उन्हें प्राचीन भारतीय सुवर्ण (१४६ ग्रेन) का मान दे दिया। यह मान सन् ६१९ तक स्थिर रहा। स्कन्द गुप्त ने चांदी की मुद्राओं में भी शक परिमाण को छुटटी देकर उन्हें प्राचीन कार्षापण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३२ ग्रेन) का रुप दे दिया। कला के क्षेत्र में इसी प्रकार विदेशी परम्परा और रुपांकन से पिण्ड छुडा कर भारत ने अपनी अलग पहचान बनानी प्रारम्भ की। गान्धार शैली का स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य ने लिया। नये कलाकारों की विशेषता सममिति (Symety)परिप्रेक्ष्यरेखन (Persepective) और स्वाभाविक अनुपात के रुप पूर्ववर्ती रोमन कला से पृथक दिखने लगी। टंकणों में बौद्ध जातकों का स्थान पौराणिक कथाओं ने लिया। मथुरा का कला क्षेत्र निष्प्राण होकर वाराणसी और पाटलिपुत्र के सजीव केन्द्रों के रुप में अवतरित हुआ जिनसे अनुप्राणित होकर बंगाल, विहार, चेदि चन्देल और, मालवा के कला केन्द्र उर्जस्वी हो उठे। प्रशासन का ढाँचा बहुत कुछ चाणक्यपरिपाटी पर स्थिर रहा। इस काल के प्रमुख अधिकारियों के नाम मंत्री, सचिव, कुमारामात्य, सान्धिविग्रहिक, महादण्डनायक और महावलाधिकृत आदि मिलते है। कुमारामात्य प्रत्येक अधिकारी वर्ग का प्रमुख होता था। महार्क उपरिक उच्च अधिकारी थे। उपरिक प्रान्तपति होते थे। सेना में रणभाण्डागाराधिकरण और विनयस्थिति- स्थापक के पद भी मिलते हैं।

हिन्दू समाज के पुनर्गठन का श्रेय भी गुप्तों को हैं। इनके बाद हमें बौद्ध ग्रीक, और हिन्दूशक जैसे नाम सुनायी नहीं देते। ये सब व्यापक हिन्दू समाज का अंग बना लिये गये। वे सब वैष्णवधर्म के अंग बन गये। इस काल में सारे विदेशियों की पृथक् पहचान का अन्त होकर एक ही हिन्दू समाज की चर्चा सुनायी देती है—ऐसे हिन्दू समाज की जो वर्णाश्रम व्यवस्था और एकतन्त्रीय भारत में विश्वास करता था यद्यपि उस समय हिन्दू शब्द का जन्म नहीं हुआ था। कालिदास इसी सुवर्णयुग की उपज थे किन्तु यह कहने से पूर्व हमें यह देखना होगा कि क्या गुप्त वंशीय राजाओं का कोई प्रभाव कालिदास की कृतियों में उपलब्ध होता है।

इस युग की कलाओं, ज्योतिष और पौराणिक विश्वासों आदि के प्रभाव की चर्चा हम पीछे कर आये हैं। और अभी भी हमने तद् युगीन अभिलेखों से भाव और भाषाओं के सादृश्य के उदाहरण भी प्रचुर संख्या में प्रस्तुत किये है। अब हम उन बातों और घटनाओं का भी मिलान करने का प्रयत्न करेंगे जो हमें कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय से लेकर स्कन्दगुप्त तक विद्यमान मानने को प्रेरित करती है। गुप्त राजाओं के जीवन के विषय में इतिहासकारों ने अपने अपने स्वतन्त्र तर्कों के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये है वे बहुत कुछ अनुमान पर आश्रित हैं। अतः हम यहाँ केवल उनके शिलालेखों के आधार पर ही गुप्त राजाओं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के चरितनायकों के बीच सादृश्य खोजने का यत्न करेंगे । निश्चित है कि यह खोज समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त, कुमार गुप्त और स्कन्दगुप्त तक सीमित होगी ।

गुप्त राजाओं के शिलालेखों के अनुसार इनमें कुछ वैशिष्ट्य सामान्य हैं । यथा-पितापुत्र प्रेम, मातृ- सम्मान, विद्या और कला के प्रति श्रद्धा, दान शीलता और शौर्य । कालिदास के रघुवंश के प्रत्येक चरित्र में ये विशेषतायें देखी जा सकती हैं । व्यक्तिशः लें तो समुद्र गुप्त का शिलालेख (१) काव्य अर्थात् सरस्वती और श्री के विरोध के शमन से प्रारम्भ होता है और विद्या के प्रति सम्मान प्रकट करता है । कालिदास भी 'संगतं श्री- सरस्वयोः को एक- संश्रय- दुर्लभं' कहकर इसी बात को दोहराते हैं (विक्रमों ५-२४)। और 'अस्मिन् द्वयंश्रीश्च सरस्वती च' (रघु-६-२९) को अंगनाथ की विशेषता वतलाते है । (२) समुद्रगुप्त शासन की बागडोर पिता के आँसू भर कर आग्रह करने पर ग्रहण करते हैं और रघुवंश के अज अश्रु मुख होकर पिता से राज्य त्याग न करने का आग्रह करते है और उनके आग्रह पर रघु राज्य परित्याग से तो विचलित नहीं होते किन्तु गृह त्याग का विचार छोड़ देते हैं (रघु० ८-१२,१३) । (३) समुद्रगुप्त 'विरूढ़ाकुल ब्रणशताङ्क' हैं तो रघु का भी अंग 'कुलिशव्रणाङ्कित' है । यों भी रघुवंश के प्राय: सभी नरेश युद्ध करते हैं । (४) समुद्रगुप्त 'सर्व दक्षिणापथ राजग्रहण- विमोक्षानुग्रहजनितप्रतापवान्, है तो रघु भी ग्रहण- मोक्ष की नीति के द्वारा ही दक्षिण भारत को विजित करता और प्रतापोर्जित होता है (रधु ४-४३ तथा ४९) । राजाओं के 'चरण वल विमृष्ट होने, अनेक गोशत के प्रदानकर्ता होने, गान्धर्व विद्या में नैपुण्य, कीर्तिमित त्रिदशपतित्व, अनेकदिशाओं में यश की व्याप्ति, गङ्गा के प्रति श्रद्धा आदि जिन बातों का उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में है वे सबकी सब रघुवंशीय राजाओं, विशेषत: रघु में देखी जा सकती हैं । रघु की दिग्विजय की कल्पना भी कवि ने समुद्रगुप्त के इस अभिलेख से ही ली है और श्रेष्ठ कवि के समान उसमें अपनी मौलिक प्रतिभा का मिश्रण कर दिया है । दोनों की विजय यात्रा में कई मूल बातें समान है । यह बात और है कवि ने कि उसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्द गुप्त की विजयों को भी जोड कर उसे सर्वथा नया रुप प्रदान कर दिया है । एरण के लेख में समुद्र गुप्त को सुवर्ण दान के विषय में पृथु और राघव से भी बढ़ कर बताया है—सुवर्णदाने संवारितापृथु-राघवाद्याः । कालिदास ने इसी बात को ध्यान में रखकर रघुवंश में कौत्स प्रसंग जोडा है । अप्रतिवार्यवीर्य विशेषण भी जैसे समुद्रगुप्त के साथ वैसे ही रघुवंशीय राजाओं विशेषत: रघु, दशरथ और राम के साथ जोड़ा जा सकता है । धनदान्तकादि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्यता भी कालिदास के 'सुरेन्द्र मात्राश्रित गर्भ गौरवात्' से मेल खाती है। कालिदास के नायकों में पुरुरवा, और दुष्यन्त दोनों का शक्र के साथ बराबरी काव्यहार है और शक्र भवन में उनका बारबार जाना और इन्द्र का उनके पास बारबार आना, विस्तार के साथ वर्णित है। मजे की बात यह है कि कालिदास भी मगधेश्वर के ही यहाँ इन्द्र के पौन:पुनिक आगमन का बारबार उल्लेख करते है—

क्रिया प्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूत-सहस्रनेत्रः।

शच्याश्चिरं पाण्डु-कपोललम्बान् मन्दार-शून्यानल कांश्चकार।

रघु ६-२३

उदयगिरि के गुहालेख में चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमावक्रय-क्रीता पृथिवी का स्वामी तथा दास्यन्यग्भूत-पार्थिव कहने के साथ अचिन्त्योज्वल- कर्मा और राजाधिराजर्षि कहा है। राजा को मुनि या ऋषि कालिदास ने भी अनेक बार कहा है। विक्रमोर्वशीयम् में रम्भा और मेनका पुरुरवा को राजर्षि कह कर ही सम्बोधित करती है—अविणाम सोराएसी उद्धररदिगोणों हिअ असल्लं तथा—एस उल्लसिद हरिणकेदणो-तस्स-राएसिणो सोमदत्तो रओ दीसदि। अभिज्ञान शाकुन्तल के पंचम अंक तथा अन्यत्र (शाकु० २-१५) में भी राजा को मुनि कहा है। महरौली के लौहस्तम्भ लेख में जो चन्द्रगुप्त के विषय में कहा है—

प्राप्तेन स्वभुजार्जितेन सुचिरञ्चैकाधिपत्यं क्षितौ।

चन्द्राह्वेन समग्र- चन्द्रसदृशी वक्त्रश्रियं विभ्रता॥

उसमें रघु. की या रघुवंश (२-४७) में उसकी प्रतिध्वनि स्पष्ट है—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।

४६० ई० के स्कन्दगुप्त के कहोम स्तम्भ लेख में चन्द्रगुप्त के शासन काल को शान्त कहा है। ऐसी शान्ति ही कला और साहित्य के लिये उर्वरा सिद्ध होती है। जूनागढ़ लेख में कहा है कि स्कन्द गुप्त ने अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर चतुरुदधिजलान्ता और स्फीत-पर्यन्त-देशाभूमि को आत्मसात्कर लिया था। उसने अपने भुजबल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली और म्लेच्छों का कादर्प-दलनकर डाला। सम्भवत: उसके और सौतेले भाइयों के बीच राजगद्दी के लिये स्पर्धा रही। कुमारगुप्त की भी दो रानियाँ थी। छोटी रानी के पुत्र पुरूगुप्त और स्कन्द गुप्त के बीच प्रतिद्वन्द्विता थी किन्तु राजगद्दी स्कन्द गुप्त को मिली। इस सम्बन्ध में शिलालेख का कथन है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमेणबुद्ध्या निपुणं प्रधार्य
ध्यात्वा च कृत्स्नान् गुण-दोष-हेतून्।
व्यपेत्य सर्वान् मनुजेन्द्र-पुत्रान्
लक्ष्मीः स्वयं यं वरयाञ्चकार।
तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्मादपेतो मनुजः प्रजासु
आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड्योन वा यो भृशपीडितः स्यात्।

स्कन्द गुप्त के जूनागढ़ लेख की शैली कालिदास से बिलकुल मिलती जुलती है—

प्रवुद्ध- पद्माकावक्त्रपद्मो नृणां शरण्यः शरणागतानाम्।
सौन्दर्यमार्येतर- निग्रहश्च अविस्मयो— धैर्य मुदीर्णताच

इसमें 'आर्येतर निग्रह' पद स्कन्दगुप्त की वीरता पर प्रकाश डालता है। कुमार गुप्त के काल में भी हूणों के प्रथम आक्रमण का प्रतिरोध कर उन्हें स्कन्दगुप्त ने ही पीछे खदेड़ा था। इसीलिये कहा है—

आमूल- भग्न दर्पा- निर्वचना म्लेच्छ- देशेषु।
एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां भग्नाग्रदर्पान् द्विषतश्च कृत्वा।

'पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य' भितरी के इस लेख को भी इसके साथ मिलाकर पढ़े तो ऐसा लगेगा कि हम कालिदास के रघु और अतिथि को एक साथ मिलाकर पढ़ रहे है। स्कन्द गुप्त और अतिथि में अद्भुत साम्य है- यहाँ तक कि दोनों पिता की मृत्यु के उपरान्त सिंहासनारुढ होते है। अतिथि की माता, पिता के साथ ही चितारोहण करती है किन्तु स्कन्द गुप्त की माता जीवित रहती है। वह संकट में पड़ी कुललक्ष्मी को स्थिर रुप से प्रतिष्ठापित करता और शत्रुविजय से माता के आँसू पोंछता है। इन लेखों और कालिदास में इतना साम्य है कि कालिदास के 'प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार' के समान इसमें भी सहायक धातु 'भू' को लिट् लकार में पृथक् कर 'संरञ्जयां यः प्रकृती र्बभूव' प्रयोग किया गया है। यह अद्भुत सादृश्य कालिदास और स्कन्द गुप्त में काल- सामीप्य की पुष्टि करता है।

स्कन्द गुप्त का शासन काल केवल पन्द्रह वर्ष (४५५-४६८ ई.) रहा किन्तु इस स्वल्प अवधि में उसमें जिस वीरता का प्रदर्शन किया और वृद्ध पिता के श्रद्धालु पुत्र के रुप में उसने जिस प्रकार विप्लुत राज- लक्ष्मी की हूणों से रक्षा की उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण इतिहासकार उसे भारतीय इतिहास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में परिगणित करते है । इस संघर्ष में उसे एक रात भूमि पर सोकर बितानी पड़ी थी ।

यही कारण है कि कालिदास स्कन्द और कुमार का पद पद पर किसी न किसी बहाने नाम लेते चलते है । कोई भी प्रसंग हो वह उनका नाम लेने की युक्ति निकाल ही लेते हैं । रघु के पुत्र उत्पन्न हो तो भी वह उसमें गुप्त वंश की देवी (पट्ट महिषी) और कुमार (स्कन्द) की छाया देखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते किलं तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।

रघु. ५.३६

हरेः कुमारोऽपि कुमार- विक्रमः स्वनामचिह्नं निखान सायकम्।

वही. ३-५५;

योहेमकुम्भस्तननिः सृतानां स्कन्दस्यमातुः पयसां रसज्ञः ।

वही २-३६

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्।

वही ३-१६;

विस्मितं कुमार- सैन्यं सपदि स्थितं च तत्। वही ३-४०

कालिदास ने रघु को प्रायः कुमार कहा है । यों भी वह रुक रुक कर कुमार के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर ही देते हैं । यथा

प्रातः कुगारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः ।

वही ५-३९;

वन्यः करीति श्रुतवान् कुमारः । वही, ५-५०;

कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः । वही, ५-५२;

मयूरपृष्ठाश्रयिणागुहेन; वही, ६-४

आकुमारकथोद्घातंशालिगोप्यो जगुर्यशः । ४-२०;

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः ।

वही, ६-७८ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे अनेकों प्रसङ्ग हैं जहाँ वह अन्य शब्द से भी काम चलासकते थे किन्तु उन्हें इस शब्द से बहुत लगाव है । कुमारसंभव की तो रचना ही कुमारजन्म के लिये हुई । मेघदूत में भी वह स्कन्द की पूजा का अवसर निकाल ही लेते है (१-४३ से ४५) । विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी कुमारवन में प्रविष्ट होकर लता रूप में परिणत हो जाती है—विसुमरिददेवदा- णिअमा इत्थिआजण-परिहरणिज्झे कुमारवणं पविट्ठा । पवेसाणंतरं अकाणणोवंत-वत्ति-लदाभावेण परिण दं से रुपम् (विक्रमो० ४-प्रवेशक) । यही स्थिति महेन्द्र और विक्रम शब्दों की है । विक्रमोर्वशीयम् में तो विक्रम शब्द केवल इस शब्द के प्रति अत्यन्त पक्षपात होने के कारण ही ठूँसा गया है और महेन्द्र शब्द का पौन: पुनिक प्रयोग कर विक्रम को राजर्षि कहा है । महेन्द्र शब्द को बार बार जानबूझकर संकेतात्मक ढंग से समाविष्ट किया गया है । यही बात विक्रम शब्द के विषय में है । यथा—महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् तथा, अनुत्सेक: खलु विक्रमालंकारः—अंक दो श्लोक १५ एवं १७ के नीचे । सुविदित ही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि विक्रमादित्य और कुमारगुप्त प्रथम की महेन्द्रादित्य और महेन्द्रकुमार थी । इसी प्रकार राजमहिषियों के लिए कालिदास द्वारा देवी शब्द का प्रयोग हुआ है, जो कि गुप्त परम्परा थी । रानियों में सुदक्षिणा का भागधी, पुरुरवा की महिषी का काशिराजदुहिता, अज की पत्नी का विदर्भजा होना, इन तीन जनपदों के प्रति कवि के मन में पक्षपात द्योतित करता है । कुमार गुप्त की बहिन कुवेरनागा की पुत्री प्रभावती गुप्ता भी विदर्भ में ब्याही थी । कोशल की प्रशंसा कवि ने इन्दुमती स्वयंवर में बढ़चढ़ कर की है । अयोध्या के साथ गुप्तों का हार्दिक सम्बन्ध था । कुबेर नागा यदि नागवंशीया थी तो राम की वधू कुश की पत्नी भी नागवंशीया ही थी

इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं— लब्ध्वा वन्धुंतमपिचकुशः पञ्चमं तक्षकस्य । रघु, १८-८८ । कालिदास जैसे कुमार, विक्रम, महेन्द्र आदि शब्दों का साभिप्राय प्रयोग करते हैं वैसे ही गोप्तृ और गुप्त शब्द का भी बार बार और सांकेतिक प्रयोग करते हैं । वह रघुवंश में मगधेश्वर को वे सब विशेषण प्रदान करते हैं जो गुप्त-लेखों में हैं । वह उज्जयिनी और विदिशा की प्रसिद्धि वेश्याओं के लिये मानते है । यह स्थिति भी गुप्तकाल में थी । उनके रघु के जन्म के समय वेश्यायें नृत्य करती हैं—

सुखश्रवामङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सहवारयोषिताम् ।

रघु, ३-२०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्कालीन राजाओं के समान कालिदास ने भी बौद्धों के विरुद्ध कुछ नहीं कहा किन्तु वह साँचीनालन्दा और वैशाली की उपेक्षा कर गये । वाकाटक और गुप्त नरेशों के शिलालेखों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो लगेगा कि कुमारसंभव, विक्रमोर्वशीयम् और रघुवंश पूरी तरह गुप्त नरेशों को दृष्टि में रख कर लिखे गये हैं । केशी के द्वारा अपहृत उर्वशी हूणों द्वारा हथियायी गयी भारत लक्ष्मी है ।रघुवंश के प्रमुख राजाओं में गुप्त नरेशों की प्रतिच्छवि है । इन बातों पर विचार कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यारोहणकाल ३८० ई. के आस पास जनमें और स्कन्दगुप्त के शासन काल अर्थात् लगभग ४६० ई. तक जीवित रहे । वे वाकाटकों और गुप्तों के अभिलेखों से, जो उस समय लोक में प्रसिद्ध रहे होंगे, सम्यक् परिचित थे । उनका रघुवंश गुप्त राजाओं को दिशा देने, एवं रघुवंशीय राजाओं को उनसे बढ़कर, आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने के लिये लिखा गया ।

कालिदास का अधिक समय उज्जयिनी में बीता । वह न तो कभी राजकवि रहे, न किसी राजा के आश्रित । राज दरबारों के तामझाम और प्रासादों की आभ्यन्तरिक व्यवस्था, वहाँ चलने वाली कूटनीतियों आदि से उनका निकट परिचय नहीं था । पाटलिपुत्र वह नहीं गये । उज्जयिनी में जो गुप्तों के उपरिक या प्रान्तपति रहते थे, उनसे उनका संपर्क संभव है किन्तु उज्जयिनी या विदिशा में वह किसी राज सत्ता को नहीं पहचानते । कम से कम उनकी रचनायें तो ऐसा ही आभास देती हैं । देश के दूरस्थ जनपदों और वहाँ की विशेषताओं का उन्होंने जो वर्णन किया है, वह वास्तविक नहीं, सुनी सुनायी बातों के आधार पर । गुप्त युग में आवागमन के निरापद होने के कारण लोग बड़ी संख्या में एक छोर से दूसरे छोर तक निर्द्वन्द्व घूमते थे । प्राचीन कथायें भी लोग याद रखते थे—प्राप्यावन्तीनुदयन- कथा-कोविद-ग्रामवृद्धान् । मेघ. । गुप्त राजा समुद्रगुप्त तक स्वयं को 'बहुनीति- कथा-कुशल:' कहता है । उदाहरणार्थ रामेश्वरम् से आने वाले लोग ताम्रपर्णी में पाये जाने वाले मोतियों, एवं सुपारी-इलायची आदि वस्तुओं की चर्चा करते थे । कलिंग हाथियों के लिए प्रसिद्ध था । रघु की दिग्विजय समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के अभियानों की प्रसिद्ध कथाओं को सुनकर लिखी गयी थी । मेरी धारणा है कि वह उत्तर में कोटद्वार हो कर श्रीनगर (कुमायूँ) और कनखल-हरद्वार तक अवश्य गये थे । किन्तु हिमालय का ऊपरी भाग उन्होंने नहीं देखा था । उसके सारे वर्णन उन्होंने पुराणों के आधार पर लिखे हैं । मध्यदेश में चित्रकूट से लेकर मेकल श्रृंखला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान महाकोशल के क्षेत्र नर्मदा के प्रदेश, विदर्भ और निमाड़ तथा मालवा के दशपुर तक के प्रदेश, इस क्षेत्र के मुख्यत: विन्ध्य के वनों और मालव क्षेत्र की छोटी बड़ी नदियों से उनका निकट परिचय था। विदिशा की वर्तमान गुफाओं और उनके प्रस्तर-उत्कीर्णनों की जानकारी उन्हें नहीं थी। उनके शिलाबेश्भ संभवत: उदयगिरि के पीछे की गुफायें हैं। छत्तीसगढ़ के अरण्य और रामटेक की पहाड़ियों या बस्तर की इन्द्रावती की गुफाओं वाले स्थानों को मेघदूत का रामगिरि मानना किसी प्रकार उचित नहीं लगता। उनका रामगिरि बाँदाजिले का चित्रकूट ही है और मल्लिनाथ ने उसे ठीक ही पहचाना है। वाल्मीकि ने इस स्थान को तीर्थ बना दिया था। उनका मेघ उन स्थानों से होकर उड़ा है जो कवि के परिचित और प्रिय थे। कालिदास के समय चित्रकूट से नर्मदा के उद्‌गम स्थल तक धार्मिक लोग बराबर यात्रा किया करते थे। नर्मदा कवि को बहुत प्यारी थी। अपनी रचनाओं में वह घूमफिर कर विश्राम के लिये बारबार नर्मदा के तट पर पहुँच जाते है। विन्ध्य वनों को भस्म कर पशु पक्षियों के प्राणो को संकट में डाल देने वाली दवाग्नि को उन्होंने अपनी आँखों देखा था। वह विन्ध्यवनों के पावस-सौन्दर्य का पान कर चुके थे।

सारे कथन का सार यह कि कालिदास सन् ३९० के (लगभग) से ४६० (लगभग) ई. के मध्य वर्तमान थे। कुमार गुप्त का शासन भी उन्होंने देखा था। स्कन्दगुप्त के लेखों में जो विप्लुता वंश लक्ष्मी का उल्लेख है वह पारिवारिक विद्रोह को लेकर है जो कुमार गुप्त की मृत्यु के पश्चात् हुआ और जिसमें सफल होकर उन्होंने अपनी माता के आँसू पोंछे थे। कुमार गुप्त की मृत्यु सामान्य स्थिति में वृद्धावस्था में हुई। अत: यह कहना कि उन्होंने हूणों द्वारा लूटी गयी राजलक्ष्मी को नहीं देखा और उससे पूर्व अर्थात् ३५० ई. के लगभग उनकी मृत्यु हो गयी, मुझे ठीक नहीं प्रतीत होता और यदि ऐसा हुआ भी होता तो वह इस विषय में मौन रह सकते थे। कालिदास किसी के दरबारी नहीं थे। उनकी मृत्यु उज्जयिनी में ही हुई लगती है क्योंकि 'ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः, यह पंक्ति महाकाल की नगरी में उस अवस्था में लिखी गयी लगती है जब उनका शरीर यात्राक्षम नहीं रह गया था।

हाँ, एक प्रश्न अवश्य उठता है कि जब कालिदास गुप्त युग में हुए और गुप्तों से इतने प्रभावित थे कि रघुवंश की रचना उन्होंने "तद्‌गुणैः (गुप्तनृपतिगुणैः) कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः" होकर की तो फिर गुप्तों से छै सौ वर्ष पूर्व हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भूले बिसराये शुङ्गों को लेकर उन्होंने मालविकाग्निमित्र की रचना क्यों की ! इसका सीधा उत्तर यह कि कालिदास अन्तर में बौद्ध विरोधी थे और शुङ्ग-वंश ही ऐसा था जिसने वृहद्रथ से लोक को मुक्ति देकर पुनः वैदिक परम्परा का प्रवर्तन किया था। पतञ्जलि जैसे महान् विद्वान् मुनि से पुष्यमित्र ने अश्वमेध की दीक्षा ली और दो दो अश्वमेघ सम्पन्न किये थे। उदयन और वासवदत्ता के समान शुंग राजाओं की कीर्ति भी मालव और अवन्ति में धूमिल नहीं पड़ पायी थी। गुप्तों के समान शुङ्गों ने भी बौद्धकला-धर्म- क्षेत्रों को परम्परया मिलने वाली राज सहायता जारी रखते हुए भी वैदिक संस्थाओं, ईश्वर पर आस्था, देव प्रतिष्ठा और वर्णाश्रम व्यवस्था को पुन रुज्जीवन दिया जो कालिदास के मन के अत्यन्त समीप था। नृपस्य वर्णाश्रमपालं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः—रघु. १४-६७। फिर अग्नि मित्र के पुत्र ने भी स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त के समान विदेशियों को भारत की सीमा से बाहर खदेड़ा था और वह मालवाऽ वन्ति का ही अंग गया था। ये ही वे कारण थे जिन्होंने कालिदास को मालविकाग्निमित्र लिखने के लिए प्रेरणा दी किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि वह शुंग युगीन थे, समीचीन नहीं है।

कालिदास की कृतियाँ

कालिदास के ग्रन्थों की संख्या भी कुछ समय पहले तक अनिश्चित थी और ४४ रचनायें उनके नाम से बतलायी जाती थीं, किन्तु इधर काफी छानबीन के बाद विद्वानों ने सात ग्रन्थों को कालिदास-कृत स्वीकार किया है। इनमें दो महाकाव्य हैं—रघुवंश और कुमारसम्भव (इसके ८ सर्ग ही कालिदास-कृत माने जाते हैं); तीन नाटक हैं—मालिविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान-शाकुन्तल एवं दो गीतिकाव्य हैं—ऋतुसंहार और मेघदूत। इनमें मेघदूत और शाकुन्तल की विदेशों में बहुत प्रतिष्ठा है और इनके अनुवाद भी सर्वाधिक हुए हैं। रघुवंश उनकी प्रौढ़तम काव्य कृति है और विद्वानों में अधिक समादृत भी है। इधर कुछ लोग 'कुन्तलेश्वरदौत्य' को भी उनकी रचना मानने लगे हैं।

प्रश्न उठता है कि जिस व्यक्ति के जन्मस्थान, काल, परिवार या जीवन-चरित्र के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं, जिसने अपने ग्रन्थों में अपने समकालीन या आश्रयदाता शासक के सम्बन्ध कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं छोड़ा और भास तथा सौमिल्ल को छोड़कर अन्य किसी पूर्ववर्ती लेखक का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया, उसकी इतनी बड़ी प्रतिष्ठा का कारण क्या है और कौन-से वे तत्त्व हैं जो कालिदास को इतने महत्पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

सम्भवतः, यह आत्मगोपन भी उनकी महत्ता का एक निदर्शन है। जिस प्रकार जगत् का स्रष्टा अपनी कृति में स्वयं का विलय कर उससे अभिन्न है, सर्वत्र रहता हुआ भी किसी एक स्थान पर नहीं है और न अपनी कृति के फल का भोग करता है, उसी प्रकार महान् कलाकार स्वयं को प्रच्छन्न रखकर अपनी कृति में मूर्तस्वरूप ग्रहण करता है। शब्द-शब्द में प्रतिबिम्बित होकर भी वह किसी एक स्थान पर बद्ध नहीं होता। उनकी सम्पूर्ण साधना आराध्य को समर्पित रहती है, स्वार्थ लेश से विरहित। ऐसे कलाकार यदा-कदा ही उत्पन्न होते हैं, और कालिदास उनमें से एक हैं। अनेक समीक्षकों ने उनकी कृतियों में समकालीन संकेत पढ़ने की चेष्टा की है, सम्राटों की प्रशस्तियाँ ढूँढने का प्रयास किया है, किन्तु कवि ने उन सबको झुठला दिया है। वे विनतमस्तक हुए हैं तो केवल 'पार्वतीपरमेश्वर' के सम्मुख।

कालिदास की दूसरी विशेषता है कि वे केवल कवि हैं, शत-प्रतिशत कवि, विशुद्ध कलाकार। भक्त, योगी, समाजसुधारक, मानवतावादी या विश्वबन्धुत्व के प्रचारक होने के कारण उनका काव्य महान् नहीं है, अपितु महान् कवि होने के कारण उनकी रचनाओं में भक्ति, योग, मानवतावाद, संस्कृति और विश्वबन्धुत्व सब कुछ आ गया है। कालिदास की साधना का लक्ष्य है काव्य, और साधना की उदात्त स्थिति में उसमें लोक-कल्याण के तत्त्व अनायास ही आ जाते हैं, आनुषंगिक उत्पादन की तरह। भारतीय साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में विशुद्ध कवि के नाते इतनी प्रतिष्ठा कालिदास के अतिरिक्त कदाचित् ही किसी अन्य को प्राप्त हुई है।

कवि के नाते कालिदास में असीम संवेदना है। कण-कण पर उनका अनुराग है। नदी, निर्झर, वन, पर्वत, उपत्यका, खेत, खलिहान, बाग, बावड़ी, उपवन, वृक्ष, लता, खग, मृग, पशु, बालक, नर-नारी, आकाश, अन्तरिक्ष, मेघ, विद्युत्, नक्षत्र सभी के प्रति उनमें आत्मभाव है। वे सौन्दर्य के अप्रतिम शिल्पी हैं। उन्होंने जीवन को उसकी सम्पूर्ण उदारता और जगत् को उसके समग्र मार्दव के साथ देखा है। उनके समान मसृणता, स्निग्धता, पेशलता और सौकुमार्य अन्य किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होते। मयूर और पिक से ही नहीं, पारावत, भृङ्ग, सारस, कुरंग, मृग, महिष, शरभ, करेणु और सिंह सबसे उनका नाता है। इन सबके वे 'रहस्याख्यायी' हैं। वृक्षों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाल, पल्लव, पलाश, पुष्प और फल ही नहीं, वनदेवियाँ और वनचर तक उनके अभिन्न सखा हैं। प्रकृति का मानवीकरण देश-विदेश में बहुत हुआ है और हिन्दी के छायावादी एवं रहस्यवादी युग में तो उसकी बाढ़ ही आ गयी, किन्तु प्रकृति के तरल ओसकण से लेकर परुष शिलाओं तक का जितना विश्वास और सख्य कालिदास को प्राप्त है, उतना जगत् में अन्य किसी के प्रति देखने में नहीं आता।

प्रकृति के प्रति इस आत्मीयता के दर्शन कालिदास की प्रत्येक कृति में होते हैं—नागरिक और वन्य जीवन में इतना सामंजस्य, संवेदना की दृष्टि से इतना ऐकरूप्य कि दोनों भिन्न नहीं रह जाते। मानव और अन्य प्राणिजगत् में इतना भाईचारा वाल्मीकि तक में भी नहीं है। वाल्मीकि के पात्र प्रकृति के मुग्ध दर्शक हैं और कालिदास के पात्र उसके साथ तादात्म्य रखने वाले। कालिदास की पार्वती, शकुन्तला, मालविका—सभी लता-पौधों को अपने हाथों सींचती है। वन के देवदारू, वन-ज्योत्सना और माधवी उनके 'हेमकुम्भस्तन-निःसृत- पय' (दूध और जल) के रसज्ञ हैं। इस मातृत्व की स्थापना के कारण ही वन्य गज द्वारा देवदारु की छाल रगड़ दिये जाने से पार्वती को उतनी ही पीड़ा होती है, जितनी अपने औरस पुत्र स्कन्द के शरीर को क्षत-विक्षत देखकर। उनकी नायिका श्रृंगार की शौकीन होने पर भी लताओं का जी दुखने के डर से पल्लव तोड़कर जूड़े में नहीं खोंसती। पति-गृह को विदा होते समय यदि पिता के पास कोई सन्देश छोड़ती है, तो केवल यही कि मृगी के प्रसव का समाचार उसे पहुँचा दें। दर्भ से जीभ कट जाने पर इंगुदी के तेल से मृग का इलाज करना, वृक्ष में नया फल आने पर उत्सव मनाना, बच्चों को शेर के बच्चों से साथ खिलाना कालिदास के पात्रों की जीवनचर्या का अंग है। इस पुण्य वातावरण में भ्रमर अपनी प्रिया को फूल-कटोरे में भर-भरकर मधु पिलाते हैं और मृग अपने खुर से हौले-हौले आनन्दमीलिताक्षी हरिणी के नेत्रप्रान्त को खुजलाते निर्बाध स्नेह-रस का परिभोग करते हैं। कालिदास का वन्य जगत इतना भव्य है और इतना हृदयावर्जक कि एक बार प्रविष्ट होकर उसके बाहर निकलने को जी नहीं करता किन्तु फिर भी आइये, तपोभ्रष्ट साधक की तरह लोक को लौट चलें।

प्रकृति के समान ही कालिदास मानवीय संवेगों के भी चतुर शिल्पी हैं। बाल-सुलभ चंचलता, कैशोर्यगत उत्साह, यौवन और कैशोर्य की संगमवेला का औत्सुक्य एवं उन्मनस्कत्व, यौवन-मद, प्रौढ़त्व का दायित्व और वार्धक्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वात्सल्य, विवेक और विराग सभी कुछ उनकी लेखनी के स्पर्श से भास्वर हुआ है। दाम्पत्य का परस्पर समर्पण, अनपत्यता की पीड़ा, सन्तान का सुख, स्नेह की मिलन और वियोग-अवस्थायें, मान और प्रतीक्षा, गुरु-शिष्य एवं पिता-पुत्र, पुत्री और पिता के सम्बन्ध, मैत्री और सख्य कुछ भी उनकी स्नेहिल दृष्टि से नहीं छूटा। नर-नारी के स्नेह तथा नारी के जीवन के विषय में कालिदास विश्व के समग्र साहित्यकारों से भिन्न हैं। कलाकारों ने नारी को सदा ही पक्षपातपूर्ण दृष्टि से देखा है। विश्व की प्राय: सभी कृतियों में पुरुष काम बिगाड़ते हैं और नारी उन्हें सुधारती है। वह या तो देवी है या राक्षसी, पुरुष की पलकें या तो उसकी प्रतीक्षा में बिछती आयी हैं या उसे धिक्कारती आगे बढ़ी हैं। कालिदास का दृष्टिकोण पूर्णत: व्यावहारिक है। उनकी पत्नी गृहिणी है, सचिव है, सखी है और प्रिय शिष्या भी है। जिस प्रकार पति के मरण पर पत्नी विलाप करती है उसी प्रकार पत्नी के मरण पर पति भी। दोनों ही वियोग के असह्य होने के कारण प्राणत्याग करते है। नारी और पुरुष में सख्य और समानता का भाव कालिदास की समस्त कृतियों में व्याप्त है। उनका तप और संयम से परिपूत प्रेम लोक-कल्याण में फलित है। शिव-पार्वती हों, या पुरूरवा-उर्वशी, दिलीप- सुदक्षिणा हों या दुष्यन्त-शकुन्तला, प्रत्येक के प्रेम की परिणति स्कन्द, आयुष, रघु और भरत- जैसे लोक-रंजकों की प्रसूति में है। कालिदास के छन्द-छन्द में मानव-अन्त:करण की कोमलतम भावनाओं के चित्रण हैं।

भारत की भौगोलिक जानकारी जितनी सूक्ष्म, निर्दोष और सविवरण कालिदास में मिलती है, उतनी अन्य किसी भारतीय कवि में नहीं। काश्मीर से कन्याकुमारी और कामरूप से फारस तक के प्राकृतिक भूगोल के विषय में आप कालिदास पर विश्वास कर सकते हैं। रघुवंश, मेघदूत और शाकुन्तल में भूमि पर खड़े होकर और ऊपर आकाश में उड़ते हुए भारत के जो चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं, वे रंग, छाया और कोण सभी दृष्टियों से भव्य और प्रभावोत्पादक हैं। इसका कारण है, भारत के प्रति उनका असीम प्रेम, इस भूमि के कण-कण के प्रति उनका अमित अनुराग और राष्ट्र के रूप में भारत की इतनी आत्मीयतामय जानकारी अन्य किसी एक कवि ने प्रस्तुत नहीं की।

इस सर्वांगीण दृष्टि के परिणामस्वरूप उनका शब्द-शब्द शिव हो उठा। वे शिव के उपासक थे। उनके काव्य ने अनजाने ही उन्हें भारत का सांस्कृतिक निर्माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना दिया। भारत के सांस्कृतिक निर्माता कवियों में वाल्मीकि और व्यास के बाद कालिदास का नाम लिया जा सकता है। यदि वाल्मीकि और व्यास ने भारत का निर्माण किया, तो कालिदास में वह मुखर हो उठा। कालिदास ने कहीं कोई उपदेश नहीं दिया। वे न ऋषि थे, न प्राचार्य। वे थे सौन्दर्य की साधना में रत शिल्पी। सत्य और शिव तो स्वयं ही उनके साथ हो लिये।

कालिदास की रचनाओं में वैदिक संस्कृति पुनर्जीवित हो उठी है। उन्होंने अपनी रचनाओं में एक भी शब्द अपने विरोधी धर्मों या दर्शनों के विरुद्ध नहीं कहा, फिर भी उन्हें जो कहना था, वह सब उनकी रचनाओं में साकार है। राजतन्त्र पर उनका विश्वास था और वह भी चक्रवर्ती राजतन्त्र पर। विहार के गणतन्त्रों की दुर्गति से, सम्भवतः, वे परिचित थे। विदेशी आक्रमणों के समय अनेक जनपदों में बँटे देश की जो छीछालेदर हुई थी, उसकी कहानियाँ उन्होंने सुनी होंगी। इसलिये, सिंहल और असम से अफगानिस्तान तक एक केन्द्रीय सुदृढ़ शासन का उन्होंने समर्थन किया। साथ ही वे राजा और शासन पर कठोर नियन्त्रण के पक्षपाती थे, ऐसे कठोर नियन्त्रण के, जिसमें राजा का एकमात्र लक्ष्य होता है—प्रकृतिरंजन। प्रजा या प्रकृति के रंजन के समक्ष संसार के हर सुख और हर दुख का सम्बन्ध छोटा होता है। इसलिये उनका राजा 'ऋषि' है। वह किसी आरण्यक ऋषि से कम नहीं। कालिदास की राज्य-व्यवस्था में भारत की प्राचीन राजनीतिक मान्यताओं का आदर्श चित्र है।

कालिदास राजनीति पर धर्म के, क्षत्रिय पर ब्राह्मण के, राज-संसद् पर विद्यापीठ के, बल पर बुद्धि के और शक्ति पर संयम के पक्षपाती थे। उनके राजा विद्यापीठ की सीमा में रथ पर नहीं, पैदल चलते हैं। कालिदास ने राज्य पर अंकुश के लिए आश्रमों की प्रतिष्ठा को बहुत महत्त्व दिया है। वे आश्रम-व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनका कोई आदर्श पुरुष चाहे वह राजा हो या अन्य जन, आयु की निश्चित सीमा के बाद गृहस्थ-आश्रम में नहीं रहता। वह आयु का तृतीय प्रहर अरण्य में ही बिताता है।

मनुप्रतिपादित व्यवस्था कालिदास के लिए आदर्श है। उससे 'रेखामात्र' भी हटकर चलना उन्हें असह्य है। पुंसवन से अन्त्येष्टि तक सारे संस्कारों पर उनकी श्रद्धा है। उनके ग्राम, पुर और आश्रम—सब यज्ञ-धूप से परिपूरित हैं। दैनन्दिन अग्निहोत्र और श्रद्धा कर्म से राजसूय यज्ञ तक के वे परिपोषक हैं। यज्ञवेदी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदक्षिणा पर उनकी श्रद्धा है। वे गृहस्थाश्रम को सारे आश्रमों का मूल मानते हैं और उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा पर जोर देते हैं। वे प्रेम की परिणति विवाह में और विवाह की परिणति लोकरंजक सन्तति में मानते हैं। कालिदास के क्षत्रिय का आदर्श पीड़ित और शोषित की रक्षा, ब्राह्मण का आदर्श अपरिग्रह और स्वाध्याय और वैश्य एवं शूद्र का लक्ष्य लोकहित में उत्पादन तथा लोककल्याण के लिए श्रम है। उनकी वर्णव्यस्था में जातियाँ नहीं हैं और वर्णव्यवस्था लचीली तथा श्रम-विभाग पर अधिष्ठित है। सारी प्रजा उत्पादन का छठा भाग कर के रूप में देती है। जहाँ कर लेने के लिए राजकर्मचारी नहीं पहुँचते, वहाँ प्रजा स्वयं कर-भाग निकालकर रख देती है। शासन केवल प्रजा के कल्याण के लिए है। इसके परिणामस्वरुप शासन और शासित में सौमनस्य है। शासन का अर्थ है प्रजा को विनय की शिक्षा देना, उसे सभ्य बनाना। इसलिये, उनके राज्य में ईख की छाँह में बैठकर धान के खेत रखाने वाली लड़कियाँ शासन की प्रशंसा के गीत गुनगुनाती हैं। शासन लोभी नहीं है। वह मरने वाले निस्सन्तानों की सम्पत्ति जब्त कर अपने कोष में नहीं डाल लेता, अपितु उसके दूरस्थ सम्बन्धियों तक का पता लगाकर उन्हें सौंप देता है।

इस प्रकार, शासन और जनता, एक वर्ण का दूसरे वर्ण तथा एक आश्रम का दूसरे आश्रम, नर और नारी, मानव और पशु-पक्षी, प्राणी और जड़ जगत्, मर्त्य और दिव्य के साथ जो सौहार्द एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध कालिदास की रचनाओं में पाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। बिना नारेबाजी और प्रदर्शन के भारत की मिट्टी के प्रति जो अनुराग इस कवि में लक्षित होता है, वह भी अन्यत्र सुलभ नहीं। उसके घर स्वर्ग हैं। (प्रमाण के लिए किसी को नया घर बनाना हो, तो मेघदूत के यक्ष के वासभवन का नमूना ले ले) और स्वर्ग एक आदर्श नगर। उनके मानव पार्थिव होकर भी दिव्य हैं और उनके दिव्य पात्र मिट्टी की गन्ध से सुवासित। इसीलिये गेटे ने कहा था कि कालिदास में स्वर्ग और पृथ्वी मिलकर एक हो गये हैं।

और, इतने उदात्त एवं आवर्जक लोक की सृष्टि के लिए कालिदास की तूलिका ने जिन रंगों का प्रयोग किया है, उनमें कहीं कोई तड़क-भड़क नहीं है। उनकी भाषा अत्यन्त सीधी, सरल और वाक्यरचना सुलझी हुई है। कालिदास की शब्दावली को समझने के लिए कोष-ग्रन्थ उठाने और उनके अप्रस्तुतों का रस लेने के लिए अलंकारशास्त्र की पोथियाँ पलटने की आवश्यकता नहीं होती। वे उपमाओं में अद्वितीय हैं। उनकी उपमायें रात-दिन की परिचित, पाठक के दायें-बायें घूमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली और इष्ट प्रभाव की जनक हैं। उपमाओं की ऐसी सादगी और प्रस्तुत से उनके पूर्ण सामञ्जस्य ने उनके काव्य की गरिमा को बहुगुणित कर दिया है। कालिदास का छन्दश्चयन मनोवैज्ञानिक है और स्वस्थ हास्य, जिसका संस्कृत में अत्यन्त दारिद्र्य है, कालिदास की रचनाओं में ही पूरी तरह निखरा है।

ऋतु-संहार

ऋतुसंहार कालिदास की प्रथम एवं यौवन-कालीन रचना है। बहुत समय तक कुछ विद्वान् इसे कालिदास की कृति नहीं मानते थे क्योंकि इसमें, उनके विचार से, काव्य की वह प्रौढ़ता नहीं है, जो उनकी अन्य रचनाओं में प्राप्त होती है। किन्तु कालिदास की रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् अब यह निर्विवाद रूप से उनकी रचना स्वीकार कर ली गई है।

ऋतुसंहार गीतिकाव्य है। इसका अर्थ है ऋतुओं का समूह। इसके १४४ श्लोकों में ग्रीष्म, प्रावृट्, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुओं का वर्णन किया गया है। ये ऋतुयें क्रमशः ज्येष्ठ-आषाढ़, श्रावण-भाद्रपद, क्वांर-कार्तिक, अगहन-पौष, माघ-फाल्गुन और चैत्र-वैशाख में आती हैं।

काव्य का प्रारम्भ ग्रीष्म-वर्णन से होता है।इसमें कवि की दृष्टि धनाढ्यों के गृहों की ओर विशेष रूप से गयी है जिनमें तरह-तरह के जलयन्त्र (फव्वारे) लगे हैं हर्म्यतल मणियों से बने और सुवासित हैं, वीणा पर संगीत की स्वर लहरी उठ रही है और स्त्रियाँ कटि में मेखला, स्तनों पर चन्दन के लेप के साथ मोतियों की माला पहने और स्नान चूर्ण से वासित केशों को छिटकाये अपने पति के साथ एक ही पात्र से मधुपान कर रहीं हैं—

क्वचिद् विचित्रं जलयन्त्र मन्दिरम्। १-१

मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं

शुचौप्रियेयान्ति जनस्य सेव्यताम्॥१-१

सुवासितं हर्म्य-तलं मनोहरं प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु।

सुतन्त्रिगीतं मदनस्यदीपकं शुचौनिशीथेऽनुभवन्तिकामिनः। १-३

धनी कामिजनों के वैभव-विलास की चर्चा के पश्चात् बारह श्लोकों में कवि ने मनुष्येतर प्राणिवर्ग पर पड़ने वाले ग्रीष्म के प्रभाव का बड़ी ही मार्मिक शैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वर्णन किया है। उसने सिंह, गज, मयूर, सर्प, वराह, भेक, मीन, सारस, महिष, विहग, कपि, गवय आदि सभी प्राणियों की पीड़ा का गहराई के साथ अनुभव कर उसे वाणी दी है। लगता है, कालिदास ने में विन्ध्य पर्वत- शृंखला- क्षेत्र में ग्रीष्म की प्रचण्डता को स्वयं भोगा था, अन्यथा वन्य जीवों के असह्य कष्ट का ऐसा यथार्थ चित्रण उनके लिये संभव न होता। एक दो चित्र देखिये। वराह और महिष तो ग्रीष्म से सर्वाधिक पीडित होते हैं—

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरः खनन्नायत पोत्र- मण्डलैः।
रवेर्मयूखैः परितापितो भृशं वराह- यूथो विशतीव भूतलम्।

१-१७

सफेन- लोलायत- वक्त्र- संपुटं विनिःसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम्।
तृषाकुलं निःसृतमद्रि- गह्वरादवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम्।

१-२१

कितने यथार्थ हैं ये दोनों चित्र ! बिना प्रत्यक्ष अनुभूति के ऐसी रचना संभव नहीं है।

प्रथम सर्ग की तीसरी विशेषता है विन्ध्य में दवाग्नि का वर्णन। यह वर्णन केवल प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकता था। यथा—

ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु
स्फुटति पटु निनादैः शुष्क- वंश-स्थलीषु।
प्रसरति तृण मध्येलब्धवृद्धिः क्षणेन
ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्त- लग्नो दवाग्निः॥ १-२५
बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु
स्फुटति कनकगौरःकोटरेषु द्रुमाणाम्॥
परिणतदलशाखानुत्पतन् प्रांशु- वृक्षान्
भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते। १-२६

द्वितीय सर्ग में प्रावृट् का वर्णन है। कवि ने इसे "कामिजनप्रियः"कहा है और कामिजनों के ही वेष-अलंकार-प्रसाधनों और पारस्परिक काम-चेष्टाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ भूमि में इसे निरखा है । फिर भी प्रकृति पर पड़ने वाले वर्षा के प्रभाव पर भी उसकी दृष्टि जमी रही है । देखें—

नितान्त नीलोत्पल पत्रकान्तिभिः
क्वचित् प्रभिन्नाञ्जनराशिसन्निभैः ।
क्वचित् सगर्भ-प्रमदा-स्तन-प्रभैः
समाचितं व्योमघनैः समन्ततः ॥ २-२

तथा

अभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थित-कन्दली दलैः ।
विभातिशुक्लेतर-रत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्र- गोपकैः ॥
२-५

कवि को सगर्भ-प्रमदा स्तनों और कन्दली दोनों से विशेष लगाव है । अनेक स्थानों पर उसने काव्य में इनका उपयोग किया है ।

तृतीय सर्ग में शरद् का वर्णन है । इसमें कवि की दृष्टि प्रमुखतया प्राकृतिक सुषमा पर केन्द्रित रही हैं यद्यपि यहां भी वह उपमान के रूप में नववधूः, सन्दर्भ समदाः, वनिताः, नार्यः, प्रेषित पतिकाः और कामिनी का स्मरण करता रहा है । ऋतु संहार के समस्त सर्गों में यह सर्वाधिक निसर्ग- सुषमा से मण्डित है । कैसा मनोरम है शरद् का यह रूप—

काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो
हंसै र्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि
सप्तच्छदैः कुसुमभार-नतैर्वनान्ताः
शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभि । ३-२

तथा—

सम्पन्न-शालि-निचयावृत-भूतलानि
स्वस्थस्थित-प्रचुर-गोकुल-शोभितानि
हंसै-ससारसकुलैः प्रतिनादितानि
सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् । ३-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद का यह चित्र भी कितना यथार्थ और मनोरम है । इस ऋतु में मन्द-मन्द वायु बहती है, चारों ओर पुष्प विकसित होते और वातावरण सुखकर हो जाता है—

शरदि कुसुम- सङ्गाद् वायवो वान्ति शीताः

विगत- जलदवृन्दाः दिग्विभागा मनोज्ञाः ।

विगत- कलुषमम्भः श्यानपङ्काधरित्री

विमल- किरण- चन्द्रं व्योमतारा- विचित्रम् ।।

इसके पश्चात् हेमन्त काल आता है, जब जौ, गेहूँ आदि अन्न के पौधों में नये सुन्दर-सुन्दर पत्ते निकल आते हैं । लोध्र के वृक्ष फूलते हैं । धानपूरी तरह पक जाते हैं, पाला गिरता है और कमल नष्ट से हो जाते हैं—

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः प्रफुल्ल- लोध्रः परिपक्वशालिः ।

विलीन- पद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम् ।। ४-१

हेमन्त ऋतु कोमोद्दीपक भी होती है । स्वाभाविक था कि कालिदास इसका उपयोग स्वस्थ दाम्पत्य- प्रणय के चित्रांकन के लिए करते । उन्होंने इस प्रंसग में गृहस्थ जीवन के बड़ेहृद्य चित्र प्रस्तुत किए हैं, यथा—

अन्या प्रकाम- सुरतश्रम- खिन्न- देहा

रात्रिप्रजागर- विपाटल- नेत्र- पद्मा ।

शय्यान्तदेश लुलिताकुल केशपाशा

निद्रां प्रयाति मृदु सूर्यकराभितप्ता ।। ४-१४

तथा

निर्माल्यदाम परिमुक्त- मनोज्ञ- गन्धं

मूर्ध्नोऽपनीय घननील शिरोरूहान्ताः ।

पीनोन्नतस्तनभरानतगात्र- यष्ट्यः

कुर्वन्ति केशरचनामपरास्तरूण्यः ।। ४-१५

कोई -कोई स्त्री जिसका शरीर बहुत अधिक सम्भोग के श्रम के कारण थक गया है और जिसके कमल जैसे नेत्र रातभर जागते रहने के कारण लाल -लाल हो गये हैं, अपने उलझे-पुलझे केशों की लटों को शय्या के एक किनारे पर बिखराये सूर्य की कोमल किरणों की गरमी पाकर सबेरे-सबेरे ही सो गई है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घने-घने नीले केशों वाली कुछ अन्य स्त्रियाँ जिनके छड़ी जैसे छरहरे पतले शरीर मोटे और ऊँचे-ऊँचे स्तनों के बोझ से झुक रहे हैं, रात भर सुन्दर गन्ध ले लेने के बाद अब फूलों की माला को शिर से उतार कर फिर से अपने केश सँवार रही है।

ऋतु संहार का पाँचवा सर्ग शिशिर ऋतु का चित्रण करता है। शिशिर में भी शीत की उग्रता रहती है। इसमें और हेमन्त में विशेष अन्तर नहीं होता। इसलिए कवि ने केवल यह कहकर कि आजकल न चन्दन ही सुहाता है और न चाँदनी से उज्वल हर्म्य की छत ही। वायु घने कुहरे के कारण ठण्ढी रहती है, अतः वह भी मन को नहीं लुभाती। इस समय लोग खिड़कियाँ बन्द कर घर के भीतर बैठे रहते हैं। आग तापते हैं या सूर्य की किरणों का सेवन करते हैं। भारी मोटे वस्त्र पहनते हैं और यौवनोन्मद सहचरियों का सेवन करते हैं—

न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम्।

न वायवः सान्द्र- तुषारशीतला जनस्यचित्तं रमयन्ति साम्प्रतम्॥

५-३

निरूद्धवातायन मन्दिरोदरं

हुताशनो भानुमतो गभस्तयः।

गुरूणि वासांस्यवलाः सयौवनाः

प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम्।५-२

हेमन्त और शिशिर के सम्बन्ध में कवि के पास कुछ अधिक कहने के लिए नहीं है। इसलिए उसने इन दोनों सर्गो को केवल अट्ठारह और सोलह श्लोकों में केवल उद्दाम सम्भोग श्रृंगार की कुछ मनोरम झांकियाँ प्रस्तुत कर समाप्त कर दिया है—यद्यपि वह दोनों ऋतुओं की विशेषताओं से सम्यक् परिचित था, क्योंकि उसमें शिशिर का उपसंहार करते हुए उस ऋतु में प्रचुरता के साथ उपलब्ध होने वाले स्वादिष्ट शालि, इक्षु और गुड़ तथा उससे सम्बन्धित पदार्थों का एकाधिक बार उल्लेख किया है किन्तु साथ ही इसे कन्दर्प की प्रबलता का काल भी माना है—

प्रचुरगुड- विकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः

प्रबलसुरत- केलिर्जात- कन्दर्प- दर्पः। ५-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम और षष्ठ सर्ग जिसमें कुल अट्ठाईस श्लोक हैं वसन्त श्री का वर्णन है। बड़ा मनोरम होता है यह ऋतु। कवि कहता है, बड़े उत्साहपूर्वक स्वर से—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।

सुखाः प्रदोषा दिवासाश्च रम्याः सर्व प्रिये चारूतरं वसन्ते॥

६-२

वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम्।

चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः॥ ६-३

वृक्ष फलों से लद गये हैं, जल में कमल खिल रहे हैं, स्त्रियों के मन में कामेच्छा जागी है, पवन सुगन्ध से भर गया है, सन्ध्यायें सुखद होने लगीं हैं और दिन भले लगते हैं। वसन्त में हर वस्तु पहले से अधिक सुन्दर हो गई है। अब वसन्त ने वावड़ियों के जलों को, मणियों से जड़ी मेखलाओं को, चन्द्रमा के प्रकाश को, मदभरी युवतियों को, और भौरों से लदे हुए आम्र वृक्षों को रमणीयता प्रदान कर दी है। वसन्त की कुछ सामान्य विशेषताओं का निर्देशन कर कवि सहज ही स्त्रियों के समयानुकूल परिधानों और भूषा की चर्चा में लग गया है। उसने एक-एक अंग में धारण किये जाने वाले आभूषणों और वस्त्रों का विशद वर्णन करते हुए काम की सब पर प्रभाव डालने वाली लीला की भी, चर्चा की है। जैसे कानें में सजने वाले कर्णिकार के ताजे फूल, लहराते हुए केशों में अशोक के पल्लव और मल्लिका की खिली हुई कलियां, स्तनों पर सफेद चन्दन से गीले किये हुए हार, भुजाओं के कंगन और बाजूबन्द तथा जघनों पर लटकती करधनी ये सब वसन्त में स्त्रियों की शोभा में वृद्धि करती हैं—

कर्णेषु योग्यं नव कर्णिकारं

चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्।

फुल्लं च पुष्पं नव- मल्लिकायाः

प्रयान्ति कान्ति प्रमदा- जनानाम्॥ ६-५

स्तनेषु हाराः सित- चन्दनार्द्राः भुजेषु सङ्गवलयाङ्गदानि।

प्रयान्त्यनङ्गातुर- मानसानां नितम्बिनीनां जघनेषु काञ्च्यः॥ ६-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और काम किस -किस अंग में किस-किस रूप में आकर समा गया है इसका भी एक चित्र लीजिए—

नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु।
मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनङ्गो बहुधास्थितोऽद्य।

कवि ने इस ऋतु में फलने-फूलने वाले वृक्षों और पुष्पों के साथ भ्रमर, कोकिल आदि के कूजन और वसन्त में चलने वाले सुभग वायु का भी मनोरम चित्र दिया है। पाला गिरना बन्द हो जाने के कारण सुहावना लगने वाला वायु आम की फूली हुई डालियों को झकझोरता हुआ कोयल की बोली को चारों ओर दूर-दूर तक फैलाता हुआ और लोगों के मनों को आनन्दित करता तेजी से बहता है—

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखा
विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
नीहारपातविगमात् सुभगो वसन्ते॥ ६-२२

कवि के अनुसार कामयोद्धा वसन्त को साथ लेकर विश्व-विजय करने निकला है। आम की सुन्दर मंजरी उसका वाण है और पलाश धनुष, भ्रमर प्रत्यञ्चा, चन्द्र छत्र, मलयानिल गज और कोकिल विरूदगायक—

आम्रीवञ्जुलमञ्जरीशरवराः सत्किंशुकं यद्धनुः
ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम्।
मत्तेभो मलयानिलः परभृतो यद्बन्दिनो लोकजित्
सोऽयं भो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः॥

संस्कृत साहित्य में ऋतु-वर्णन की परम्परा का प्रारम्भ आदि-कवि वाल्मीकि से ही हो गया था। उनके रामायण में प्रसंगानुसार प्रकृति के भव्य एवं विराट् चित्रणों के साथ वर्षा आदि ऋतुओं के भी हृदयग्राही वर्णन है। उदाहरणार्थ वर्षा-वर्णन को लें—

कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरवताडितम्।
अन्तःस्तनित-निर्घोषं संवेदनमिवाम्बरम्॥ १॥
मेघ-कृष्णाजिनधरा धारा-यज्ञोपवीतिनः।
मारूतापूरित-गुहाः प्राधीता इव पर्वताः॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घना वनान्ताः शिखिनः प्रमत्ता
जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
गावो वृषाङ्केषु समान-नम्रा
जाता मही सस्य-वनाऽवकीर्णा ।।३ ।।

क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित् क्वचित् पर्वत-सन्निरुद्धं
रूपं यथा शान्त-महार्णवस्य ।। ४ ।।

रामा०-किष्कि०-सर्ग २१ ।

जब बादलों के भीतरी परतों में बिजलियाँ टकराती हैं और उनसे बादल के भीतर ही भीतर गम्भीर शब्द होता है तो लगता है जैसे किसी ने सुनहरे चाबुकों से बादलों को पीटा हो और वे उसके दर्द से कराह रहे हों ।१ ।वर्षा में जब पर्वतों पर काले बादल छा जाते हैं, पानी धाराओं में बरसने लगता है और उनकी गुफायें तेज वायु से भर जाती हैं तो वे काले मृगचर्म लिए, यज्ञोपवीत पहने, प्राणायाम करते हुए ब्रह्मचारियों जैसे मालूम होते हैं क्योंकि काले मेघ ब्रह्मचारी की मृगछाला जैसे, जलधारायें यज्ञोपवीत के तारों जैसी और वायु से भरी गुफायें प्राणायाम की वायु से भरे शरीर के भीतरी सावकाश प्रदेशों जैसी दिखती हैं । २ । वर्षा ऋतु में वन प्रदेश घने-घने हो गये हैं क्योंकि घास, लता और वृक्षों के नये पत्तों से खाली स्थान भर गये हैं । मोर आनन्द-मग्न हो गये हैं । कदम्ब वृक्षों की शाखाओं में नये-नये अंकुर फूट पड़े हैं । गायें बैलों से बराबर का प्यार करने लगी हैं । पृथ्वी सब ओर अनाज के खेतों से भर गयी है । ३ ।(यहां वाल्मीकि ने अन्न के खेतों के लिए सस्यवन शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि अरण्यों में नीवार आदि धान्य बिना जोते ही बो दिये जाते थे और ये धान्य-प्रदेश खेतों में विभक्त न होकर वन का ही एक भाग होते थे ।)

आकाश में बादल जहाँ-तहाँ छितरे हुए हैं । इससे वह कहीं तो बादलों से ढँका होने के कारण काला और कहीं खुला होने के कारण नीला दिखाई देता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह उस शान्त समुद्र के समान प्रतीत होता है जिसमें बीच-बीच में पर्वत फैले होते हैं। ४।

हेमन्त भी वर्षा के समान ही जन सामान्य के लिए कष्टदायी होता है। वर्षा के समान हेमन्त में लोग घर से बाहर कम ही निकल पाते हैं। वाल्मीकि के हेमन्त-चित्र भी वर्षा-जैसे ही मनोरम हैं—

> अगस्त्य-सेवितां पुण्यां सेवमाने दिशं रवौ।
> विहीन-तिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक् प्रकाशते॥ १॥
>
> रवि-सङ् क्रान्त-सौभाग्यस्तुषारावृत्त-मण्डलः।
> निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥ २॥
>
> वाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
> शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नन्दन्तः क्रौञ्च-सारसाः॥ ३॥
>
> अवश्याय-तमोध्वस्ता नीहार-तमसाऽऽवृताः।
> प्रसुप्ता इव दृश्यन्ते प्रफुल्ला वन-राजयः॥ ४॥

अरण्य काण्ड सर्ग २१।

हेमन्त में सूर्य के दक्षिणायन में चले जाने से उत्तर दिशा इस प्रकार श्री विहीन हो गयी है जैसे पति के अन्यत्र चले जाने पर पत्नी माथे पर टीका न लगाने के कारण श्री-विहीन दिखाई देती है। १। आजकल चन्द्रमा की सौंदर्य-श्री सूर्य ने ले ली है अर्थात् सूर्य चमक के कम हो जाने से चन्द्र के समान दिखता है। चन्द्रमा का मंडल तुषार से ढँका रहता है। इस कारण उसकी चाँदनी की भाप लग जाने के कारण प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता। २। सारे वन कुहरे से ढँक रहते हैं। उनमें जौ और गेहूँ की फसल लहराती है। सूर्य के निकलते ही क्रौंच और सारस बोलने लगते हैं। वे बड़े भले मालूम होते हैं। ३। फूली हुई वन-श्रेणियाँ कुछ तो पाले से जल गयी हैं और कुछ कुहरे के अन्धकार से ढंकी रहती हैं। ऐसा लगता है कि वे रात जानकर सो रही हैं। ४। कितनी स्वाभाविकता और सूक्ष्म दृष्टि है इन वर्णनों में। वाल्मीकि के ऋतु-वर्णन एक तो प्रसङ्ग-प्राप्त हैं—वे केवल ऋतु-वर्णन के लिए नहीं अपितु काव्य के चौखटे में सही स्थान पर जड़े हुए हैं। दूसरे उन पर कवि के अपने विचारों का भार नहीं है। कवि ने सारी चीजों को व्यवस्थित भर कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और ठीक सौन्दर्य-बोध के लिए उनके पास आइने के समान सुपरिचित उपमान भर लाकर जुटा दिये हैं। इसीलिए वाल्मीकि के ऋतु-वर्णनों में हमें सब कुछ अपना, सब कुछ स्पर्श्य और उपभोग्य लगता है।

कालिदास ने मेघदूत, अजविलाप एवं रतिविलाप आदि के समान ऋतु-वर्णन की प्रेरणा भी वाल्मीकि से ग्रहण की। उनके ऋतु-वर्णनों के प्रारम्भिक सम्बोधन भी इसके साक्षी हैं। किन्तु कालिदास का ऋतु-वर्णन वाल्मीकि की परम्परा का होकर भी कई बातों से उससे भिन्न है। वाल्मीकि आरण्यक या वनवासी थे। उन्होंने पर्वतों, वनों, सरिताओं, निर्झरों और आकाश पर ऋतुओं के प्रभाव का प्रत्यक्ष दर्शन कर उसे कला-निबद्ध किया था। इसलिए उनके वर्णनों में ताजगी, जीवन-शक्ति और यथार्थ-जन्य तरलता एवं सरलता है। वाल्मीकि के वर्णन प्राणवान् अधिक हैं क्योंकि वे निसर्ग के सीधे सम्पर्क से स्पन्दित हैं। कालिदास की प्रकृति वन्य भी है और नागर भी। इसमें वन और वसति, अरण्य और आराम दोनों का समन्वय है। कालिदास के वर्णनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—विशुद्ध ऋतु-वर्णन एवं उनका जन-जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव। विशुद्ध निरीक्षण और वर्णन की दृष्टि से ग्रीष्म और वर्षा के वर्णन श्रेष्ठ हैं। ग्रीष्म की भयंकरता के एक दो चित्र देखिये:—

रवेर्मयूखै रभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।

अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन् मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति॥

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यमः श्वसन् मुहुर्दूर-विदारिताननः।

न हन्त्यदूरेऽपि गजान् मृगेश्वरो विलोल-जिह्वश्चलिताग्रकेसरः॥

यह फन वाला साँप है। इसे ऊपर से सूर्य की किरणें जला रही हैं और नीचे से तपती हुई धूल झुलसाये देती है। इसलिए यह नीचा मुँह किये टेढ़ी चाल से चलता और बार-बार लम्बी साँसें खींचता हुआ मयूर के नीचे जाकर बैठ जाता है।

और यह है मृगराज सिंह। भयंकर प्यास ने इनका पराक्रम और उद्यम ढीला कर दिया है। यह भी मुँह फैलाये बार-बार लम्बी साँसें खींचता और जीभ लपलपाता है जिससे इसके केसर (गरदन के बाल) हिल रहे हैं। यह पास में भी बैठे हाथियों को नहीं मारता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने प्रथम सर्ग के १३वें से २१वें श्लोक तक पशु-जगत पर ग्रीष्म के प्रभाव का वर्णन किया है । इन्हीं श्लोकों को आधार बनाकर बिहारी ने कहा:—

कहलाने एकत वसत अहि-मयूर, मृग-बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ-दाघ निदाघ ।।

इस ऋतु की उपभोग्य सामग्री कालिदास के अनुसार थी—चाँदनी भरी रातें, विचित्र फुहारों के यन्त्र, शीतल मणियाँ, सरस चन्दन, सुवासित हर्म्यतल, वीणावादन और संगीत ।

निशाः शशाङ्क-क्षत-नील-राजयः
क्वचिद् विचित्रं जल-यन्त्र-मन्दिरम् ।
मणिप्रकाराः सरसं च चन्दनं
शुचौ प्रिये ! यान्ति जनस्य सेव्यताम् ।।

कालिदास के इस तथा अगले श्लोक के भाव को सुप्रसिद्ध व्रजभाषा कवि सेनापति ने इस प्रकार व्यक्त किया:—

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने तल,
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति विविध जलयन्त्रन की,
ऊँचे-ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत है ।।
सेनापति अतर, गुलाब अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लैलै धारियत हैं।
ग्रीषम के वासर बराइवे को सीरे सब,
राज-भोग काज साज यों सम्हारियत हैं ।।

ग्रीष्म के प्रसंग में दावाग्नि का वर्णन भी अत्यन्त प्रभावी है । गोस्वामी तुलसीदास जी का लंका दहन-वर्णन बहुत कुछ इससे अनुप्राणित जान पड़ता है ।

ऋतुसंहार का वर्षावर्णन भी ग्रीष्म के समान ही मौलिक एवं प्रतिभा-वैदग्ध्य-पूर्ण है । इसके अनेकों श्लोकों में कालिदास की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति एवं सौन्दर्य-ग्राहिणी रूचि परिलक्षित होती है । ग्रीष्म के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल पहली बार बरसे हैं । पानी की पतली धारायें बह निकली हैं । वे अपने साथ धूल को बहा लाई हैं । इसलिये मटमैली हैं । पर साथ में कूड़े-करकट को भी समेटे हैं इसलिए ऊपर से काली हैं । उनका अगला छोर पतला और शेष मोटा है । गति टेढ़ी-मेढ़ी है क्योंकि अभी तक पानी अपना रास्ता नहीं बना पाया है । मेढ़क इन निम्नगा धाराओं को अपनी ओर लपकते हुए सर्प समझ कर डरे-डरे और दुबके से देख रहे हैं:—

विपाण्डुरं कीट-रजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद् वक्रगति-प्रसर्पितम्।

ससाध्वसैर्भेक-कुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्॥

प्रथम वर्षा का यह वर्णन भारतीय साहित्य में अद्वितीय है । न जाने कितने भारतीय भाषा-कवियों ने अपने ऋतु-वर्णनों के लिए ऋतुसंहार से प्रेरणा ली है । उदाहरणार्थ—

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति
सेनापति है सुहाति सुखी जीवन के मन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन वन,
फूलि रहे तारे मानों मोती अनगिन हैं।
उदित विमल चन्द चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरनभयो सेत है वरन सब
मानहुँ जगत छीरसागर मगन है।

तथा

विमल प्रकास होत वारिज विकास
सेनापति फूले काँस हित हंसन के हीय हैं।

को ऋतु संहार के इन चरणों से मिलाइये—

काशैर्मही शिशिर-दीधितिना रजन्यो
हंसै र्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि।
सप्तच्छदैः कुसुम-भारनतैर्वनान्ताः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ।
काशंशुका विकचपद्म-मनोज्ञनेत्रा
सोन्माद हंस-रव-नूपुर-नाद-मध्या ।
तारागण-प्रवर-भूषण मुद्वहन्ती
मेघावरोध-परिमुक्त-शशाङ्क-वक्त्रा ।

कालिदास ने वसन्त को विजेता योद्धा और लोकजित् राजा के रूप में चित्रित किया है । उनका वर्षाकाल भी उद्धतगति नृप ही है । मैथिल कवि विद्यापति ने अपने वसन्त-वर्णन में इस भाव को ग्रहण किया है:—

आयेल रितुपति-राज वसन्त ।
धाओल अलिकुल माधव पन्थ ।।
दिनकर-किरन भेल पोगण्ड ।
केसर-कुसुम धएल हेमदण्ड ।।
नृप-आसन नव पीठ के पात
कांचन कुसुम छत्र धरू हाथ ।।

घनानन्द ने बरसते पानी को देखकर कहा कि ये बूंदे नहीं हैं अपितु हे प्रिये । तुम्हारे इस विरह को देखकर आकाश का भी धैर्य छूट गया है और वह बड़े बड़े आँसुओं में रो पड़ा है ।

बूंदें न परतिं मेरेजान प्रानप्यारी तेरे
विरही को देखि मेघ आँसुनि झर्‌यौ करै ।

कालिदास ने हेमन्त की ओस को देखकर कल्पना की थी कि शीतकाल त्रस्त होकर युवतियों के पीन स्तनों में जा छिपा किन्तु प्रेमियों द्वारा उनके जोर से दबाये जाने के कारण वह इतना पीड़ित हुआ कि उसकी आँखों के आँसू न रूक सके । वे ही ओस की बूँदों के रूप में सर्वत्र बिखर गये हैं ।

संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के ऋतु-वर्णन कालिदास से प्रभावित हैं । आगे चलकर ऋतुवर्णन संस्कृत महाकाव्यों का एक अनिवार्य अंग ही बन गया और हिन्दी में तो न जाने कितने ऋतु-वर्णन-काव्य लिखे गये । इनमें अनेकों की शब्दावली तक ऋतुसंहार से मिलती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु-परिवर्तन सामान्य जन-जीवन को प्रभावित करता है । कालिदास ने विभिन्न ऋतुओं के प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ पशुपक्षि जगत् पर भी उसका प्रभाव चित्रित किया है । प्राणिवर्ग पर यह प्रभाव बाह्य भी होता है और आन्तरिक भी । ऋतुसंहार का बहुत बड़ा भाग इसी प्रभाव-चित्रण से पूर्ण है । मानव जगत पर पड़ने वाले प्रभाव को उन्होंने प्राय: श्रृंगार (काम) की पृष्ठभूमि में देखा है और काम में भी उनकी दृष्टि शारीरिक भोगविलासों तक सीमित रही है । इसका कारण युगीन परस्थितियाँ हो सकती है, कवि की अपनी आयु और बौद्धिक परिपक्वता की मर्यादा भी हो सकती है । चित्र-पट का संकरापन भी हो सकता है । फिर भी इस प्रसंग में कवि ने अनुपात की दृष्टि से कहीं अधिक स्याही खर्च की हैं । ऋतु-संहार के ये वर्णन कहीं-कहीं बहुत ही आकर्षक, मौलिक किन्तु उद्दीपक हैं । इनके पाठकों की एक अपनी श्रेणी है । ये सर्वजन-आस्वाद्य नहीं हैं । सामान्य जन के लिए इनके गन्ध-माधुर्य की तीव्रता कभी-कभी शिरोवेदना ही उत्पन्न करती है । इन स्थलों पर वात्स्यायन के काम-सूत्र का प्रभाव स्पष्ट है क्योंकि अनेक स्थलों पर इन चित्रों में न केवल मौलिकता है और न ताजगी, केवल परम्परा का निर्वाह-मात्र है । यों भी कालिदास के समय में कवि-परम्पराएँ (कवि-समय) स्थिर हो चुकी थीं और बहुत सी कल्पित धारणाएँ जो बाल्मीकि के समय में नहीं पायी जातीं, ऋतु-संहार के काल में बद्धमूल जान पड़ती हैं । कालिदास के काल का विवेचन करते समय इन दोनों बातों पर भी दृष्टि रखने की आवश्यकता है ।

श्रृंगार वर्णनों में विलासी तरूण-तरणियों के चित्र बड़े ही स्वाभाविक बन पड़े हैं । यथा—

"हेमन्त ऋतु का प्रभात है । भयंकर सर्दी के बाद सूर्य की पहली किरणें फूटी हैं । इस समय कोई बहू दर्पण हाथ में लिये धूप के सामने बैठी अपने मुख का श्रृंगार कर रही है । साथ-साथ अपने होंठ को भी खींच-खींच कर देखती जा रही है कि कहीं उस पर उसके पति के चिह्न तो नहीं रह गये हैं । कोई स्त्री रात को देर तक जागने के कारण अपने लाल हुए नेत्रों को बन्द कर, खुले बालों को कन्धे पर बिखेरे धूप में ही सो गई है । कोई कुम्हलाये हुए गजरे को जूड़े से उतार कर फिर से नये ढंग से बालों को सजा रही है । कोई रात की सलवटों वाली साड़ी और चोली उतार कर नई साफ साड़ी पहन रही है और कोई अपने थके शरीर को ढीला छोड़कर मालिश करवा रही है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ-जीवन के इन मधुर चित्रों के साथ ऋतु-संहार में प्रत्येक ऋतु में पहने जाने वाले वस्त्रों, अलंकारो, भोग्य वस्तुओं तथा अन्य सामग्री की बड़ी तालिका मिलेगी। उससे प्रत्येक ऋतु में फूलने वाले वृक्षों, वीरुधों आदि की सूची तथा पशु-पक्षियों के क्रिया-कलापों की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।

कालिदास का युग धन-धान्य की दृष्टि से समृद्ध था। इस समय राजनीतिक स्थिरता एवं शान्ति थी। लोग निश्चिन्तभाव से कला-विलास, साहित्य सर्जन और जीवन के आनन्द-प्रमोदों में रत थे। गर्मी में चूने से पुते घरों की सुगन्धित जल से धोई हुई चाँदनी से प्रकाशित छतों पर आधी-आधी रात तक वीणा-वादन चलता था और संगीत की महफिलें जमती थीं। मदिरापान तो उच्च वर्ग में बारहों महीने चलता था। मदिरा के अनेकों प्रकार प्रचलित थे। वह पीने से पूर्व फूलों में बसा ली जाती थी। स्त्रियाँ भी अपने पतियों के पार्श्व में बैठी उसमें उनका साथ देती थी। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से बचने के लिए तलधर बनाये जाते थे और घरों में फुहारे(जल यन्त्र) लगाये जाते थे। सोने वाले कमरे सुगन्धित द्रव्यों की धूप में वासित कर लिये जाते थे। लाग शीतल मणियाँ पहनते और चन्दन, कपूर, आदि का शरीर पर लेप करते थे। स्त्रियाँ सदा पुष्पहार पहनतीं और नाना प्रकार से बालों का श्रृंगार करती थीं। कानों में भी तरह-तरह के फूलों के गुच्छे, कदम्ब फूल या जौ के अंकुर (यव-प्ररोह) पहने जाते थे। स्त्रियाँ स्नान के बाद अपने केशों में अगर की धूप देकर उन्हें सुगन्ध-युक्त बनाती थीं। स्त्रियों के अधोवस्त्र (साड़ी) को दुकूल कहते थे और ऊपर या वक्षःस्थल के वस्त्र को अंशुक। चोली या कूर्पासक पहनने की प्रथा थी। कौशेयक तथा सफेद वस्त्र भी बहुत व्यवहार में आते थे। वस्त्र, ऋतु के अनुसार मोटे या पतले होते थे। चोली का रंग पीला और साड़ी का गहरा लाल होता था। सामान्य स्त्रियाँ कानों में कर्णपूर, कण्ठ में मोतियों का हार, कटि में सोने की करधनी, कलाई में कटक या वलय, भुजाओं में अङ्गद और पैरों में नूपुर पहनती थीं। नूपुरों के बजने की आवाज कलहंस जैसी मधुर होती थी। पैरों में लाक्षारस से बना महावर लगाने की प्रथा थी। लेप ऋतु के अनुसार बनाये जाते थे। चन्दन मूल द्रव्य था। उसमें ऋतु के अनुसार कपूर, केशर, कालागुरु, प्रियङ्गु, कस्तूरी आदि अन्य द्रव्य मिला लिए जाते थे। इस लेप से स्तनों, कपोलों और मस्तक पर नाना भांति की पत्ररचना भी की जाती थी। इसी प्रकार कण्ठ में पहनी जाने वाली पुष्पमाला शीत ऋतु में केशर के घोल में और ग्रीष्म ऋतु में चन्दन में भिगो ली जाती थी। श्रृंगार में पुष्पों का बहुत अधिक उपयोग किया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्बूल खाने की प्रथा थी। पुष्पासव तथा ताम्बूलादि से मुख को सुगन्धित बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता था। कभी-कभी शोभा के लिये स्त्रियाँ अपने बालों को कटि तक छितरा लेती थीं। वस्त्रों के विषय में भी वे बहुत सतर्क थीं। उनके दिन और रात में पहनने के वस्त्र अलग होते थे। कालिदास के समय में विलास और रागरंग का उत्कर्ष था।

प्रकृति-प्रेमी एवं कला-प्रवण होते हुए भी ऋतु-संहार का समाज कामुकता से पीड़ित है। अभ्यन्तर की अपेक्षा उसकी दृष्टि बाह्य की ओर अधिक है। इस काल का भारत भौतिक दृष्टि से समृद्ध तथा राजनीतिक दृष्टि से सुस्थिर जान पड़ता है जिसमें इस प्रकार के कला-विलासों के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता था। ऋतुसंहार ऐसे ही काल की रचना है। फिर उसके साथ कवि के अपने उद्दाम यौवन की वह तीव्रधारा भी जुड़ी हुई है जिसे कुमार-सम्भवीय शिव में संयम-सेतु या रघुवंशीय राम के मर्यादा-महोदधि तक पहुँचने के लिए काफी मार्ग पार करना शेष था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुसंहार और उसका रचनाकार

कालिदास की कृतियों पर विचार करते समय संस्कृत साहित्य के बहुत से इतिहास लेखकों, स्वतन्त्र समीक्षकों एवं विचारकों ने ऋतु संहार के कालिदास-कृत होने के विषय में सन्देह प्रकट किया है । इनमें कुछ तो स्पष्ट ही इसे कालिदास की कृति नहीं मानते हैं, कुछ सन्देह की मन: स्थिति में हैं और कुछ कालिदास की लेखनी से प्रसूत मानते हुए भी इसे उनके यौवन के नवोन्मेषकाल की अपरिपक्व रचना स्वीकार करते हैं । जो विद्वान् असन्दिग्ध भाव से ऋतुसंहार को कालिदास-प्रणीत अंगीकार करते हैं वे भी अस्वीकार करने वालों को पूर्वपक्ष में रखकर उनकी शंकाओं का निरसन करके तब अपनी स्वीकृति अभिव्यक्त करते हैं । इससे इतना स्पष्ट है कि कालिदास के अध्येताओं के मन में ऋतुसंहार को लेकर कहीं न कहीं चुभन अवश्य रही है । यद्यपि अब कालिदास की निर्विवाद कृतियों में प्राय: ऋतुसंहार को भी सम्मिलित कर लिया जाता है तो भी उसकी स्थिति शुद्ध होकर सवर्ण हिन्दुओं की पंक्ति में बैठे किसी विधर्मी स अधिक सम्मानपूर्ण नहीं हैं । इसीलिए यह समीचीन होगा कि हम इस कृति पर बिना किसी पूर्वग्रह के और व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करें । ऐसा करते समय मैं देश-विदेश के उन दर्जनों महामनीषियों के ग्रन्थों, लेखों और भाषणों में निबद्ध सन्दर्भों की चर्चा जानबूझकर नहीं कर रहा हूँ क्योंकि एक तो उनकी सूची और विस्तार विपुलकाय है और दूसरे आतंककारी नामों की पृष्ठभूमि में पाठक के लिये तटस्थ भाव से तथ्यों को ग्रहण कर पाना भी कठिन हो सकता है ।

आइये पहले देखें कि कालिदास के अन्य काव्यों और नाटकों के प्रेरक स्रोत कौन हैं और वह किन पूर्ववर्ती आचार्यों के ऋणी हैं, साथ ही यह भी कि जिन पूर्व ग्रन्थों से उन्होंने अपने अन्य काव्यों में प्रेरणा ग्रहण की है उनका कुछ प्रभाव ऋतुसंहार पर भी है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास यदि अभिज्ञानशाकुन्तल की कथावस्तु के लिये महाभारत के आदिपर्व और पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड, विकमोर्वशीय के लिये शतपथ ब्राह्मण, वृहद्देवता, मत्स्यपुराण किन्तु मुख्यत: वेदार्थदीपिका के ऋणी हैं तो रघुवंश और कुमारसंभव के लिये रामायण, महाभारत और पद्मादि प्राचीन पुराणों के। मेघदूत का मूलप्रेरणा- स्रोत रामायण है। मालविकाग्निमित्र परम्परागत ऐतिहासिक तथ्यों पर आश्रित है। फिर भी दो ग्रन्थों का प्रभाव कम या अधिक परिमाण में उनकी सारी कृतियों में पाया जाता है और वे हैं—रामायण एवं कामसूत्र। उनके कथानकों का आधार पुराण है या पुराणों के इन अंशों का आधार उनकी कृतियाँ, यह विषय विवादास्पद हो सकता है किन्तु रामायण की शीतल छाया उनके सारे रसभरित वर्णनों पर है, इस बात से कौन इन्कार कर सकता है ? रघुवंश और मेघदूत में काव्यात्मक ढँग से उन्होंने स्वयं भी इसे स्वीकार किया है। इसीलिये यह देखना आवश्यक है कि जिस प्रकार रामायण उनके काव्यग्रन्थों का उपजीव्य है और कामसूत्र प्रसंग प्रसंग पर प्रेरक, उसी प्रकारक्या इन दोनों ग्रन्थों का प्रभाव ऋतु संहार पर भी है।

ऋतुसंहार का प्रारम्भ ग्रीष्म वर्णन से हुआ है। इस प्रसंग में कालिदास ने विन्ध्य पर्वत पर लगी दवाग्नि का लोमहर्षक वर्णन किया है। वाल्मीकि में ग्रीष्म वर्णन तो नहीं है किन्तु लंकादाह के प्रसंग में अग्नि के प्रकोप का चित्रण अवश्य हुआ है। ऋतुसंहार के दावानल का वर्णन करते समय कालिदास के सम्मुख रामायण के सुन्दरकाण्ड का ५४ वाँ अध्याय रहा है जिसकी छाया उनके वर्णन पर स्पष्ट है। तुलना के लिये देखिये—

	रामायण	ऋतुसंहार
१.	अभूच्छ्वसनसंयोगादतिवृद्धो हुताशनः। सुन्दर. ५४-८	भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते। १-२६
२.	श्वसनस्य च संयोगादतिवृद्धो महाबलः वही २१	प्रबलपवन- वेगोद्भूत- वेगेन तूर्णम्। १-२४
३.	क्वचित्किंशुकसंकाशाः क्वचिच्छाल्मलिसंनिभाः।	विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा बहुतर इव जातः शाल्मलीनांवनेषु १-२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वचित्कुंकुमसंकाशाः स्फुरतिकनक- गौरः कोटरेषु द्रुमाणाम्।
शिखा- बह्वेश्चकाशिरे। वही —१-२६
२९

वर्षा के वर्णन में वृक्षों एवं, पशु पक्षियों आदि के उल्लेख में तो साम्य है ही, भावाभिव्यक्ति और शब्द-विन्यास भी परस्पर मिलते जुलते हैं—

रामायण (किष्कि.) अ० २८	ऋतु० सर्ग २
१. प्रवृत्तनृत्योत्सव बर्हिणानि २८-२१	१. प्रवृत्त-नृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् २-६। शिखिनां प्रनृत्यताम्। वही १४। प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः। वही १६
२. ममशोकाभिभूतस्य कामसन्दीपनान्स्थितान्।वही १४	२. तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम्। ४ वनस्थली समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः ९
३. विद्युत्पताकाः, .शैलेन्द्र कूटाकृतिसंनिकाशाः गर्जन्तिमेघाः समुदीर्णनादामत्तागजेन्द्रा-इव। वही २०	३. ससीकराम्भोधरमत्तकुंजरः तडित्-पताकोऽशनिशब्द-मर्दलः। ६
४. तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्ण गम्भीर महारवाणाम्। ३१ गजेन्द्राः सार्धंमयूरैः समदानदन्ति। वही २८	४. पयोधरैः भीमगभीरः निःस्वनैः। ११ वनद्विपानां नववारिदस्वनैः मदान्वितानां ध्वनतांमुहुर्मुहुः॥ १५
५. वषोर्दकाप्लावितशाद्वलानि। वही २१	५. तृणोत्करैरूद्गतकोमलाङ्कुरैः। ८
६. कान्तासकामाप्रियमभ्युपैति। वही २५	६. प्रयान्तिरागादभिसारिकाः स्त्रियः। १० योषितः प्रियान् परिष्वजन्तेशयने निरन्तरम्। ११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. कदम्बसर्जार्जुन-कन्दलाढ्यावनान्तभूमिः । वही ३४	७. कदम्बसर्जार्जुन-केतकीवनम् । १७
८. नवाम्बुधाराहत केसराणि ध्रुवं परिष्वज्यसरोरुहाणि । कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानिहृष्टाभ्रमराः पिबन्ति । वही ४२	८. विपत्रपुष्पां नलिनींसमुत्सुकाविहाय भृङ्गाः श्रुतहारि- निःस्वनाः । पतन्तिमूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया । १४
९. जाता वनान्ताः शिखिषु प्रनृत्ताः जाताः कदम्बाः सकदम्ब-शाखाः । २६	९. मुदित इव कदम्बैः जातपुष्पैः समन्तात् पवन चलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव । १४ । प्रवृत्तनृत्यैः शिखिभिः समाकुलाः । १६
१०. द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति । २५	१०. स्त्रियः सुदुष्टाइव जातविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् । ७
११. तटानिशीर्णान्यतिवाहयित्वा द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति । ३९	११. निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान् । ७
१२. बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन-विभाति भूभिर्नवशाद्वलेन २४	१२. प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः । ५
१३. गात्रानुपृक्तेनशुकप्रभेण नारीव -लाक्षोचितकम्बलेन ॥ २४	१३. विभातिशुक्लेतररत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षतिरिन्द्रगोपकैः । ५

यों तो वाल्मीकि और कालिदास दोनों ने कुटज, अर्जुन, सर्ज,नीपकुन्द आदि पुष्पी वृक्षों और चक्रवाक, नीलकण्ठ, इन्द्रगोप आदि का समान रूप से उल्लेख किया है किन्तु मनोरंजक बात यह है कि वृक्षों में केतक और कदम्ब तथा पक्षियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मयूर और षट्पद दोनों को विशेष प्रिय हैं जिनका स्मरण दोनों ने पुनः पुनः किया है।

कालिदास के शरद् वर्णन पर भी वाल्मीकि की छाया स्पष्ट है। दोनों के न केवल वर्णनों, प्रत्युत शब्दावली तक में साम्य है। देखिये—

किष्कि० का० अ. ३०	ऋतुसंहार सर्ग ३
१. काशैः दुकूलैरिव संवृतानि।५५ कूलानि काशैरूपशोभितानि। ५१	१. काशांशुका. . . शरन्नववधूरिव रूपरम्या। १ काशैर्मही. . . शुक्लीकृता..। २ विकसितनवकाशश्वेतवासो वसाना। २६
२. विपक्वशालिप्रसवानिमुक्त्वा प्रहर्षिता सारस-चारुपंक्तिः। ४७ शालिवनं विपक्वम्। ५३	२. आपक्वशालिरुचिरानतगात्र- यष्टिः। १ संपन्न- शालिनिचयावृतभूतलानि। १६
३. शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासासुतारार्कनिशाकराणाम्। २८ सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धी... पद्माकरेष्वभ्यधिकंविभाति। २९	३. सप्तच्छदैः कुसुमभारतनतैर्वनान्ता........ शुक्लीकृता.........२सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमीः ॥३॥
४. रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा-तारागणोन्मीलित चारुनेत्रा। ज्योत्स्नाशुंकप्रावरणाविभाति नारीव शुक्लांशुक-संवृतङ्गी। ४६	४. तारागण-प्रकटभूषण मुद्वब्हन्ती मेघावरोधपरिमुक्तशशाङ्कवक्त्रा। ज्योत्स्नादुकूलममलंरजनीदधाना वृद्धिंप्रयात्यनुदिनंप्रमदेववाला। ७
५. मीनोपसंदर्शितमेखलानां नदीबधूनां गतयोऽद्यमन्दाः। ५४	५. चंचन्मनोज्ञ शफीरशनाकलापाः...मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य। ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. गतोत्सवा ध्यानपरामयूरा: । १३ प्रयान्ति दीनाविमदामयूरा: । ४	६. पश्यन्तिनोन्नतमुखा गगनं मयूरा: । १२ नृत्यप्रयोगरहितान् शिखिनोविहाय । १३
७. जलं प्रसन्नं कुमुद-प्रहासम् । ५३	७. कुमुदैर्जलानि...शुक्ली कृतानि । २ कुमुदमपि गतेस्तं लीयतेचन्द्रविम्बेहसितमिव । २३ कुमुदरुचिरकान्ति: । २६ विगत कलुषमम्भ: । २२
८. ससारससाराव- निनादितासु नदीषुहृष्टानिपतन्तिहंसा: । ४२ निर्भत्स्यमानाइव सारसौघै: । ४ प्रहर्षितासारस चारुपंक्ति: । ४७ प्रकीर्ण हंसाकुलमेखलानाम् । ४९ हंससारस चक्राह्वै:... पुलिनान्यवकीर्णानि । ६३ क्रीडन्ति हंसा: सहचक्रवाकै: । ३१	८. सोन्माद हंसरवनूपुरनादरम्या । १ कादम्बसारसकुलाकुलतीरदेशा: कुर्वन्ति हंसविरुतै: परितोजनस्य प्रीतिं: तटिन्य: । ८ सोन्माद- हंस मिथुनैरुपशोभितानि ११ हंसै: ससारसकुलै: प्रतिनादितानि । १६ क्वणितकनककांचीं मत्तहंसस्वनेषु । २६ हंसानुपैति मदनोमधुर-प्रगीतान् । १३

हेमन्त-वर्णन मं दोनों कवियों में पर्याप्त भिन्नता है । वाल्मीकि का लक्ष्य इस ऋतु में प्रकृति के स्वरूप का यथातथ्य प्रस्तुतीकरण है । यहाँ वाल्मीकि प्रकृति पर हेमन्त के प्रभाव का गहरी तन्मयता के साथ निरीक्षण करने में डूब गये हैं तो कालिदास उसके प्रमदाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अवलोकन करने में । दृष्टि का बड़ा अन्तर होने पर भी प्रसंगवशात् उनके निरीक्षण में साम्य आ गया है और शब्दावलि में भी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अरण्य. अ. १६	ऋतुसंहार—सर्ग ४-५
१. शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः, शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयःकनक-प्रभाः +१७	१. प्ररुढशालीक्षुचयावृतक्षितिम्। ५-१ स्वादुशालीक्षुरमयः ५-१६ परिणत बहुशालिव्याकुल ग्रामसीमा। ४-१८
२. नीहार-परुषो लोकः। ५ अवश्याय तमोनद्धा.. वन-राजयः। २३ तुषारपत-नाच्चैव...रसवज्जलम्।२५	२. तुषारसंघात निपातशीतलाः रात्रयः ५-४ वायवः सान्द्रत्तुषारशीतलाः। ५-३ प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः॥ ४-१ विनिपतिततुषारः क्रौञ्चनादोपगीतः प्रदिशतु हिमयुक्तस्त्वेष कालः सुखं वः। ४-१८
३. वाष्पाच्छन्नान्यरण्यानि शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्येनदद्भिः क्रौञ्चसारसैः।१६	३. क्रौञ्चनादोपगीतः...हिमयुक्तोवः सुखंकाल एषः। ४-१८
४. मृदुसूर्या...दिवसाः। ११	४. मृदुसूर्य कराभितप्ताः।४-१४

इस वर्णन में एक अन्तर भी स्पष्ट है। वाल्मीकि कहते हैं—नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः। तो कालिदास प्रफुल्ल नीलोत्पलों के कारण सरों को चेतोहर बतलाते ह—प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि...सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम्। इसका कारण दोनों कवियों का अधिक और कम शीत वाले प्रदेश में रहना हो सकता है। कालिदास का उक्त कथन उनके "विलीन- पद्मः प्रपतत्तुषारोहेमन्तकालः-४-६ के भी विरुद्ध है।

वसन्त वर्णन के प्रसंग में वाल्मीकि के राम की मनः स्थिति कालिदास से मिलती जुलती है। अन्तर यह कि रामायण का वर्णन वियोग किन्तु ऋतुसंहार का संभोग श्रृंगार की पृष्ठभूमि में हुआ है। इनमें साम्य देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किष्कि. सर्ग १	ऋतुसंहार सर्ग ६
१. अशोकस्तवकाङ्गारः षट्पदस्वन निस्वनः । २९ कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः ।५९	१. रक्ताशोकविकम्पिताधरमधुः पुष्पागमः- ३६ कुर्वन्त्यशोकाः हृदयं सशोकं निरीक्षणमाणाः नवयौवनानाम् । १८
२. मारुतश्चलितः स्थानैः षट्पदैरनुगीयते । १४ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधु गन्धिषु । १८ भृंगराजप्रमुदितः सौमित्रेमधुरस्वरः । २७ षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिवप्रियाम् । ५८	२. द्विरेफमालाविलसद्-धनुर्गुणः । १ कूजन् द्विरेफोऽप्यममम्बुजस्थः । १६ मत्त- द्विरेफपरिचुम्बित चारुपुष्पाः १९ समदमधुकराणां कोकिलानां निनादैः २९ मत्तद्विरेफ-स्वनः... पुष्णागमः । ३६
३. पुंस्कोकिल रुतैरपि...स्वनन्ति पादपाश्चैते । २८ कोकिलाकुल सीमान्तोदयिताया ममानध । ३१ हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः । २३	३. पुंस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्तहर्षैः २३ कोकिलालापरम्यः-वसन्त-श्रेष्ठकालः सुखाय । ३७ उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य । ३४
मत्तकोकिल संनादैर्नर्तयन्तीव पादपान् । १५	यत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्वचोभिःर्यूनां मनः सुवदनानिहितंनिहन्ति । २२
४. निष्पत्रैः सर्वतोरम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः । ७५	४. सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः... रक्तांशुका नववधूरिवभाति भूमिः । २१ किं किंशुकैः शुक मुखच्छविभिर्नभिन्नम् । २२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. सुखानिलोऽपं सौमित्रेकाल: गन्धवान्। १० काननद्रुमा:—वायुवेग प्रचलिता: पुष्पैरव किरन्तिमाम्। १२ सएवसुखसंस्पर्शोंभाति चन्दनशीतल:। गन्धमभ्यवहन् पुण्यं श्रमापनयनोऽनिल:। १७ एष पुष्पवहोवायु: सुखस्पर्शोहिमावह:। ५३

५. द्रूमा: स पुष्पा: पवन: सुगन्धि: २ तथा ३ आकम्पयन् कुसुमिता: सहकारशाखा: वायुर्विवाति हृदयानिहरन्नराणां नीहारपात विगमात् सुभगोवसन्ते। २४ चूतामोद सुगन्धिमन्दपवन:। ३६ मलय पवनविद्ध:। ३७

६. सुखानिलोऽयं सौमित्रेकाल: प्रचुरमन्मथ:। १० स्वनन्ति पादपाश्चेमेममानङ्ग-प्रदीपका:। २८ मन्मथायास संभूतोवसन्तगुणवर्धित:- अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रम्। ३२ संतापयति सौमित्रै कूरश्चैत्र वनानिल:। ३५ मदन्ति कामं शकुना:कामोन्मादकरा मम। ४६ मृदुभाषा च मे प्रिया नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यतिजीवितम्।

६. उच्छ्वासयन्त्य: श्लधवन्धनानिगात्राणि कन्दर्प समाकुलानि। समुत्सुका एव भवन्ति नार्य:। ९ मनांसि मेत्तुं सुरत प्रसंगिनां वसन्तयोद्धाऽयमुपागत: प्रिये। १ दृष्ट्वा प्रिये सहृदस्य भवेन्न कस्य कन्दर्प बाणपतनव्यथितं हि चेत:। २० नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं_कान्तावियोग परिखेदित चित्तवृत्तिर्दृष्ट्वाऽ ध्वग: कुसुमितान् सहकार वृक्षान्। २८

यह केवल निदर्शन मात्र है। पुष्पी वृक्षों, लताओं, पशु-पक्षियों आदि के नाम कुछ अपवादों के साथ दोनों में समान हैं। यह एक आश्चर्य की बात अवश्य है कि मत्त कोकिल की चर्चा करते हुए भी वाल्मीकि ने वसन्त के प्रसंग में सहकारका एक बार भी नामोल्लेख नहीं किया केवल वसन्त के वर्णन के अन्तर्गत एक साथ दी हुई लगभग ५० वृक्षों की सूची में चूत का नाम भर है। पद्म का विस्तृत उल्लेख दोनों में एक दर्जन बार हुआ है। दोनों ने पद्मोत्पल और नीलोत्पल में भेद किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कालिदास ने हेमन्त को 'विलीनपद्मः' किन्तु 'प्रफुल्लनीलोत्पलशोभित' कहा है। कर्णिकार, अशोक, मालती, मल्लिका, केतकी, बकुल, नीप, कोविदार, कर्णिकार कुरवक, चन्दन, सप्तपर्ण, कुटज, अर्जुन, सर्ज, कदम्ब, कुमुद, कुन्द, किंशुक की चर्चा दोनों ने की है किन्तु इनमें पद्म, नीलोत्पल, केतकी, अर्जुन, सर्ज और कदम्ब दोनों को विशेष प्रिय हैं। कालिदास को आम और चन्दन से भी विशेष अनुराग है। काशों और शालि पर भी दोनों का समान प्रेम है। कुरबक में कालिदास को रक्त कुरबक पसन्द है। पशु पक्षियों में षट्पद, मयूर, हंस, कारण्डव, कोकिल, चक्र-वाक, कौंच, सारस, गज, दोनों के विशेष स्नेहपात्र हैं। यों प्लवंगम, सर्प, बलाका, सिंह, मृग, मीन की ओर भी उनकी दृष्टि गयी है। कालिदास को मृग, मीन, मयूर और मधुकर के प्रति बहुत लगाव है। वाल्मीकि ने मृग की चर्चा बहुत कम की है। एक साम्य यह भी है कि वाल्मीकि के समान ऋतु संहार में भी 'सोत्सुकम्' और 'मनोरथानि'जैसे श्लथ प्रयोग मिलते हैं। वाल्मीकि की वर्ण्य शुद्ध प्रकृति है। वह व्यापक गहन दृष्टि और समवेदक तटस्थता के साथ उसका दर्शन और वर्णन करते हैं किन्तु कालिदास के लिये प्रकृति उनके उपभोग की उपकरणमात्र है—संभोग-विधानों की साधयित्री। फिर भी वाल्मीकि ही छाया सम्पूर्ण ऋतुसंहार पर स्पष्ट है।

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल और कुमार संभव पर कामसूत्र का प्रभाव सुविदित है। मेघदूत के उत्तरार्ध, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय पर भी उसकी छाया है। कई स्थलों पर तो शब्दावली तक थोड़े से हेर फेर के साथ ग्रहण कर ली गयी है। अतः यदि ऋतुसंहार भी उसी कवि की कृति हो, तो उसका प्रेरणा सूत्र कामसूत्र भी ऋतुसंहार में प्रत्यक्ष होना चाहिये और वह है भी। ऋतु संहार के प्रथम सर्ग में कवि ने सुवासित हर्म्यतल, सुतन्त्रि गीत, प्रिया मुखोच्छ्वास विकम्पित मधु, सदुकूल मेखल नितम्ब, हार और चन्दन से चर्चित स्तन, स्नान कषायवासित केश, लाक्षारस-राग-रंजित चरण, नूपुर, तन्वंशुक, वल्लकी और काकलि गीत आदि की चर्चा दस श्लोकों में की है। इनमें कुछ का उल्लेख कामसूत्र के प्रथम अधिकरण में चातुःषष्ठिक योगों के अन्तर्गत हुआ है। यथा-गीतम्, वाद्यम्, आलेख्यम्, विशेषकच्छेद्यम्, पुष्पास्तरणम्, दशन, वसन्ताङ्गरागः, माल्यग्रन्थविकल्पा नेपथ्य-प्रयोगाः, कर्ण पत्रभङ्गाः, गन्धयुक्ति, भूषणयोजनम्, पानक- रसरागासव योजनानि, वीणा, डमरुक वाद्यानि आदि (१-३-१५)। ऋतुसंहार के सारे श्रृङ्गार वर्णन इन के अन्तर्गत आ जाते हैं। कामसूत्र ने नागरक वृत्त सम्बन्धी अध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१-४) में नागरक के लिये जिन संविधानकों को आवश्यक बतलाया है वे ऋतु संहार के गार्हस्थिक चित्रों के उपजीव्य हैं। यथा—

तत्र भवनमासन्नोदकं वृक्ष-वाटिकावद्विभक्त कक्षं द्विवासगृहं कारयेत्-मध्ये विनतं शुक्लोत्तरछदं शयनीयंस्यात्। तत्ररात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिक-पुटिका मातुलुङ्गत्वचस्ताम्वूलानि चस्युः। नागदन्तावसक्तावीणा। स्वास्तीर्णा प्रेङ्खादोला वृक्षवाटिकायांसप्रच्छाया। स्थण्डिल पीठिका चसकुसुमा। (१-४-४)

यह तो हुई उसके शयन कक्ष की सामग्री। अब उसकी चर्या देखिये—

सप्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदन्तधावनःमात्रयानुलेपनं स्रजंचगृहीत्वा दत्वासिक्थमलक्तकंच, दृष्ट्वाऽऽदर्शे मुखं गृहीतमुखवासताम्बूलः कार्याण्यनु तिष्ठेत्। (१-४-५)

अपराह्णे गोष्ठी-विहाराः प्रदोषेसंगीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे संचारित-सुरभिधूपे ससहायस्य शय्यामभिसारिकाणांप्रतीक्षणम् (वही ९-१०) समापानकम्, उद्यानागमनम् (वही १४) अभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्। (वही १३) समान बुद्धिशीलवित्तवयसां सहवेश्याभिरनुरुपैरालापैरासन-बन्धो गोष्ठी (वही १९) परस्पर-भवनेषु चापानकानि। तत्र मधुमैरेयसुरासवान्-पाययेयुरनुपिवेयुश्च (वही २२, २३) एतेन ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम्। (वही २६)

कालिदास ने ग्रीष्म वर्णन के प्रसंग में इन सारी वस्तुओं तथा उनके उपभोग का प्रथम सर्ग में वर्णन किया है।

सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुखोच्छवासविकम्पितंमधु।
सुतन्त्रिगीतं मदनस्यदीपकं शुचौनिशीथेऽनुभवन्तिकामिनः ।।३

नितम्बबिम्बैः सकुदुकूलमेखलौः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः
शिरोरुहैः स्नान-कषायवासितैः स्त्रियोनिदाधंशयमन्तिकामिनाम्।।

नितान्त- लाक्षरस- रागरंजितै र्नितम्बिनीनांचरणैः सनूपुरैः ।।५
सबल्लकी काकलिगीतनिः स्वनैर्विबोध्यते सुप्त इवाद्यमन्मथः ।८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामसूत्र ने नागरक पुरुष के समान नारी के लिये भी इसी प्रकार के सौन्दर्य-प्रसाधनों और उपचारों का विधान किया है । चतुर्थ अधिकरण में गृहिणी या एकचारिणी के वेश की चर्चा करते हुए वात्स्यायन कहते है—

बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गरागसमुज्ज्वलंवास इत्याभिगामिकोवेष: (४-१-२४) प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमितमाभरणं सुगन्धिता नात्युल्वणमनुलेपनम् तथा शुक्लान्यन्यानिपुष्पाणीति वैहारिकोवेष: (वही २५)

वेष का वर्णन करते हुये कामसूत्र ने स्वेद से उत्पन्न दुर्गन्ध को विराग का कारण बतलाया है और उसके अपनोद के उपाय भी सुझाये हैं—

स्वेददन्तपङ्कदुर्गन्धांश्च बुध्येतेति विराग- कारणम् । ४-१-२३ और कालिदास भी इसी को लक्ष्य कर लिखते हैं—

समुद्गतस्वेदचिताङ्गसन्धयो विमुच्यवासांसिगुरुणिसाम्प्रतम् ।

स्तनेषुतन्वंशुकमुन्नतस्तनानिवेशयन्तिप्रमदा:सयौवना: ।१-७

कामसूत्र क (४-१-२५) के अनुसार ही कालिदास वर्षा के प्रसंग में भी एक-चारियों के शृंगार का वर्णन करते हैं—

कालागुरु प्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्य:

पुष्पावतंससुरभीकृत केशपाशा: ।२-२२

शिरसिवकुलमालां मालतीभि: समेतां

विकसितनवपुष्पैर्युथिका- कुड्मलैश्च

विकचनवकदम्बै:कर्णपूरंबधूनां

रचयतिजलदौघ: कान्तवत्कालएष: । २-२५

इस श्लोक का विधान का०सू० १-४-१३ के अनुसार ही है । इसी प्रकार प्रथम सर्ग का जल- यंत्र मन्दिर, सुवासित हर्म्यतल और सितहर्म्य भी नागरकगृह के प्रकरण के अनुसार है ।

कामसूत्र (२-१०-११) में कहा है कि रमणगृह में फूलों के गजरे रखे होने चाहिये, । उसे सुगन्धित धूप से वासित होना चाहिये, कलापूर्ण ढंग से सजाया जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये और पत्नी को सम्यक् स्नान एवं प्रसाधन के उपरान्त उसमें प्रवेश करना चाहिये ।—

नागरकः...कृतपुष्पोपहारे संचारितसुरभिधूपे प्रसाधिते वासगृहेकृत-स्नानप्रसाधनां युक्त्यापीतांस्त्रियं सान्त्वनैः पुनः पानेन चोपक्रमेत् । तथा—रतावसानिकंरागमतिवाह्य... ताम्बूलग्रहणमच्छीकृतं चन्दनमन्यद् चोचानुलेपनं तस्यागात्रेस्वयमेवनिवेशयेत् । २-१०-६

तथा—हर्म्यतलस्थितयोर्वाचन्द्रिकासेवनार्थमासनम् ।...तदङ्क-संलीनायाश्चन्द्रमसंपश्यन्त्यानक्षत्रपंक्तिव्यक्तीकरणम् । वही २-१०-९

कामसूत्र के अनुसार ऋतुसंहार की प्रियायें फूलों से अलंकृत और तन्वंशुक से परिहित हैं—

शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः कृतावतंसैः कुसुमैःसुगन्धिभिः ।

स्तनैः सहारैः वदनैः ससीधुभिः स्त्रियोरतिंसंजनयन्तिकामिनाम् ।

२-२०, २-२१,२-२४, २-२५ में यही बात भिन्न भंगिमाओं में कही गयी है । मालाःकदम्बनवकेसरकेतकीभिः—कर्णान्तरेषु ककुभद्रुममंजरीमिरायोजिताः—पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः— शिरसिवकुलमालांमालतीभिः समेताम्-विकचनवकदम्बैःकर्णपूरं वधूनाम्-दधति वरकुचाग्रैरुन्नतैर्हार यष्टिम्-प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः २-२५,२६ और इतनी सारी परिसज्जा के साथ नारियाँ शय्याग्रह में प्रवेश करती हैं— प्रदोषेशय्यागृहंगुरुगृहात् प्रविशन्तिनार्यः २.२२ । चतुर्थ सर्ग में भी कवि इसी बात को नकारात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है— न नितम्बविम्बेषु नवंदुकूलं तन्वंशुकंपीनपयोधरेषु । यह शब्दावलि भी कामसूत्र से कितनी मिलतीजुलती है और प्रसाधन देखिये—

गात्राणि कालीयकचर्चितानि सपत्रलेखानिमुखाम्बुजानि ।

शिरांसिकालागुरुधूपितानिकुर्वन्तिनार्यःसुरतोत्सवाय ।।

२-१०-६ में कामसूत्र ने यही बात तो कही है और रतक्रिया में इन्हीं मापदण्डों के अस्त-व्यस्त हो जाने पर पति को उनके पुनः प्रसाधन का निर्देश किया है । कामसूत्र ने आपीता को युक्ति द्वारा पुनः पान कराने की सलाह भी है । कालिदास मानों इसी का प्रायोगिक रुप प्रस्तुत करते हुये कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्पासवामोदिसुगन्धवक्त्रोनिःश्वासवातैःसुरभीकृताङ्गः ।

परस्पराङ्ग-व्यतिरिक्तशायीशेते जनःकामरसानुविद्धः ।४-११

तथा—

गृहीतताम्बूलविलेववक्त्रपनस्त्रजः सुखासवामोदितपंकजाः ।

प्रकामकालागुरुधूपवासितं विशन्तिशय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः ।५-५

उपर्युक्त श्लोक की तो शब्दावली भी कामसूत्र की अनुवर्तिनी हैं । चाँदनी भरी छत पर चन्द्र को देखने की बात जो कामसूत्र ने कही है उसका प्रयोग निम्न श्लोक में है—

सितेषु हर्म्येषु निशासुयोषितां

सुखप्रसुप्तानिमुखानिचन्द्रमाः ।

विलोक्यनूनंभृशमुत्सकश्चिरं

निशाक्षयेयाति ह्रियेवपाण्डुताम् ।१-९

तथा ज्योत्स्ना- दुकुलममलं रजनीदधाना ।४-७

कामसूत्र (२-१०-६) में पत्र रचना आदि की जो बात कही है वह भी अधोलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है—

सपत्रलेखेषु विलासिनीनांवक्त्रेषु...स्वेदागमोविस्तरतामुपैति ।६-७

तथा—

प्रियङ्गुकालीयक-कुङ्कुमाक्तं स्तनेषुगौरेषुविलासिनीनिः ।

आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ।६-१२

इतना ही नहीं कामसूत्र में इस प्रकार के प्रसाधनों के लिये प्रिया को आवश्यक वस्तुयें प्रदान करने की बात भी कही गयी है । २-३-१६ में ऐसी वस्तुओं में पटोलिका, अलक्तक, मनः शिला, हरिताल, हिङ्गुल, श्यामवर्णक, चन्दन, कुंकुम, पूगफलपत्र का नामपूर्वक उल्लेख है । ३-३-२० में विचित्र आपीड, कर्णपत्रभङ्ग, वस्त्र, अङ्गुलीयक और भूषण प्रदान करने का सुझाव दिया गया है । इस प्रसंग में पुरुष को उदारवेष रहने का परामर्श भी है । इसमें कालिदास ने स्त्रियों की उदारवेषता (ऋतुकालानुरुप प्रसाधनो) का खुल कर वर्णन जिसमें उपर्युक्त वस्तुओं का उपयोग भी सम्मिलित है, ४-२ से ५ तक किया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने दाम्पत्य संभोग वर्णनों के लिये हेमन्तकाल को सर्वोत्तम माना है यद्यपि उन्होंने प्रत्येक ऋतु में विलास के लिये उपयुक्त काल और स्थान ढूँढ लिया है और उनमें कहीं न कहीं से मन में पर्युत्सुकत्व जगाने वाले तत्त्व खोज लिये हैं तो भी सुरत-संभोग के लिये उन्होंने हेमन्त को विशेष रुप से चुना है और इस काल में युवा-युवतियों की सुरतान्तस्थिति का खुलकर वर्णन किया है। इसमें निद्रालस अंगों के विभ्रम, मदालस वाक्य और भूक्षेपजिह्मवीक्षित (६-११) श्लथित बन्धन युक्त गात्रों का उच्छ्वासन (६-८), स्तनपरिखेद से मन्दगमन और सुरतवेश को बदलकर दिवस योग्य वेश का धारण सभी कुछ आ गया है। इसका बहुत कुछ इंगिताकार- सूचन अध्याय (३-३) के अनुसार है— वीक्षिता व्रीडांदर्शयति। रुच्यमात्मनो ऽङ्गमपदेशेनप्रकाशयति— अनलंकृता दर्शन- पथंपरिहरति। कर्णपत्रमङ्गुलीयकं स्रजंवा... तेनचदत्तं नित्यंधारयति। आदि— कामसूत्र ३-३-२४ से ३०।

ऋतुसंहार के चतुर्थ सर्ग में संभोग चिह्नों का खुलकर वर्णन किया गया है। हेमन्तकाल में नववधुयें जब शय्यागृह छोड़कर खुले एकान्त में बैठती हैं तो उनके कटे हुये ओठों और खुरेचों से युक्त स्तनों को देखकर साफ पता चलता है कि इनके यौवन का निर्दयता के साथ उपभोग किया गया है। कोई स्त्री सवेरे सबेरे दर्पण हाथ में लेकर जब अपने मुख का श्रृंगार करती है तो बार-बार अपने कटे हुये ओठों को खींच खींच कर देखती है, इस सन्तोष के साथ कि उसके प्रियतम ने उनके मधुर रस का पान किया है—

दन्तच्छदैः सव्रणदन्तचिह्नैःस्तनैश्चपाण्यग्रकृताभिलेखैः।

संसूच्यते निर्दयमङ्गनानां रतोपभोगोनवयौवनानाम् ।४-१२

तथा—

काचिद् विभूषयतिदर्पण सक्तहस्ताबालातपेषुवनितावदनारविन्दम्।

दन्तच्छदंप्रियतमेननिपीतसारंदन्ताग्रभिन्नमवकृष्यनिरीक्षतेच ।।४-१

तथा—

नखपदचितभागान्वीक्षमाणाःस्तना-

ग्रानधरकिसलयाग्रंदन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमतरसमेतं नन्दयन्त्यस्तरुण्यः
सवितुरुदयकालेभूषयन्त्याननानि ।५-१५

इस प्रकार के उद्दाम संभोग के वर्णनों से युक्त अन्य भी बहुत से श्लोकों पर कामसूत्र का स्पष्ट प्रभाव है । कामसूत्र ने कहा है—कुसुम सधर्माणोहि योषितः सुकुमारोपक्रमाः । ३-२-६ । पर्याप्त विश्वास का अधिगम होने पर ही उनके साथ खुलकर रमण संभव है—उत्पन्न विस्रम्भयोश्चपरस्परानुकूल्यादनियन्त्रितरतम् । २-१-२६ । और ऋतुसंहार जिस सुरत के चित्र उपस्थित करता है वे मध्या वधू से सम्बन्धित हैं, मुग्धा से नहीं । ऋतुसंहार की कामिनियाँ स्वकीयाऊढ़ा हैं और स्वयं संभोग में रस लेती है । उन्हें नख-दन्तपदचिह्नों से प्यार है । पूरी तैयारी के साथ वे शय्यागृह में प्रवेश करती हैं । उनके सारे संभोगजचिह्न कामसूत्र (२-२-४) में बतलाये हुये आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेद्य, दशनच्छेद्य से सम्बन्धित हैं जो चतुःषष्ठि संप्रयोगों का ही एक भाग है । कामसूत्र ने आठ प्रकार के उपगूहनों, ललाट, अलक, कपोल, नयन, वक्षस, स्तन, ओष्ठ और अन्तर्मुख में चुम्बनों और राग की अत्यधिक वृद्धि में नखविलेखनों का उल्लेख किया है— रागवृद्धौसंघर्षात्मकं नखविलेखनम् । २-४-११ । तत्रदशन च्छेद्यस्थ सात्म्यवशाद्वा ।२-४-३ अर्थात् दशनच्छेद्य राग की उतनी अभिवृद्धि में होता है जब दोनों में परस्पर एकात्मता की प्रतीति होने लगे । कामसूत्र में नखविलेखन के आठ प्रकारों का निर्देश किया है और उनका स्थान, कक्ष, स्तन, गल, पृष्ठ, जघन और ऊरु बतलाया है । ऐसा कहकर उसने सुवर्णनाभ का मत भी उद्धृत किया है कि रतिचक्र के प्रारम्भ हो जाने पर स्थान और अस्थान का भान नहीं रह जाता— प्रवृत्त- रतिचक्राणां न स्थानमस्थानं वा विद्यत इतिसुवर्णनाभः ।२-४-६ । दशनच्छेद्य के स्थान उत्तरौष्ठ, अन्तर्मुख और नयन को छोड़कर वही है जो नखच्छेद्य का है । उसने उसके गूढक, उच्छूनक, बिन्दु विन्दुमाला, प्रवाल मणि, मणिमाला, खण्डाभ्रक और वराह- चर्वितक ये आठ प्रकार भी गिनाये हैं । इनमें ऋतुसंहार में नखपदचित- भाग वाले स्तनाग्रों और दन्तभिन्न अधरोष्ठों की चर्चा बार-बार हुई है । दन्तच्छदों के दन्तक्षत होने और स्तनों के पाण्यग्रकृन्ताभि लेखवान् होने में ऋतुसंहारकार को अधिक रस मिला है । इसी प्रकार कामसूत्र द्वारा निर्दिष्ट चार प्रकार के आलिगनों में ऋतुसंहार तिल- तण्डुल और क्षीरजलक जिन्हें सुवर्णनाभस्तनालिङ्गन कहते हैं, प्रयुक्त हुये हैं । कामसूत्र इसकी परिभाषा देता हुआ कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शयनगतावेवोरुव्यत्यासंभुजव्यत्यासंच ससंघर्षमिवघनं संस्वजेते- तत्तिल तण्डुलकम्। रागान्धावनपेक्षितात्ययौपरस्परमनुविशतइवोत्संगगतायाम भिमुखोपविष्टायां शयने वेतिक्षीरजलकम्। २-२-१८, १९। ऋतुसंहार इसी के अनुसार चित्र देता है—

अपगतमदरागा योषिदेकाप्रभाते

कृत निविडकुचाग्रा पत्युरालिङ्गनेन।- ५-११

तथा—

विलासिनीभिः परिपीडितोरसःस्वपन्तिशीतंपरिभूयकामिनः।५-९

तथा—

पीनस्तनोरःस्थलभागशोभामासाद्यतत्पीडनजातखेदः।४-७

और चुम्बन की विधि में ऋतुसंहार का पुंस्कोकिल तक विदग्ध है—

पुंस्कोकिल श्चूतरसासवेनमत्तः प्रियां चुम्बतिरागहृष्टः।६-१४

और इस प्रकार सम्पूर्ण ऋतुसंहार पर कामसूत्र की मादक छाया स्पष्ट देखी जा सकती है।

अब आइये अन्तरङ्ग साम्य की दृष्टि से विचार करें। एक ही कवि की विभिन्न रचनाओं में दृष्टि, रस के उत्सों और शब्दावली की समानता का मिलना स्वाभाविक है। प्रत्येक कवि की अपनी स्वतन्त्र सौन्दर्य दृष्टि होती है और आकर्षण की वस्तु का वर्णन करने की अपनी निजी शैली। नारी के आँख, कान, नाक, अधर, केश, वक्ष, कटि, चरण आदि पर संस्कृत कवियों की दृष्टि देर तक टिकी है। इन्हें वर्णित करने के लिये प्रायः कवियों ने उपमान भी एक से चुने हैं। फिर भी सबके कथन में अपना निजीपन है। कालिदास जिस सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं वह उनका अपना है। इसलिये वह जब भी उक्त अंगों का वर्णन करते हैं तो उनके सम्मुख अपना आदर्श चित्र या बिम्ब रहता है। चाहे कुमारसंभव हो या मेघदूत और रघुवंश, उनके वर्णन इस बिम्ब को आधार बनाकर ही व्यक्त होंगे और यदि ऋतु संहार के ये बिम्ब अन्य ग्रन्थों में भी मिल जाते हैं तो मानना पडेगा कि ऋतुसंहार भी कालिदास की ही रचना है। नीचे हम उनके द्वारा वर्णित, आंगिक सौन्दर्य के कुछ तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ अनावश्यक विस्तार से बचने के लिये उनकी काव्य- रचनायें ही चुनी गयी हैं, रुपक जानबूझ कर छोड़ दिये गये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केश

ऋ० सं०	अन्य काव्य
शिरोरुहैःस्नानकषायवासितैः १-४ शिरांसि कालागुरुधूपितानि । ४-५ वदनबिम्बैरंससंसक्तकेशैः । ५-१३ शिरोरुहैःश्रोणितटाव- लम्बिभिः २ ।१८ पुष्पावतंससुरभीकृत केशपाशाः । २-२२ शिरसिबकुलमालां-यूथिका- कुड्मलैश्च २.२५	**मेघदूत** उपचितवपुः केशसंस्कार धूपैः ।पृ० ३२ अलक- पतितैः मन्दारपुष्पैः उत्तर९ मुक्ताजालग्रथितमलकम् पू० ६३ अलके बालकुन्दानुबिद्धम् ।उ०-२ लम्बालकत्वात् ।उ०-२१ रूद्धापाङ्गप्रसरमलकैः- उ०-३२ ३-६२नीलालकमध्यशोभिनबकर्णि कारम् कुमार०संभव आकुलालकमरंस्त । ८-८८
केशानापूरयन्ति वनितानव मालितीभिः ३-९ । स्रस्तांसदेशलुलितालककेश पाशा । ४-१५ निवेशितान्तःकुसुमैःशिरोरुहैः ५-१८ चलेषुनीलेष्वलकेष्वशोकम् ।६-६ अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशम् ५-१२ मालाः कदम्बन-वकेसरकेतकीभिः रायोजिताः शिरसि विभ्रतियोषितोऽद्य । २-२१	तं केशपांशं प्रसमीक्ष्य... चमर्यः १-४८ रघुवंश अगुरुधूमगन्धिभिः । १९-४१ युवतयःकुसुमं दधुराहि- तंतदलके । ९-४० कुसुमोपचितान् तवालकान् । ८-५३ धूमश्यानके- शान्तम् ।१७-२२उद्बन्ध-केशच्युत- पत्रलेखः ।१६-६७ स्नानार्द्रमुक्तेष्व- नुधूप- वासम् । १६-५० तदलके दरके- सरपेशलम् । ९-४० **कुमार०** धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावंकेशान्त मन्तः कुसुमम् । ७-१४ **मेघ०** परुषमलकमनूनमागण्ड मारम्- उ०२८

केशों के उक्त वर्णनों में उनका अगुरु, धूप और कषाय से सुगन्धित होना, उनमें पुष्प गुँथे होना, उनका कन्धों पर बिखरा होना और दीर्घ होकर नितम्बों तक लटकना ये चार ही बातें सब ग्रन्थों में समान रुप से मिलती हैं । मेघ० और कुमार०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यक्षी और पार्वती के केश उलझे और परुष भी बतलाये गये हैं जो वियोग और तप के कारण हैं। ऋतु० में वैसी परिस्थिति नहीं है। अलक, केश, केशपाश और शिरोरुह प्राय: ये चार ही शब्द सब काव्यों में केशों के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

नेत्र और वीक्षण

ऋतुसंहार

सविभ्रमैःसस्मितजिह्मवीक्षितैः १-१२ विलोचनेन्दीवरवारिमोचितैः।२-१० रात्रिप्रजागारविपाटलनेत्रपद्मम्। ४-१५ अभ्यंजनंविदधतिप्रमदाः। ४-१७ सपत्रलेखेषुविलासिनीनांवक्त्रेषु हेमान्वु रुहोयमेषु ६-८ भ्रूक्षेपजिह्मानि चवीक्षितानि। ६-१३ व्यालम्बिनीललितालककुंचिताक्षी ४-१७ फुल्लनीलोत्पलाक्षी। ३-२८

अन्य काव्य

मेघ०-
पौराङ्गनानांचकितैर्लोलापाङ्गैः पू० २७ शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः। पू० २२ मधुकर -श्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्। पू०-३५ चकित-हरिणी प्रेक्षणा।२-१९ अंजनस्नेहशून्यम्। २-३२
कुमार. प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीर विप्रेक्षित मायताक्ष्याः।१-४७ पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि ३-२८ सप्रजागर- कषायलोचनम्।८-८८ अधीर विप्रेक्षितमायताक्ष्याः। १-४६ विलोलदृष्टंहरिणाङ्गनासुच। ५-१३ हरिणाः- पुरः सखीनाममिमीतलोचने। ५-१५ विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य। ७-५९ **रघु०** सेकहृत लोचनाञ्जनै। १८-१० पृषतीषुविलोलमीक्षितम्। ८-५९

नेत्रों के वर्णन में ऋतु संहार उनके जिह्म, सस्मित और सविभ्रम वीक्षित का बर्णन करता है, इन्दीवर और स्वर्ण कमल से उपमा देता है। रात्रि जागरण के कारण उनके विपाटल होने का और अंजनरंजित होने का उल्लेख करता है वहाँ अन्य काव्य भी चकित, आघूर्णित, अधीर, विलोल तथा दीर्घकटाक्षयुक्त वीक्षण की चर्चा करते हैं। ऋतुसंहार उनके प्रजागर- विपाटल होने की बात कहता है तो रघु वंश प्रजागरकषाय होने की। अंजन की चर्चा उभयत्र है। कुमार० का उद्देश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती-सौन्दर्य का वर्णन था इसलिये स्वभावत: उसके वर्णनों में कल्पनाधिक्य है । फिर भी इन सब ग्रन्थों में उक्ति एवं दृष्टि के साम्य को कौन नकार सकता है ?

कर्ण

ऋतुसंहार	अन्य काव्य
मणिकुण्डलोज्वला: । २-२ कर्णान्तरेषुककुभद्रुममंजरीभिरिच्छा नुकूलरचितानवतंसकांश्च । २-२० विकचनवकदम्बै: कर्णपूरं वधूनां रचयति । २-२४ कर्णेषुचप्रवरकांचनकुण्डलेषुनीलोत्प-लानिविविधानिनिवेशयन्ति । ३-१९ कर्णेनवकार्णिकारम् । ६-६	**मेघ०** रुजाक्लान्तकर्णोत्पलानांपुष्पलावी मुखानाम् पू० २६ चारुकर्णे शिरीषम् । उ० २ पत्रच्छेदै: कनककमलै: कर्णविभ्रंशिभि: । उ० ९ **कुमार०** कर्णच्युतपल्लवेन । ३-६२ कर्णात् शिरीषपुष्पंसहसापपात । १६-४८

ऋतुसंहार तथा अन्य तीनों काव्यों में कर्ण में कुसुम- मंजरी, नवकदम्ब, नील-उत्पल, कुवलय, शिरीष आदि के पुष्प पहनने का उल्लेख है । ऋतु० मणिजड़े कांचन कुण्डल पहनने की प्रथा की ओर भी संकेत करता है । कवि को कर्ण शब्द ही प्रिय है । हाँ कुमार० में पुत्र के प्रति स्नेह प्रकट करने के लिये पार्वती मयूरपंख भी कान में खोंसती है ।

ओष्ठ

ऋतुसंहार	अन्य काव्य
चारुताम्राधरोष्ठै: । -५-१३ दन्तच्छदै: सव्रणदन्तचिह्नै: । ४-१३ प्रपीड्यमानानधरानवेक्ष्य । ४-६ दन्तच्छदंप्रियतमेननिपीतसारम् । ४-१४ अधरकिसलयाग्रंदन्तभिन्नंस्पृशन्त्य: ५-१४ दशनाग्रभिन्नानधरानवेक्ष्य । प्रपीड्यमानान् ४-६	**मेघ०** नि:श्वासानामशिशिरतयाभिन्नवर्णाध रोष्ठम् उ० ११ चारुबिम्बाधरोष्ठी । उ० १९ **कुमार०** दंष्टमुक्तमधरोष्ठ-मम्बिका । ८-१८ यन्मुखग्रहणमक्षता-धरंदानमत्र णपदं नखस्ययत् । ८-९ गाढदन्तपरिताडिताधरम् । ८-८८ **रघु०** ब्रणगुरुप्रमदाधरदु:सहम्- ९-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधर का उपयोग इन सभी काव्यों में दंशन और पान में ही है। ऋतुः में फिर भी उसे ताम्रचारु और किसलराग कहा है। कथन शैली सर्वत्र समान है।

स्तन

ऋतु०

स्तनैःसहाराभरणैःसचन्दनैः ।१-४ पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुषारगौरार्पितहारशेखराः १-६ स्तनेषुतन्वंशुकमुन्नतस्तनाः प्रमदाःसयौवनाः । १-७ सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः । १-८ स्तनैःसहारैः । २-१८ दधतिवर कुचाग्रैर्हारयष्टिम् ।२-२६ हारैः सचन्द-नरसैःस्तनमण्डलानि ।३-२० पीनोन्नतस्तनभरानतगात्रयष्ट्यः ।४-१६ मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तनाः५-९ पयोधरैः कुंकुमरागपिंजरैः ५-९ स्तनभरपरिखेदान्मन्दमन्दंवदन्त्यः । ५-१४ स्तनंसहासं कुसुमैर्मनोहरैः । ६-३ विभूषयन्ति-तन्वंशुकैः कुंकुमराग- गौरै स्तनमण्डलानि ६-५ स्तनेषुहाराः । ६-७ प्रियङ्गुकालीयक-कुङ्कुमाक्तंस्तनेषुगौरेषुविलासिनीभिः आलिप्यतेचन्दनमङ्गनाभिः ६-१२ आलम्बिहेमरसनाः स्तनसक्तहाराः ६.२४ नखपदचितभागान्वीक्षमाणाः

स्तनाग्रान् ५-१४

स्तनैश्चपाण्यग्रकृताभिलेखैः ।१४-१३ हारैः स्तनशालिनीनांनालंक्रियन्तेस्तन-मण्डलानि । ४-२

अन्य काव्य

मेघ०- स्तोकनम्रास्तनाभ्याम्। १-१९

कुमार० दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः । १-११ आवर्जिताकिंचिदिवस्तनाभ्याम्। ३-५४ स्तनबन्धुरस्यमुक्ताकलापस्य ।१-४२ स्तनद्वयंपाण्डुतथा प्रबृद्धम् ।१-४०

रघु० स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्रा। १३-३२ यौवनोन्नतविलासिनीस्तनः। १९-९ पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम्। १९-३२ पयोधरनिषिक्तचन्दनैः। १९-४५ स्तनोत्तरीयाणिभवन्ति सङ्गान्निर्मोकपट्टाः । १६-१७ अवरोधस्तनचन्दनम्। ८-४३ स्तनेषु सूत्रेण विनैवहाराः ८-२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों काव्यों में स्तन चन्दन और हार से मण्डित हैं। वे तन्वशुक, मनोज्ञ, कूर्पासक या उत्तरीय से परिहित भी हैं। मनोहर कुसुमों, कुंकुमराग, प्रियगुकालीयक आदि के लेप और मुक्ताकलाप आदि उनकी शोभा बढाते हैं। पीनोन्नत स्तनों के भार से युवतियाँ झुककर चलती हैं। यौवकाल में वे इतने बढ़ जाते हैं कि उनके बीच में मृणाल तन्तुका निकलना तक कठिन होता है। विलासिनियों के स्तन नख क्षतों से भरे रहते हैं। इन सब काव्यों में स्तनों के स्मरण के साथ कवि के मन में उन पर किये गये चन्दनादि के सुगन्धित लेप और कुसुम, हेमया मुक्ताओ के हार की छवि उभर आती है।

मध्यदेश

ऋतु

नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः १-४ नितम्बदेशाश्चसहेममेखलाः। १-६ उद्गतारोमराजिम्, प्रतनुसित दुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः, ललितवलित्रिभङ्गैर्मध्यदेशैश्चनार्यः २-२५ श्रोणीतटंसुविपुलंरशनाकलापैः। ३-२०

गुरुनितम्बा, निम्नमनाभिः सुमध्या। ५-१२ सुरागकौशेयभूषितोरवः। ५-८ पृथुजघनभरार्ताः किंचिदानम्रमध्याः ५-१४ कुसुम्भरागारुणितैर्दुकुलैर्नित म्बबिम्बानिविलासिनीनाम् ।६-५ जघनेषु कांच्यः। विलासिनीभिः परिपीडितोरवः स्वपन्ति ।६-७

मेघ० विहगश्रेणिकांचीगुणायाः। १-२८ दर्शितावर्तनाभेः। १-२८ नीलंसलिलवसनंमुक्तरोधोनितम्बम् १-४१ मध्येक्षामा-निम्ननाभिः। १-१९ क्षोणीभारादलसगमना। वही

कुमार० दुर्बहश्रोणिपयोधरार्ताः १-११ नागेन्द्रहस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेका न्तशैत्यात्कदलीविशेषाः। लब्ध्वा ऽपिलोकेपरिणाहिरुपंजातास्तदूर्वो रुपमानवाह्याः ।१-३६ तन्वीनवलो-मराजिः ।१-३८ वलित्रयंचारु-वभार वाला ।१-३९ नितम्बादव-लम्बमानाकेसरदामकाञ्ची ३-५५ वासोवसानातरुणार्कणगम्। ३-५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५-९ भ्रमन्तिमन्दंश्रमखेदितोरवः क्षपावसाने । ५-७
कांचीगुणैर्भूषयन्तिप्रमदानितम्बान् ४-४

एतावतानन्वनुमेयशोभिकाञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः ३७
वृत्तानुपुर्वेनचनातिदीर्घे जङ्घे । १-३५ तपनीयमेखला-
मुद्वहज्जघनभारदुर्वहाम् । ८-८१
ऊरुमूलनखमार्गराजिभिः । ८-८७

रघु०
नखपदाङ्कितोरवः १९-३५
श्रोणिलम्बमणिमेखलैः १९-४५
माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् । ८-४३
गुरु श्रोणिपयोधरत्वात् । १६-६०
मौनंभजन्तेरशनाकलापाः १६-६५

मध्यदेश के अन्तर्गत कवियों ने नाभि, नाभिसमीपवर्तिनी रोम राजि, त्रिवलि कटि, ऊरु और जंघाओं का वर्णन किया है। नितम्बया श्रोणि उनके आकर्षण के विषय रहे हैं। नितम्बों पर प्रतनुसित दुकूल, सराग कौशेयक, या कुसुम्भी रंग की साड़ी की ओर ऋतुसंहार की दृष्टि बार-बार गयी है। दुकूल के साथ कटि में पहनी हुई मेखला को वह कभी नहीं भूला। मेखला कांची यारशनादाम अत्यन्त आवश्यक आभूषण है। अन्य तीनों काव्यों में भी इसका पुनः पुनः उल्लेख है। कुमार० तपनीय की और रघु० मणियों की मेखला का उल्लेख करता है। हेममेखला से विरहित कटि की कल्पना चारों में एक भी काव्य नहीं करता। कुमारसंभव तो कांचीगुणस्थान और कटि को पर्याय ही मानता है। इन रशनाओं या मेखलाओं में घुँघरु भी लगे होते थे जो गति और रति की बेला में बजते थे। रघुवंश में (मौनंमजन्ते रशना कलापाः) से इसी ओर संकेत किया है। रशनाध्वनि हंस गति के सदृश बतलायी गयी है (३-२६) रोमराजित्रिवलि की संगिनी और यौवनोद्गम की द्योतक है। ऋतु० में इसीलिये उसके लिये "उद्गत" विशेषण का प्रयोग किया है। कुमार० इसी कारण उसे तन्वी कहता है। बलित्रय या त्रिवली की चर्चा ऋतु० और कुमार० में सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में हुई है। नितम्ब या श्रोणि का भारीपन उस युग में सौन्दर्य का अंग माना जाता था। सभी काव्यों में उनके दुर्वहत्व की ओर संकेत किया है। नाभि का गहरा होना और कटि का क्षीण होना सभी काव्यों को प्रिय है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्येक्षामना, उरुओं की वृत्तानुपूर्वता, और जंघाओं की अनतिदीर्घता की चर्चा कुमारसंभव में है। उरु नखक्षत के स्थान माने जाते हैं। कामसूत्र ने भी ऐसा कहा है। इस प्रकार मध्यप्रदेश का वर्णन इन चारों काव्यों में लगभग एक जैसा है। यहाँ तक कि इन वर्णनों की शब्दावली तक समान है।

ऋतु० ने भुजाओं में वलय एवं अंगद (६-७) तथा (४-३) और शरीर पर माल्य, आभरण, तथा अनुलेपन (२-१२) का उल्लेख किया है। उसने मुख को सुरा-सुरभित-वदनैः ससीधुभिः (२-१२), पुष्पासवामोदसुगन्धि (४-१२) और सपत्र- लेख कहा है—गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः पुष्पासवामोदित- वक्त्रपद्मा (५-५) हैं। "सुगन्धिनिःश्वासविकम्पतोत्पलंकामिभिःसहस्त्रियः पिवन्ति मद्यंमदनीयमुत्तमम्" से स्त्रियों का पतियों के साथ मद्यपान की चर्चा करता है। मद्य के पश्चात्सुरतोत्सव में डूबे पति-पत्नियों के अंगों व देह का वर्णन भी ऋतुसंहार ने किया है— समुद्गतस्वेदचिताङ्गसन्धयः (१-७) कालागुरुप्रचुरचन्दन-चर्चिताङ्ग्यः (२-२१), परस्पराङ्गव्यतिषङ्गशायी (४-१२), प्रकाम- सुरत- श्रम- खिन्नदेहाः (४-१५), उच्छ्वासयन्त्यः श्लथबन्धनानिगात्राणि (६-९), कन्दर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्टयः (६-२६) एवं दर्पणसक्तहस्ता (४-१४) प्रियतम- परिभुक्तंवीक्षमाणास्वदेहम् (५-११) इन उद्धरणों से शरीर के अलंकृत और सुरत- श्रान्त होने की सूचना मिलती है। कुमारसंभव भी प्रिया के साथ एक ही पात्र में मधुपान की बात कहता है (३-२६), खिन्नहस्तसदयोपगूहन (८-८) और दर्पण में परिभोगदर्शन (८-११) का वर्णन करता है जो ऋतु० के पूर्व सर्ग से मिलता-जुलता है। रघुवंश घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीपानभूमिरचना (१९-११) की चर्चा करता है। मेघदूत में प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितों की अंगग्लानि का सरस वर्णन है। (उ० ७)

चरणों का भी रुपाङ्कन चारों काव्यों में समान है। ऋतुसंहार की नारी के चरण नितान्त लाक्षारसरंजित, सनूपुर और हंसरुतानुकारी (१-५) हैं तो मेघदूत की पादन्यासक्वणितरशना (पृ० ३५) हैं। जहाँ जहाँ चरण रखती है, वह स्थान उसके पादराग से अङ्कित हो जाता है (पृ० ३२) मेघ० भी चरणकमल न्यास योग्य लाक्षाराग का उल्लेख (उ० ११) करता है। पार्वती के चरण पद्मराग के समान रक्त हैं और शिलायें उसके चरण राग से अंकित (८-२३ तथा २९)। हंस उसके नूपुर शिंजितों की ताल पर नाचते हैं (१-३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु० के ग्रीष्म सर्ग में 'विचित्रं जलयन्त्र मन्दिरम्' (१-२) के ग्रीष्मशामक के रुप में सेवन का उल्लेख है तो रघुवंश भी इस क्रिया के लिये 'यन्त्रप्रवाह से युक्त शिशिर धारा गृहों' (१६-४९) के उपयोग की चर्चा करता है। और मेघदूत भी यन्त्र धारागृह की चर्चा (पृ० ६१) करना नहीं भूलता। ऋतु० प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितमधु (१-३) को कामोद्दीप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन मानता है तो कुमार० (४-१२) भी 'वारुणीमदः प्रमदानामधुनाविडम्बना' कहकर उसे उतना ही महत्त्व देता है। रघु० (९-७) शशिप्रतिमाभरणं मधु— की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। उसकी नारियाँ यदि' सुखासवामोदित वक्त्रपङ्कजाः (५-५) हैं तो शिव की बारात को देखने आने वाली हिमवान् के हर्म्य की स्त्रियाँ भी आसवगन्धगर्भमुखवाली (कुमार० ७-६२) हैं। कुसुम प्रसाधन के वर्णन से जैसे ऋतु० भरा पडा है वैसे ही मेघ० (उ० २) और कुमार० (४-१८) ध्रियते कुसुमप्रसाधनं तवतच्चारूवपुर्न दृश्यते। मेघ० नितान्त लाक्षारसराग रंजित (१-५) ऋतु० 'सव्रणदन्तचिह्नदन्तद्वद्वदो' (४-१३) और प्रियतमनिपीतसार अधरों (४-१४) और पाण्यग्रकृताभिलेख स्तनों (४-१३) की बात करता है तो कुमार० भी दंष्टमुक्तअधरोष्ठ (८-८), गाढदन्तपरिपाटिताधर (८-८) की और रघु० स्वेदानुविद्धार्द्रनख कपोल (१६-४८) और व्रणगुरुप्रमदाधर-दुःसहरमण (९-३२) की एवं प्रणयदत्तार्द्रनखक्षत (९-३१) की भी। एक यह भी कि ऋतु० और कुमारसंभव दोनों की नारी नखक्षतों और दन्तक्षतों से पीड़ित होकर भी उन क्षतों के लिये गर्वित और आनन्दित हैं और दोनों दर्पण हाथ में लेकर प्रसन्न मुद्रा में रत-चिह्नों को देखती हैं।

ऋतुसंहार (४-१४) दर्पणसक्तहस्ता दन्ताग्र- भिन्नमवकृष्य निरीक्षते च। कुमारसंभव (८-११) दर्पणे च परिभोगदर्शिनी और रघुवंश (१९-२१,२८) प्रातरात्मपरिभोग दर्शिना दर्शनिनकृत- खण्डनव्यथः तथा दर्पणेषुपरिभोगदर्शिनीः। एवं ऋतु० (४-१६)— अन्याप्रियेणपरिभुक्त मवेक्ष्यगात्रं हर्षान्विता। इन उक्तियों को साथ मिलाकर पढ़ने से न केवल भाव का, अपितु शब्दों का साम्य तक स्पष्ट हो जाता है। मजे की बात यह कि ऋतुसंहार तथा रघुवंश दोनों ने उद्दाम रतिवर्णनों के लिये एक ही ऋतु चुनी है।

सर्वसुरतान्तरक्षमाःसाक्षितां शिशिर- रात्रयो ययुः। रघु० १९-४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास को कुछ वस्तुओं से बहुत लगाव है। जहाँ भी प्रसंग आ जाता है वे उनका उल्लेख करने से नहीं चूकते। इनमें चाँदनी भरी रात— निशाः शशाङ्कक्षतनीलराजयः (ऋतु० १-२), मधुमय, वीणासंगीत, सुवासित केशपाश, सहारस्तन, अलक्तकमण्डित चरण, तन्वंशुक, नर्तित मयूर, कुश चबाते हुए हरिण, घनान्धकारीकृत शर्वरी में अभिसारिकायें, श्रुतिहारिनिः स्वन वाले भृङ्ग, वापी या दीर्घिका और पुंस्कोकिल। जहाँ ये वस्तुयें बार-बार सामने आयें, वहाँ किसी न किसी रुप में कालिदास को उपस्थित देखा जा सकता है और इस रुप में उनकी उपस्थिति इस चारों काव्यों में समान रुप से है।

ऋतुसंहार तथा अन्य काव्यों में समान अभिव्यक्तियाँ किसी भी पाठक का ध्यान उनके समान- कर्तृक होने की ओर आकृष्ट करें, यह स्वाभाविक है। नीचे कुछ ऐसे ही उक्तिसाम्य प्रस्तुत किये जाते हैं—

१. चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलोयन्मधुरंचुकूज। कुमार० ३-३२

तथा—पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियांचुम्बतिरागहृष्टः। ऋतु० ६-१६

२. मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रेपपौप्रियां स्वामनुवर्तमानः। कुमार० ३-३६

कूजद्द्विरेफोऽ प्ययम म्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोतिचाटु। ऋतु० ६-१६

३. कोकिलां मधुरालाप- निसर्गपण्डिताम्। कुमार० ४-१६

४. प्रफुल्लकाशावसुधेवरेजे। कु० ७-११

काशैर्मही... तथा काशांशुका शरन्नववधूरिवरुपरम्या। (ऋतु- ३-१,२)

५. हंसश्रेणीषु तारासुकुमुदवत्सुचवारिषु। रघु० ४-१९

शिशिरदीधितिनारजन्यो हंसैर्जलानिसरितां कुमुदैः सरांसि। ऋतु० ३-२

६. कुसुम- जन्म ततोनवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्। रघु० ९-२६

पुंस्कोकिलो कलवचोभिरुपात्तहर्षैः कूजद्भिरुन्मदकलानिवचां सिभृङ्गैः। ऋतु ६-२१

७. स्तनद्वयंचारुतथा प्रबृद्धम्— मध्ये यथा श्याममुखस्यतस्य कु० १-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदीयमानीलमुखंस्तनद्वयम् । रघु० ३-८

क्वचित् सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितंव्योमघनैः समन्ततः । ऋतु० २-२

८. गच्छन्तीनांरमणवसतिं... सौदामिन्या कनकनिकषस्निधया दर्शयोर्वीम् ।

निशासुभास्वत्कलनूपुराणां यः संचरो भूदभिसारिकाणाम् ।

नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः सवाह्यतेराजपथः शिवाभिः । रघु० १६-१२

तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्तिरागादभिसारिकाःस्त्रियः । ऋतु० २-१०

ये कुछ निदर्शनमात्र हैं (ऐसे उक्ति- साम्य के बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं— मेघदूत, कुमारसंभव, रघुवंश और ऋतुसंहार में वर्णित पशु, पक्षी, वृक्ष और लतादि प्रायः समान हैं और उनका वर्णन भी समान विशेषतायें बतलाते हुए किया गया है । ऋतुवर्णन के अपने सम्पादित संस्करण के परिशिष्ट मैं मैंने ऐसे वृक्षों और पशु पक्षियों की सूची दी है । शरभ ऋतु० (१-२३) और मेघदूत (१-५४) दोनों में अपने वैशिष्ट्य के साथ विद्यमान है । बराहकुल परिशुष्क कर्दमवाले सर में अपने पोत्र से खोद खोद कर भद्रमुस्त की जडें खा रहा है— सभद्रमुस्तं परिशुष्क- कर्दमंसरः खन्नायतपोत्र मण्डलैः- रवेर्मयूखैः परितापितो भृशंबराहयूथो विशतीवभूतलम् (ऋतु० १-१७) । कालिदास को दिलीप के वन में प्रवेश करने पर भी पहलेउसीकेदर्शन होते हैं— सपल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि-ययौश्यामायमानानिवनानिपश्यन् (रघु० २-१७) और शाकुन्तल में उसके सुखक्षेम की कल्पना की गयी है— विस्रब्धंक्रियतां बराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिःपल्वले । (२-६) । शाकुन्तल के मृगयामृग का वर्णन भी ऋतुसंहार में दवाग्निभीत भागते मृगों की छाया लिये है और महिषीकुल की जो पीडा ऋतुसंहार में कवि ने देखी है— सफेनलोलायतवक्त्रसंपुटं००० महिषीकुलम् (१-२१) उसी की शान्ति के लिये शाकुन्तल में कामना की है— गाहन्तां महिषानिपानसलिलंश्रृङ्गैर्मुहुस्ताडितम् । (२-६) । विन्ध्य में लगी अग्नि का प्रभाव कवि के मन पर इतना गहरा पड़ गया था कि उसे वनों को देखकर पहले दवाग्नि का ही स्मरण आता था । मेघदूत में हिमालय-प्रवेश के साथ ही उसके सम्मुख दवाग्नि का चित्र हरा हो उठा— तंचेद्वायौसरतिसरलस्कन्धसंघट्टजन्मा-वाधेतोल्काक्षपित- चमरीवालभारो दवाग्निः (१- ५३) और रघुवंश में भी दिलीप के वनप्रवेश के साथ ही उसे दवाग्नि का स्मरण हो आता है और दोनों स्थानों पर वह उसके शमन की कामना करता है— अर्हस्येनंशमयितुमलंवारिधारासहस्रैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मेघ० १- ५३) और रघुवंश में भी—शशामवृष्ट्यापिबिनादवाग्नि: । (२-१४) और ऋतु० में तो उसने इसके लिये कहा ही था— अतिशयपरुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिखाभि: समुपजनिततापंह्लादयन्तीवविन्ध्यम् (२-२७)

ये सारे तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि ऋतुसंहार का रचयिता वही कवि है जिसकी लेखनी ने जगत् को मेघदूत, कुमारसंभव एवं रघुवंश जैसे प्रौढ़ काव्यों का अवदान किया है । यह बात दूसरी है कि यह उसके यौवनारम्भकाल की रचना हो जब मनप्रकृति और सृष्टि में सुन्दर, अभिराम और इन्द्रिय-तर्पक की खोज में रहता है । ऋतु० का प्रणयन करते समय कवि का मन स्थूल ऐन्द्रियिक विषयों की ओर झुका हुआ था । आन्तरिक चिन्तन का काल अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था । वह सम्भवत: मध्यप्रदेश के पूर्वी अंचल, कम से कम, अमरकण्टक से लेकर दशपुर (मन्दसोर) तक की यात्रा कर चुका था । विन्ध्य, सतपुड़ा की विस्तृतशैल शिखरियों एवं नर्मदा के अंचलों को उसने ग्रीष्म और वर्षाकाल में खुली आँखों देखा और उनकी विभीषका तथा सुषमा का गहरी अनुभूति के साथ अध्ययन किया था । जबलपुर की स्फटिकमयी शैलशिरवरियों तथा उसके पार्श्ववर्ती प्रपात पर उसकी दृष्टि नहीं गयी थी । मालव के हर क्षेत्र से उसका घनिष्ठ परिचय था । वाल्मीकि रामायण, कामसूत्र आदिग्रन्थ उसने पढ़ लिये थे किन्तु वैदिक और पौराणिक साहित्य , दर्शन और धार्मिक संस्थाओं से निकट परिचय में अभी देर थी । यह काम उसने मेघदूत की रचना के अनन्तर हिमवान पर कुछ वर्ष निवास करते समय सम्पन्न किया । इसलिये स्वाभाविक था कि उसकी इस प्रथम रचना पर उसके उद्दाम तारुण्य, अल्हड़पन और शास्त्रानपेक्षी सौन्दर्य की छाप होती । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि काव्य की दृष्टि से यह रचना महत्त्वहीन है या इतनी अप्रौढ है कि इसे कालिदासकृत स्वीकार करने में झिझक का अनुभव हो । भावी महान् काव्यकार की प्रतिभा के सारे गुण इस कृति में विद्यमान है। व्यंजकता और मार्मिक संवेदनात्मक गहराई का अभाव भले हो किन्तु गहरी निरीक्षण शक्ति, नागर और वन्य सौन्दर्य का साक्षात्कार, अभिजातवर्ग से परिचय, उच्छलतारुण्य की ललकभरी प्रेप्सायें एवं नारी के आंगिक सौन्दर्य में डूबता उतराता सरल मन इन सबका साक्षात्कार तो ऋतुसंहार की पंक्ति-पंक्ति में किया जा सकता है । कालिदास की रचनाओं की एक बड़ी विशेषता है— ग्राम्य और नागर, वन्य और अभिजात, आकाश और पृथिवी एवं मानव तथा पशु पक्षि जगत् के बीच पूरा तादात्म्य, आत्मीयताभरा साहचर्य और खुला सौहार्द । ये सब बातें ऋतु संहार में भी देखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकती हैं। एक ओर यन्त्र धारा गृहों से मण्डित सुवासित हर्म्य हैं तो दूसरी ओर लहलहाते हुये शालि और इक्षु के खेतों से समृद्ध फूलें काशों की लम्बी कतारों से मण्डित और आम्र, किंशुक, लोध्र, शाल्मलि कदम्ब, सर्ज और सप्तच्छदवृक्षों से संरक्षित महनीय मही। एक ओर कुसुम्भरागारुणित दुकुल, तन्वंशुक, मौक्तिक, चन्दनरस, प्रियङ्गु, कालीयक और कुंकुम के मण्डनों के मण्डित नारियों के प्रति सहज श्राङ्गारिक अभिलाष मुखर है तो दूसरी ओर विन्ध्य वनों में दवाग्नि से झुलसते मृग-मृगियों तथा ग्रीष्मतापित पशुओं के प्रति स्पन्दित कारुण्य। ग्रीष्म और वसन्त के मादक चित्रों के साथ प्रथम वर्षाकाल का यह ग्रामीण चित्र कितना स्वाभाविक है—

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितंभुजङ्गवद्वक्रगतिप्रसर्पितम्।

ससाध्वसैर्भेक कुलैर्निरीक्षितं प्रयातिनिम्नाभिमुखं नवोदकम्।

खर-पतवार के छप्परों वाले गाँवों में हर वर्ष नये छप्पर छाये जाते हैं। पुराने छप्पर का पतवार पिछली वर्षा में भीग कर काला पड़ चुकता है। नया छप्पर छाकर सफाई कर देने पर भी पुराने खर के टूटे फूटे टुकड़े भूमि पर पड़े ही रह जाते हैं और गलियों में जो बारीक धूल से भरी रहती हैं, बिखर जाते हैं। वर्षा के पहले पानी का रेला जब धूल मिट्टी से अपना मार्ग बनाता हुआ आगे बढ़ता है तो पानी पर सफेद झाग छा जाते हैं। वे झाग कुछ चौडी धार के आगे-आगे रहते हैं और काला कूडा (खरपतवार) हल्का रहने से पानी के ऊपर तैरता रहता है। टेढ़ी मेढ़ी गति से आगे बढते झाग, और ऊपर काले कूड़े से ढकी पानी की धारा जब आगे बढती है तो वह कालेव्याल सी दिखायी पड़ती है जिसे दाये बांये बैठे मेढ़क डर-डर कर देखते हैं।

यह चित्र जितना स्वाभाविक है उतना ही मनोरमभी। कवि की सूक्ष्म दृष्टि और ग्राहिणी, प्रतिभा का आस्वाद वही ले सकता है जिसने कभी इस दृश्य का साक्षात्कार किया हो। सारे संस्कृत साहित्य में यह वर्णन मौलिकता की दृष्टि से बेजोड़ है।

ऋतुसंहार का कवि सरल गार्हस्थिक प्रणय का गायक है। उसकी कामप्रियता तीव्र होकर भी निर्बन्ध नहीं है। चढ़ती आयु का पहला प्रेमाङ्कुर यों भी एकचारिता की सीमा स्वीकार करता है। ऋतुसंहार की लोलुपता कुमारसंभव के अष्टम सर्ग की लोलुपता है, रघुवंश के १९वें सर्ग का लौल्य नहीं और फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिवारिक प्रणय के संभोग चित्र ! कितनी ताजगी और तन्मयता है उनमें । हममें से कितनों के सौभाग्य को विधाता ने इन शब्दों से लिखा है ।

ऋतुसंहार के वर्णन संस्कृत साहित्य के किसी भी ऋतुवर्णन की तुलना में विश्वास के साथ प्रस्तुत किये जा सकते हैं । वृहत्त्रयी के वर्णनों की तुलना में इनमें काल्पनिकता की मात्रा भले कम हो, ईमानदारी और आत्मीयता से लबालब भरी सह-अनुभूति और समवेदना तो कहीं अधिक मिलेगी ।

ऐसी स्थिति में भी ऋतुसंहार को कालिदास से भिन्न किसी अपरिपक्व मस्तिष्क की अप्रौढ रचना बतलाने वालों के प्रति यही कहना समीचीन होगा— तिष्ठन्तु ते किमपि तान् प्रतिनैष यत्नः ।

फिर भी ऋतु संहार के कालिदास कृत होने के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखकों और समीक्षकों में ऐकमत्य नहीं रहा है । वाल्टर रूबें (वाल्टर रूबे इंडिका ३ पृ. ६) नोबल (नोबल- जे आर ए एस १९१३, पृ. ४०१-४०९), हरिचन्द शास्त्री (कालिदास पृ. २४०) एवं कुन्हन राजा, जैसे विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास कृत नहीं मानते । इनके मत का आधार है मल्लिनाथ द्वारा इसकी टीका न लिखना, काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसके श्लोकों का उद्धृत न होना और संस्कृत की सुभाषितावलियों (संग्रहों) में इसके पद्यों का असंग्रहण । डा. कीथ, विण्टरनित्ज, मैकडानेल, कृष्णमाचारियर, एस एच स्टेनवर्ग, एस के डे और करमरकर आदि इसको कालिदास की रचना मानते हैं किन्तु दबी जवान से । इन लोगों के मत में भी यह उनकी किशोरावस्था की प्रथम और अपरिपक्व रचना है जिसमें भाषा तक की भूलें मिल जाती हैं । डॉ. आर. डी.करमरकर तो ऋतु संहार की अन्य कालिदासीय काव्यों से तुलना करने के बाद भी कहते हैं—

As regards the Ritu Samhara, one cannot be sure, but the possibility is that it also has came from the pen of Kalidasa (Extension lectures Series-4 page 18-23).

एम. विण्टर नित्ज ने हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर (पृ. ५६) में कालिदास की रचनाओं का उल्लेख करते हुए कहा है—

Indisputably belong to the poet the epics kumarasambhava and Raghuvansha, the dramas Sakuntala and Vikamorvasiya and the lyric poem Meghaduta and most probably the drama

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Malavikagnimitra and perhaps the garland of songs Ritusamhara too.

इस प्रकार वह भी इसके कालिदासकृत होने में घना सन्देह व्यक्त करते हैं। ए गैरोंस्की (A. Grwronski) ने अपने लेख The Digvijaya of Raghu and some connected problems P.9 note.) में इसके कालिदासकृत होने का खण्डन किया है। हरिचन्द शास्त्री ने इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है—

However the circumstance that the Ritusamhara is nowwhere cited in works of Rhetorics speaks against its authenticity.

इनके विचार से यह कृति कालिदास की अन्य कृतियों से सब तरह भिन्न है। वह लिखते हैं—It is doubtful whether the name of the great poet is correctly associated with them (other lyric poems). Ritusamhara on account of its antiquity and also on account of it's language and poetical perfection may possibly be easily included in the works of the great poet.

साहित्य के समीक्षक विद्वानों में डॉ. ए. बी. कीथ ऐसे हैं जिन्होंने न केवल इस कृति को कालिदास-प्रणीत माना, अपितु अपने पक्ष के समर्थन में तर्क भी दिये। उन लोगों के विरूद्ध, जिन्होंने यह कहा था कि ऋतुसंहार का प्रारम्भ वसन्त से न होकर ग्रीष्म से हुआ है जो परम्परा के विरूद्ध है और जो कालिदास जैसा संस्कारसिद्ध कवि नहीं कर सकता था। कीथ ने कहा कि यह कोई गँवारों के लिए बनाया गया पंचांग (Shephard's calender) नहीं जिसका वर्ष की प्रथम तिथि से प्रारम्भ होना जरूरी हो। यह आक्षेप कि लेखक ने प्रथम सर्ग में सात तप् धातु से बने शब्दों का प्रयोग किया है, निरर्थक है, क्योंकि वे सब शब्द इसी प्रकार सार्थक और उपयुक्त हैं जैसे वर्षा के प्रसंग में समुत्सुकत्व या वसन्त के वर्णन में उत्कण्ठा शब्द। इस सब शब्दों के प्रयोग के प्राचुर्य का कारण ऋतुकालीन स्थिति है। यह भी कहा गया है कि कालिदास जैसा रमणी सौन्दर्य का प्रेमी कवि उनकी गति को हंसों और उनकी बाहु-कान्ति को श्यामलताओं द्वारा अभिभूत कैसे बना सकता था! किन्तु ऋतु० में ऐसा हुआ है—

हंसैर्जितासुललिता गतिरङ्गनानामम्भोरूहैर्विकसितैर्मुखचन्द्रकान्तिः ३-१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामालता: कुसुमभारनतप्रवाला: स्त्रीणांहरन्तिधृतभूषणबाहु-कान्तिम्। ३-१८

कालिदास की किसी अन्य कृति में ऐसे वर्णन नहीं मिलते। किन्तु यह कथन बहुत बचकाना है, इसलिए आगे किसी आलोचक ने इस पर जोर नहीं दिया। द्वितीय सर्ग में एक श्लोक है—

तडिल्लताशक्रधनुर्विभूषिता: पयोधरास्तोयभरावलम्बिन:। ऋतु० २-२० इसमें 'तडिल्लता' इस रूपक का प्रयोग सर्वथा अनुचित है और इसे अनावश्यक रूपेण शक्रधनु: के साथ टाँक दिया गया है ऐसा आक्षेप भी ऋतु. के रचियता पर किया जाता है किन्तु सं. ५२९ (सन् ४७३) के मन्दसोर शिलालेख के १०वें श्लोक में वत्सभट्टि ने भी यही प्रयोग किया है—तडिल्लता चित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानिगृहाणियत्र। ऋतु० के षष्ठ सर्ग के १६ वें श्लोक में 'आमूलत:' प्रयोग है जिसमें पञ्चम्यास्तसिल् के अनुसार पंचमी बोधक तस् प्रत्यय भी है और मर्यादा बोधक आङ् भी। इस प्रकार इसमें दो पंचम्यर्थ हैं। कालिदास ने ऐसा कहीं नहीं किया है। उन्होंने कुमार०(१-५) में इसी अर्थ में 'आमेंखलं' प्रयोग किया है, 'आमेखलातः' नहीं। सर्ग १२८वें श्लोक में 'संजनयन्ति' तथा अन्य भी कुछ ऐसी ही क्रियायें हैं जिनका अन्यत्र कहीं कालिदासीय कृतियों में प्रयोग नहीं मिलता है। यह भी कहा गया है कि इस कृति में अंलकारों का सुविकसित प्रयोग नहीं हुआ जिसके लिए इस कवि की प्रसिद्धि है। यहाँ तक कि 'संहार' शब्द पर भी आपत्ति की गयी है जिसका इस अर्थ में और कहीं कवि ने प्रयोग नहीं किया है। कीथ ने इन सब आपत्तियों को यह कहकर निरस्त कर दिया है कि कवि तोता नहीं होता जो रटे रटाये बोल बोलता रहे या सर्वत्र एक ही प्रकार के प्रयोग करता रहे। कीथ के समान मेकडानल, हिलब्रांड, स्ट्रेंज्लर आदि विदेशी विद्वान् इसे कालिदास की कृति मानते हैं। २०वी. शती के प्रारम्भ में उठाये हुए इस विवाद को बाद में भी विद्वानों ने जारी रखा और ऋतु० के विभिन्न संस्करणों एवं स्वतन्त्र व्याख्यानों या समीक्षा पुस्तकों में कुछ न कुछ नयी सामग्री जोड़ी जाती रही है। कुछ समीक्षकों ने इसमें भाषासम्बन्धी भूलों की ओर भी ध्यान खींचा है। सोत्सुकम् (१-६) तथा (२-१७), मनोरथाति आदि ऐसे प्रयोग हैं। समुत्सुकत्वं प्रकरोतिचेतसः (२-९) जैसे अनेक प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से ठीक होने पर भी दुर्बल हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा सम्बन्धी श्लथता युवा कवि की प्रथम रचना में स्वाभाविक मानी जानी चाहिये। यों कालिदास की प्रौढ़ रचनाओं में भी व्याकरणासिद्ध प्रयोगों की कमी नहीं है। केवल कुछ प्रयोगों और नारी-वर्णन से सम्बद्ध वाक्यों को देखकर यह कह देना कि वह कालिदास की रचना नहीं क्योंकि वैसे अवधीरणाव्यंजक कथन अन्य ग्रन्थों में नहीं है, गाड़ी को उलटे रास्ते हाँकने के समान है। होना यह चाहिए कि हम यह देखें कि जैसी वाक्यावली या वर्णन संदर्भ इस कृति में पाये जाते हैं वैसे कवि की अन्यप्रामाणिक कृतियों में मिलते हैं या नहीं। रही रचना के पुष्ट होने की बात सो इसी बात से स्पष्ट है कि कालिदास के निकट-परवर्ती वत्सभट्टि के मन्दसोर शिला लेख के कई अंशों पर ऋतु० का प्रभाव है। यथा—

(१) प्रफुल्लपद्माभरणानियत्र तटानि कारण्डवसंकुलानि-वत्सभट्टि-७।

कारण्डवाननविघट्टितवीचिमाला..... सरोरूहरजो रूणितास्तटिन्यः। ऋतु. ३-८

(२) रामासनाथरचने दरभास्करांशुवह्निप्रतापसुभगेजललीनमीने।

चन्द्रांशुहर्म्यतलचन्दनतालवृन्तहारोपभोगरहिते हिमदग्धपद्मे। वत्स.

निरूद्धवातायनमन्दिरोदरंहुताशनोभानुमतोगभस्तयः।

न चन्दनंचन्द्रमरीचिशीतलंनहर्म्यपृष्ठंशरदिन्दुनिर्मलम्।

गुरूणिवासांस्यवलाः सयौवनाः प्रयान्तिकाले न जनस्यसेव्यताम्।

ऋतु० ५-२-३

स्तनजघनघनालिङ्गननिभर्त्सिततुहिनहिमपाते॥ वत्स. ३३

पयोधरैः कुंकुमरागपिंजरैः सुखोपसैव्यैः नवयौवनोष्मभिः॥

विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्तिशीतंपरिभूयकामिनः॥

ऋतु० ५-९

इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि ऋतु.संहार वत्सभट्टि के निकटकालीन कवि की रचना है और वत्सभट्टि पर कालिदास का प्रभाव विद्वान् समीक्षक एकमत से स्वीकार करते हैं। तब क्या यह संभव नहीं कि ये दोनों प्रभाव एक ही कवि के हों।

जहाँ तक वसन्त से न प्रारम्भ कर ग्रीष्म से प्रारम्भ करने की बात हैं, मैं कीथ से कुछ अलग हटकर कहूँगा कि ऋतुसंहार के प्रथम दोनों सर्ग कवि की अमरकण्टक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा के परिणाम हैं और ये उसके यात्राकाल में ही लिखे गये हैं। सम्भवत: विन्ध्य शैल शिखरों पर लगी अग्नि से पीड़ित मृगछौनों को देखकर ही कवि में कविता का उत्स फूटा था। ये दोनों सर्ग प्रत्यक्ष निरीक्षण के बिना नहीं लिखे जा सकते थे। शेष सर्ग उसने उज्जयिनी या विदिशा में पूर्ण किये होंगे,जहाँ उस समय वैभव और विलास अपने पूर्ण यौवन पर था। युवा कवि को मध्यदेश के व्यापक पर्यटन ने जो अनुभव दिये और दृष्टि प्रदान की वह कुछ समय बाद पूर्व मेघ के रूप में व्यक्त हुई। क्या प्रथम दो सर्गों के वर्णन पढ़कर ऐसा लगता है कि पूर्व मेघ की चितेरी और ऋतुसंहार की सर्जक लेखनी एक ही है ?

मेघदूत

मेघदूत कालिदास की प्रौढ़ रचना है जिसमें केवल मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध ११५ (६३ पूर्वार्ध + ५२ उत्तरार्ध) छन्द हैं। मेघदूत खण्ड काव्य है जिसे दाक्षिणात्य विद्वान् मेघसन्देश नाम से अभिहित करते हैं। कथानक तो केवल नाम मात्र है किन्तु उसके सहारे कवि ने चित्रकूट से लेकर उत्तर हिमालय (अलकापुरी) तक की लम्बी उड़ान भरी है। अलकापुरी का कोई युवा यक्ष नवविवाहिता प्रणयिनी के प्रणयज़ाल में फँस कर अपने स्वामी यक्ष की सेवा में प्रमाद कर बैठा जिससे कुपित होकर यक्षपति कुबेर ने उसे एक वर्ष के पत्नी वियोग का शाप दे दिया। तब वह उसी चित्रकूट पर जाकर रहने लगा जहाँ राम और सीता ने निर्वासन काल का एक भाग व्यतीत किया था। प्रवास के आठ महीने बीतते न बीतते वर्षाकाल आ गया और उसे पर्वत पर मँडराते प्रथम मेघ के दर्शन हुए। वर्षाकाल यों भी वियोगियों के लिए विशेष पीडादायक होता है। यक्ष का मन प्रिया मिलन के लिए आकुल हो उठा। उसने सोचा कि मेरी प्रिया भी इसी प्रकार मुझसे मिलने के लिए आकुल होगी। तब उसने मेघ से प्रार्थना की कि वह मित्र बनकर उसका सन्देश प्रिया के समीप ले जाय। मेघ ने उसकी बात स्वीकार कर ली।

इतनी सी कथा के बहाने कवि ने मेघ से अलका का मार्ग बतलाते हुए रामगिरि से कनखल तक मार्ग के बीच में पड़ने वाले पर्वतों नदियाँ, जनपदों नगरों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों का वर्णन किया हैं जिनमें दो एक को छोड़कर शेष वर्तमान मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। इनमें प्रथम है माल क्षेत्र। यह पहाड़ी ऊँची भूमि का प्रदेश है जो चित्रकूट से अमरकण्टक पर्वत तक फैला हुआ है। इसे आम्रकूट भी कहते थे क्योंकि इसके पार्श्व वन्य आम्रवृक्षों से भरे थे और आज भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यह क्षेत्रवन्य जातियों की निवासभूमि था और आज भी है। यहाँ शिलाखण्डों से से टकराकर अपना मार्ग बनाती रेवा नदी बहती थी। आगे दशार्ण जनपद था जिसके ग्रामों के चैत्य कौओं से भरे रहते थे। इस क्षेत्र में जामुन के वृक्षों की भरमार थी। दशार्ण की राजधानी विदिशा थी जिसके पास वेत्रवती नदी बहती थी। यहीं नीचैः गिरि था जिसे अब उदयगिरि कहते है। इसकी शिलाओं को काट कर कन्दरारुप वेश्म बनाये गये थे। इसके पश्चात् थोड़ा दक्षिण-पश्चिम मुड़कर उज्जयिनी नगरी थी जो महाकाल के मन्दिर तथा गणिकाओं के लिये प्रसिद्ध थी। विदिशा और उज्जयिनी के बीच निर्विन्ध्या नदी मिलती थी। आगे सिन्धु प्रवाहित थी। ये दोनों आजकल नेवज और कालीसिन्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ से अवन्ति जनपद प्रारम्भ हो जाता था जिसके अन्तर्गत विशाला या उज्जयिनी नामक धनाढ्य नगरी थी। आगे बढने पर गम्भीरा नामक नदी पार करनी होती थी। आगे देवगिरि था जिसपर स्कन्द का विशाल मन्दिर था। इसके पश्चात् चर्मण्वती (चम्बल) नदी मिलती थी। इसके पास ही दशपुर (वर्तमान मन्दसोर) था। इसके पश्चात् लम्बी छलाँग लगाकर कवि ने मेघ को सीधे ब्रह्मावर्त जनपद और उसके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र में पहुँचा दिया है। यहीं सरस्वती प्रवाहित थी। फिर कनखल और गंगानदी एवं तदनन्तर हिमालय तथा उसके ऊपरी भाग में अलकापुरी। यह मेघ का गन्तव्य था। उपर्युक्त स्थानों का वर्णन करते हुए कालिदास ने उनकी कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है। आइये, इन पर एक दृष्टि डाल लें।

रामगिरि— कवि ने इसके आश्रमों (रामगिर्याश्रमेषु १-१) में यक्ष का वास बतलाया है। रामगिरि पर एक नहीं अनेक, आश्रम थे जो घनी छायावाले (नमेरु) वृक्षों से आच्छादित थे (स्निग्धच्छायातरुषु १-१) और ये आश्रम उस या उन नदियों के किनारे अवस्थित थे जिनका जल निर्वासन काल में सीता के स्नान करने के कारण पवित्र हो गया था। (जनक-तनया स्नान पुण्योदकेषु १-१) यह पर्वत इतना ऊँचा था कि जब मेघ उस पर छायें तो लगे कि मेघ नही, परिणत (तिरछे दाँतों के प्रहार से शिला खण्डों को उखाड़ने वाला) गज उस पर वप्र क्रीडा (उत्खात केलि) कर रहा है (वप्र- क्रीडा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयम् १-२) रामगिरि की एक अन्य विशेषता है, उसकी तुङ्गता और उसकी मेखला अर्थात् ऊँचाई की दृष्टि कटि या मध्य भाग का राम के चरणों से अङ्कित होना। राम ने इस स्थान पर दीर्घकाल तक निवास किया था और मृगया अथवा भ्रमण के निमित्त उसके चारों ओर भ्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी (रघुपदैराङ्कितं मेखलासु १-१२) इस क्षेत्र में निचुल या नरकुल जाति के पादपों का बाहुल्य था ।

मालक्षेत्र—रामगिरि उत्तर की ओर बढते ही सर्वप्रथम मालक्षेत्र मिलता था । यह ऊँची पहाड़ी भूमि का क्षेत्र था । इसमें छोटी-छोटी ग्रामीण बस्तियां थी जिनका जीवनाधार थी कृषि । वर्षा प्रारम्भ होते ही लोग खेतों की जुताई करने लगते थे क्योंकि उनकी कृषि पूर्णतया वर्षा पर निर्भर थी । इन ग्रामों की स्त्रियाँ सरल और भोली भाली थी । उन्हें भ्रूविलास का ज्ञान नहीं था । वे निपट गँवार थी—

सद्यः सीरोत्कषण- सुरभि क्षेत्रमारुह्यमालं

किञ्चित् पश्चाद् ब्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।।१-१६

आम्रकूट—

आम्रकूट या अमरकण्टक शैल- श्रेणी मालक्षेत्र के उत्तर में अवस्थित थी । ग्रीष्म त्रतु में इसमें प्राय: दवाग्नि का प्रकोप होता रहता था । अमर कण्टक अनेक ऊँचे शिखरों से संपन्न था जिन पर वन्य आमों के वृक्षों का आधिक्य था । वृक्ष सारी पर्वत भूमि को व्याप्त किये थे । ये वर्षारम्भ में पकने लगते थे । आम्रकूट का परिसर वन्य जनजातियों से बसा हुआ था । यहीं से रेवा का प्रवाह प्रारम्भ होता है । बड़े-बड़े पत्थरों से व्याप्त भूमि के बीच से अपना मार्ग बनाती हुई रेवा विन्ध्याचल के प्रत्यन्त पर्वतों में अनेक छोटी-छोटी धाराओं में बिखरकर बहती है । समीपस्थ प्रदेश में वन्यगज विचरण करते हैं । और यहाँ जामुन के वृक्षों के अनेक कुंज इसकी धारा के प्रवाह में व्यवधान उपस्थित करते हैं । आषाढ मास में इसके इधर-उधर हरित और कपिश (काले और पीले मिश्रित) रँग के नीप या स्थल कदम्ब खिलते है और तभी इसके कच्छों (समीपस्थ दलदली भूमि) में उगी कन्दलियों पर पहली बार मुकुल फूटते है ।

दशार्ण:—

आम्रकूट प्रदेश से आगे दशार्ण जनपद प्रारम्भ हो जाता था जिसमें उपवनों के चारों ओर केतकी की बाट लगी रहती थी जिसमें वर्षा के प्रारम्भ में ही पतले कण्टकों वाली कलियाँ निकल आती थीं । यहाँ काक आदि पक्षियों की बहुत अधिकता थी । वे गाँव-गाँव में चैत्य वृक्षों पर नीड बनाना प्रारम्भ कर देते थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशार्ण के वनान्त प्रदेश पके हुये जामुन के वृक्षों से व्याप्त थे—कालिदास ने निम्न शब्दों में आम्रकूट और दशार्ण की चर्चा की है—

(क) छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः ।१-१८

(ख) स्थित्वा तस्मिन् वनचर- वधू- भुक्तकुञ्जे मुहूर्तम् ।१-९

(ग) रेवां द्रक्ष्यस्युपल विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् ।१-१९

(घ) तस्यास्तिक्तै र्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि—

र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।१-२०

(ङ) नीपं दृष्ट्वाहरित- कपिशं केशरैरर्धरुढैः ।१-२१

दशार्ण के सम्बन्ध में कवि की उक्ति देखिये—

पाण्डुच्छायोपवन- वृतयः केतकैः सूचिभिन्नै

र्नीडारम्भैः गृहबलिभुजामाकुल-ग्राम चैत्याः ।१-२३

विदिशा—

दशार्ण की राजधानी विदिशा थी जिसके समीप वेत्रवती नदी प्रवाहित थी। विदिशा के समीप बड़े-बड़े कदम्ब पुष्पों से सुरभित "नीचैः" गिरि था, जिसमें बहुत से शिलावेश्म (शिलायें काट-काटकर बनाये गये गुहागृह) थे। नगर के रसिक जन वेश्याओं को साथ लेकर विलास के लिये वहां जाते थे। पास ही कुछ और छोटी-छोटी अन्य नदियाँ थी। जिनके दोनों ओर यूथिकाओं के उद्यान थे। कदम्ब, नीप और यूथिका के उद्यान इतने अधिक थे कि फूल चुनने वाली स्त्रियाँ उनके पुष्पों को चुनकर और उनकी मालायें बनाकर उनसे अपनी जीविका चलाती थीं।

निर्विन्ध्या—

इसे आजकल नेवज कहते हैं। विदिशा से मेघ उत्तर दिशा की ओर न जाकर जब उज्जयिनी की ओर मुड़ जाता है तो विदिशा के आगे उसे निर्विन्ध्या नदी मिलती थी, जिसके बीच-बीच में आवर्त्त (भंवर) दिखायी देते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्धु—

निर्विन्ध्या से आगे उज्जयिनी के मार्ग में सिन्धु (वर्तमान कालीसिंध) बहती थी। जिसकी धारा वर्षा ऋतु के पूर्व जल सूख जाने से बहुत पतली हो जाती थी।

अवन्ति—

कालीसिंध पार करते ही अवन्ति जनपद प्रारम्भ हो जाता था जिसके ग्रामों में उदयन की कथा रस ले लेकर कही-सुनी जाती थी।

विशाला—

यह उज्जयिनी का दूसरा नाम है। यह नगरी शिप्रा नदी के किनारे बसी थी। यहाँ चण्डीश्वर का धाम अवस्थित था। यहीं एक गन्धवती नाम की छोटी नदी भी प्रवाहित थी, जिसके समीप स्त्रियों के लिये स्नान घाट थे। महाकाल के मन्दिर में सायंकाल के समय पूजार्थ पटह बजते थे और वेश्यायें नृत्य किया करतीं थीं। उज्जयिनी बड़े धनिकों की नगरी थी। ऊँचे-ऊँचे प्रासादों में रहने वाली स्त्रियाँ जब धूप में केश-संस्कार करतीं थीं तो सुगन्ध-धूप हर्म्यों की जालियों से बाहर निकलकर वातावरण को सुगन्धित बनाता था। रात्रि वेला में अभिसारिकायें विशेषतः वेश्याएं राजमार्ग से होकर अपने प्रेमियों से मिलने जाया करती थी। भवनों में विस्तृत छज्जे (बलभियाँ) बनीं थीं, जिनमें रात्रि के समय पारावत विश्राम करते थे।

गम्भीरा—

उज्जयिनी से आगे चलकर गम्भीरा नदी पार करनी होती थी। जिसका जल बहुत स्वच्छ था। इसलिये इसमें बड़ी-बड़ी मछलियां पायी जाती थीं।

देवगिरि—

इसके आगे देवगिरि पर्वत मिलता था। मार्ग में जंगली उदुम्बर (गूलर) के बन थे जो आषाढ में पक जाते हैं। देवगिरि के ऊपर स्कन्द का निवास माना जाता था। यहाँ स्कन्द का मन्दिर था और थे विपुल संख्या में मयूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्मण्वती—

जो रन्तिदेव की कीर्ति के रुप में प्रसिद्ध थी। इसमें पर्याप्त जल भरा रहता था। यह गहरी नदी थी।

दशपुर—

चर्मण्वती के किनारे दशपुर (वर्तमान मन्दसोर) बसा था। दशपुर की स्त्रियां नागरी थीं और सौन्दर्य कला-विलासों से सुपरिचित।

ब्रह्मावर्त—कवि ने देवगिरि के पश्चात् ब्रह्मावर्त जनपद की अवस्थिति बतलायी हैं। ब्रह्मावर्त के अन्तर्गत ही कुरुक्षेत्र है; जहाँ अर्जुन ने गाण्डीव के तीव्र वाणों से राजन्यों के शरीरों को छेद डाला था। कवि ने इस क्षेत्र को "क्षत्रप्रधनपिशुन" कहा है।

सरस्वती—

इस क्षेत्र में सरस्वती नदी बहती थी। बलराम ने महाभारत युद्ध में भाग न लेते हुए युद्धकाल सरस्वती के किनारे ही अतिवाहित किया था। कवि ने इन सब स्थानों की विशेषताओं को अलग-अलग रेखांकित किया है। यथा—

(१) तेषां दिक्षुप्रथित- विदिशा- लक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा । १-२४

(२) सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।१-२४

(३) नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः
यः पण्यस्त्री रति-परिमलोद्गारिभिर्नागराणा–
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि। १-२५

(४) प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्। १-३०

(५) अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
कुर्वन् सन्ध्या- वलि- पटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम्। १-३४, ३६

(६) तत्रस्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा

पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः। १-४३

(७) व्यालम्बेथाः सुरभि- तनयालम्भजां मानयिष्यन्

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।१-४५

(८) तामुत्तीर्य व्रज परिचित- भ्रूलता- विभ्रमाणाम्

पात्रीकुर्वन् दशपुर- वधूनेत्र- कौतूहलानाम्।१-४७

(९) कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-

मन्तशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः। १-४९

इसके आगे कवि ने मेघ को सीधे कनखल पहुँचा दिया है, जहाँ गंगा समतल भूमि पर अवतरित होती है। इसके आगे हिमगिरि प्रदेश का प्रारम्भ हो जाता है।

रामगिरि—

रामगिरि को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। डॉ० वी० वी० मिराशी इसे नागपुर से २५ मील उत्तर की ओर राजमार्ग पर अवस्थित रामटेक मानते है। मैंने इस स्थान को ठीक आषाढ़ के अन्तिम दिन देखा है। ऊँची टेकड़ी (छोटी सी पहाडी) के बीच एक जलाशय, हरे भरे वृक्षों, और कुछ छोटे छोटे मन्दिरों से घिरा यह स्थान निश्चय ही मनोरम है। डॉ० मिराशी के अनुसार यहाँ से मानसून के बादल उत्तरापथ की ओर बढ़ते और उन स्थानों से होकर निकलते है जिनका उल्लेख कालिदास ने किया है। दूसरे स्थानीय जनता राम टेक में राम के आवास पर विश्वास करती है। तीसरे कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनका विदर्भ के साथ निकट सम्बन्ध रहा था। वह सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की बहिन प्रभावती गुप्ता के पति प्रवरसेन द्वितीय के दरबार में दूत बन कर आये थे। वाकाटक राजा प्रवरसेन की राजधानी नन्दिवर्धन भी विदर्भ में थी। मिराशी जी के प्रभाव से तत्कालीन राज्य शासन ने यहाँ छोटा सा कालिदास-स्मारक भी बना दिया है। दूसरा मत अम्बिकापुर (म. प्र.) जिले में स्थित जोगी मारा गुफाओं की पहाड़ियों के पक्ष में है। यह मत डॉ० परांजये ने प्रस्तुत किया है। जोगी मारा की गुफा नाट्यशाला के रुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में व्यवहृत होती थी । यहाँ प्राप्त होने वाले शिलालेख में किसी सुतनुका का उल्लेख है । पूर्वी मानसून यहाँ से मध्यप्रदेश के सन्दर्भित— स्थानों को जाता है । एक और मत बस्तर राज्य (म. प्र.) के जगदलपुर से कोई ३० मील की दूरी पर प्रवाहित इन्द्रावती नदी के पास स्थित चित्रकुट के पक्ष में है । वर्षों से लेखों और संगोष्ठियों में इस विषय को लेकर विवाद चलता रहा है किन्तु मेघदूत का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि रामगिरि उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर स्थित चित्रकूट ही है । मेघदूत के टीकाकार मल्लिनाथ इसका समर्थन यों ही नहीं करते । उनके समय में यही लोक मान्यता थी । 'रामगिर्याश्रमेषु' का बहुवचन इस बात का साक्षी है कि यक्ष की वसति उस स्थान पर थी जहाँ बहुत से आश्रम थे, घने घने छायादार वृक्ष थे, सीता वहाँ की नदियों और तडागों में दीर्घकाल तक स्नान करती रहीं थीं । रामसीता का दीर्घकालीन ऐसा निवास जो वहाँ के जलों (जल नही) को पुण्यतीर्थ बना दे, केवल चित्रकुट में ही रहा था । वाल्मीकि इसमें प्रमाण है । अन्य किसी स्थान का इस रुप में वर्णन किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता और न कोई स्थान ऐसे शैलों वाला है जिसकी मेखलायें वहाँ मृगयादिकार्यों के लिये विहार करने के कारण रघुपति के पदों से अंकित हैं । (मेघ १-१२) यह स्थान दो चार दिन नहीं, दीर्घ अवधि तक राम-सीता के निवास करने से ही पुण्य हो सकताथा रघुवंश के १३ वें सर्ग में राम ने सीता को वे स्थान दिखाये हैं जहाँ होकर वह गये थे । इनमें एक मात्र चित्रकूट है जिसका वर्णन रामगिरि से मिलता है । यों तो भारत के हर क्षेत्र में राम-सीता तथा पाण्डवों के निवास से सम्बद्ध स्थल मिल जाते हैं । यह केवल उन महापुरुषों के प्रति लोकश्रद्धा को ही व्यक्त करता है । फिर उपर्युक्त स्थानों में कोई "वप्रक्रीडापरिणत गजप्रेक्षणीय" कहलाने के योग्य नही है । कालिदास ने जो रामगिरि से बाहर निकल कर माल क्षेत्र में आते ही मेघ का 'भ्रूविलासानभिज्ञ' जनपदबधुओं, और उसके बाद वनचर वधू भुक्त कुंजों से परिचय कराया है वह चित्रकूट से चलने पर ही सत्य सिद्ध हो सकता है । उन्होंने रामगिरि क्षेत्र को 'सरसनिचुल' कहा है और मार्ग में मिलने वाले दिङ्नागों के स्थूल हस्तावलेपों का उल्लेख किया है । मल्लिनाथ ने निचुल और दिङ्नाग शब्दों को श्लिष्ट माना है । निचुल के समान रामटेक में दिङ्नागों (बड़े बडों गजो) की भी कल्पना नहीं की जा सकती जबकि विन्ध्य प्रदेश में बहुत प्राचीन समय में छद्म पूर्वक गजाखेट के लिये कौशम्बी से आये राजा उदयन को बन्दी बनाया गया था । विन्ध्य पर्वत के चप्पे-चप्पे से कालिदास परिचित हैं । ऋतु संहार तथा रघुवंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में उन्होंने इस क्षेत्र का विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसलिये उनका 'दिङ्नाग' शब्द जो महागजों और अद्रिवत् गुरु या समुन्नत आचार्य दिङ्नाग दोनों का बोध कराता है, सार्थक हो सकता है। श्लेष मान लेने पर 'स्थूल हस्तावलेप' में प्रत्येक पद की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। अन्यथा 'अवलेप' शब्द और 'सरसनिचुलात्' में 'सरस' विशेषण की उपयोगिता नहीं रह जाती। निश्चित ही कवि के मन में कविनिचुल, जिनके कुछ श्लोक मिल भी गये है और दिङ्नागाचार्य की ओर संकेत करने की इच्छा थी, अन्यथा वह "स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्यतोदङ्मुखः सन् दिङ्नागानां पथिपरिहरान् स्थूल हस्तावलेपान्। मेघ १-१४" जैसा अनाहूत कथन कदापि न करते। कालिदास का यह श्लोक भी रामगिरि का अभिज्ञान चित्रकूट के रुप में ही कराता है। जो पश्चिमी या पूर्वी मानसून के मेघों की गति को आधार मानकर ही रामगिरि की पहचान करना चाहते हैं उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि कालिदास ने इस मर्यादा का पालन नहीं किया है। वह मौसमविज्ञानी नहीं थे और न उन्हें इन मेघों के उदय और अवसान का ही पता था, अन्यथा वह मेघ को बारबार बरसाकर उसे विदिशा से उज्जयिनी मन्दसोर कुरुक्षेत्र और कनखल के मार्ग से कैलास शिखर तक न ले जाते और न ही बार-बार उसकी 'मुग्ध सिद्धांगनाओं और अमरमिथुनों' से मालक्षेत्र और आम्रकूट पर भेंट कराते। वस्तुतः कवि का प्रमुख लक्ष्य अपने प्रिय चित्रकूट से लेकर मन्दसोर तक के प्रदेश का प्रावृडारम्भ का चित्र प्रस्तुत करना था। वह इस प्रदेश के ग्राम्य और नागरिक जनजीवन, नदियों, पर्वतों, पशु-पक्षियों, वृक्षों, लताओं और पुष्पों की सरस झाँकी प्रस्तुत करना चाहता था, अन्तरिक्षीय अथवा भौगोलिक सर्वेक्षण नहीं। इस लिये मेघदूत के वर्णनों में अत्यधिक वैज्ञानिकता ढूँढना व्यर्थ है। और इतना ही व्यर्थ है उसके आधार पर रामगिरि की स्थिति निश्चित करना।

प्रथम दिवसे या प्रशम दिवसे ?—मेघदूत के चतुर्थ श्लोक में 'प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी' इस वाक्य को देखकर कुछ लोग द्वितीय श्लोक में "आषढस्य प्रथमदिवसे" के स्थान पर 'आषाढस्य प्रशम दिवसे' ऐसा पाठ मानते हैं। बात यह है कि यक्ष ने देखा कि नभस् अर्थात् श्रावण मास बिलकुल समीप आ गया है, और प्रोषितपतिका वियोगिनी बधुओं के लिये वर्षा ऋतु-यों भी कष्टकरी होती है फिर मेरी पत्नी तो नवोढा है। कहीं ऐसा न हो कि वह असह्य व्यथा के कारण प्राण ही त्याग दें। इतने में ही उसने पर्वत की चोटी का आलिङ्गन करते हुए एक मेघ को देखा। यह आषाढ़ मास का अन्तिम दिन रहा होगा या प्रथम दिन ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि श्लोक में चाहे 'प्रथम दिवसे' पाठ रहे या 'प्रशम दिवसे' छन्द में कोई अन्तर नहीं आता। इस पर कुछ लोंगों का कहना है कि 'प्रशम दिवसे' अर्थात् आषाढ के अन्तिम दिन-यही पाठ समीचीन है क्यों कि आगे यक्ष ने मेघ के द्वारा पत्नी से कहलवाया है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्स्थितेशार्ङ्गपाणौ,

शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

पश्चादावां विरह- गुणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासुक्षपासु ॥ मेघ २-४७

अर्थात मेरे शाप का अन्त देव- प्रवोधिनी एकादशी को हो जायगा। अतः तुम ये चार मास किसी तरह आँखें मींच कर बिता दो। बाद में हम दोनों पूर्ण चन्द्र की चाँदनी से भरी रातों में, इतने दिनों से सँजोये अभिलाषों को जो विरह के कारण दुगुने हो गये है, अच्छी तरह भोगेंगे। देवोत्थानी या कार्तिकी पूर्णिमा तक की अवधि आषाढ के अन्तिम दिन से गिनने पर ही पूर्ण हो सकती है। आषाढ की शुक्लपक्षीय देवशयनी एकादशी से देव प्रवोधिनी तक अथवा आषाढी पूर्णिमा से कार्तिकी पूर्णिमा तक चार मास होते है। एकादशी भी मास के प्रशम दिन सी होती है। ऐसी स्थिति में प्रशम दिवसे पाठ मानना उपयुक्त होगा क्योंकि तब उसका प्रत्यासन्ने नभसि से सामञ्जस्य बैठ जायगा।

यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि पर्वतों पर मेघ का प्रथम दर्शन आषाढ के अन्तिम दिवस को नहीं प्रत्युतमासके प्रारम्भ में ही हो जाता है और उस दिन यदि मेघ सन्देश लेकर चला जाय तो मेघदूत में वर्णित स्थानों पर थोड़ा विश्राम करते कराते उसे यक्षी तक पहुँचने में बीस पच्चीस दिन लग जायेंगे और तब तक शापान्त के लिये चार मास ही बचेंगे। फिर 'प्रत्यासन्ने नभसि'से निकटस्थ श्रावण की सूचना है जो आषाढ से प्रत्यासन्न रहता है। यक्ष जानता था कि शीघ्र ही श्रावण आने वाला है। इसलिये उसने पहले से ही सन्देश भेजने की चिन्ता की जिससे उसकी पत्नी को श्रावण के प्रारम्भ में ही पति का सन्देश मिल जाय। अन्तिम दिन सन्देश भेजा और वह भरे श्रावण में पहुँचा तो भय था कि उसकी पत्नी कही पावस जन्य असह्य वेदना से प्राण त्याग न कर दे। इस प्रकार 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' यही पाठ समीचीन जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्षपुरी अलका—मेघदूत में मेघ की यात्रा रामगिरि से प्रारम्भ होकर अलका में समाप्त होती है। अलका यक्षेश्वरों की वसति है— (वसतिरलका नाम यक्षेश्वरणाम् १-७)। यक्ष विशिष्ट देवजाति है जिसे गुह्यक भी कहते हैं (गुह्यकस्तं ययाचे १-५)। ऐसा लगता है कि अलका का क्षेत्र काफी विस्तृत था और उसमें अनेक छोट-छोटे शासक थे जो कुबेर के अधीन थे। इन राजाओं के भी राजा होने के कारण कुवेर राजराज कहलाते थे (अनुचरो राजराजस्य दध्यौ १-३)। अलका के वाह्य उद्यानों में शिव का निवास था जिनके शिर पर चन्द्र विराजित रहता है। शिव का वाह्य उद्यान अलका के समीप, और उससे कुछ ऊँचाई पर भी स्थित था। इसलिये अलका के हर्म्य शिव के शिर पर स्थित चन्द्र की चन्द्रिका से प्रकाशित रहते थे। अलका का मार्ग कनखल से ऊपर चढ़कर गंगा के मूल स्थान से होता हुआ जाता था। मार्ग में कस्तूरीमृगों से सुगन्धित शिलायें मिलती थी। मार्ग में सरल अर्थात् देवदारू के वन थे जिनमें वृक्षों के परस्पर टकराने से कभी-कभी आग लग जाती थी जो वन के भीतर रहने वाले चमरीमृगों के बालों को जला डालती थी। यहाँ आठ पैरों वाले शरभ जाति के मृग भी होते थे। जिनके विषय में यह प्रसिद्ध था कि वे अन्तिमकाल में वेग के साथ नीचे कूदकर प्राण त्याग कर देते हैं। थोड़ा आगे बढ़ने पर शिव के पादन्यास से अंकित शिला मिलती थी जिसकी न केवल सामान्य जन, अपितु योगी भी पूजा करते थे। विश्वास था कि वहाँ शरीर त्याग करने पर शिव के प्रमथगणों में स्थान प्राप्त होता है (१-५२से ५५)। यहाँ कीचक वृक्षों की अधिकता थी। यह किन्नरों की भूमि थी जहाँ वे शिव की स्तुति में गीत गाया करते थे। यह हिमालय का निचला क्षेत्र था। यहीं क्रौञ्चरन्ध्र नाम पर्वतद्वार था जिसमें से होकर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में हंस मानस सरोवर को लौटते थे। कहा जाता है कि भगवान शिव से धनुर्विद्या सीखते हुये परशुराम ने स्कन्द के प्रति ईर्ष्या के कारण हिमाद्रि के क्रौञ्चनाम शिखर प्रान्त को तीव्र वाणों से भेदकर वहिर्गमन मार्ग बना दिया था (१-५७)। क्रौञ्चद्वार से आगे बढ़ने पर कैलाश शिखर का क्षेत्र है। इतना शुभ्र है कि इसके ऊँचे श्रृंगों में, जो आकाश में बहुत ऊँचे फैले हुये हैं देववनिताये दर्पण के समान अपना मुख देखती है और इसके क्रीडा शैल पर गौरी शम्भु के हाथ का सहारा लेकर विचरण करती हैं। इसके अंक में मानससरोवर विस्तृत है जिसमें स्वर्णिम कमल खिलते हैं। कैलास के ऊर्ध्व भाग में गंगा प्रवाहित है; और उसी के ऊर्ध्वभाग में अलका स्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलका में निवास करने वाले यक्ष धनाढ्य वर्ग के लोग हैं जो मणिमण्डित और ऊँचे-ऊँचे प्रासादों में निवास करते हैं। प्रासाद विविध चित्रों से सुशोभित और मृदंगादिवाद्यों के साथ चलने वाले संगीत से मुखरित हैं (२-१)। अलका की बधुयें हाथ में लीला कमल लिये अलकों को कुन्द की कलियों से सजाये लोध्र के पराग से आनन को अनुरंजित किये, ताजे कुरवक के पुष्पों से केशपाश को मण्डित किये, कानों में शिरीष पहने और सीमन्त को कदम्बकुसुम को अलंकृत किये रहती हैं। यक्ष अपनी पत्नियों के साथ आनन्द से मधुपान करते हैं। वे मन्दाकिनी के जलकणों से शीतल वायु का सेवन करते हुए मन्दाकिनी के ही तट के समीप स्थित मन्दार वृक्षों की छाया में बैठकर आतप से बच जाते हैं। यक्ष कन्यायें गुप्तमणि जैसी स्थानीय क्रीड़ाओं से अपना मन बहलाती हैं (२-४)। अलका में रत्न ही दीपों का काम देते हैं। यहाँ कल्पवृक्ष भी स्थित है जो पहनने के लिये नाना वर्णों के वस्त्र पीने के लिये मधु, भूषा के लिये विविध प्रकार के पुष्प और किसलय तथा चरणों के लिये लाक्षाराग प्रदान करता है (२-११)।

यक्ष का भवन—

कालिदास ने अलका का वर्णन करने के उपरान्त विरही यक्ष के आगार का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। यह आगार कुबेर के प्रासाद से उत्तर की ओर अवस्थित था जिसका तोरण इन्द्रधनुष के समान बहुरंगी और तुङ्ग होने के कारण दूर से दिखाई पड़ता था। तोरण के समीप मन्दार का छोटा सा वृक्ष था जिसके स्तवकों (गुच्छों) को हाथ से छुआ जा सकता था। भवन के भीतर मरकत शिलाओं से बनी हुई सीढ़ियों वाली बावड़ी थी जिसमें स्वर्ण कमल खिले रहते थे और जल में हंस तैरा करते थे। इसी के पास श्रेष्ठ इन्द्रनीलमणियों से मण्डित शिखर वाला एक क्रीड़ाशैल था जो चारों ओर से सुनहरे कदलीपादपों से वेष्टित था। भवन के एक पार्श्व में रक्त अशोक तथा केशर (वकुल) का वृक्ष था जिसके समीप माधवी लता का मण्डप, कुरवक की बाड़ से मण्डित था। अशोक और वकुल के मध्य में कञ्चन से निर्मित और स्फटिक के फलक से युक्त एक पक्षियों के लिये बनायी हुई वासयष्टि थी जिसका मूल गहरे हरे रंग की मणियों से दृढ़ किया हुआ था। वासयष्टि पर यक्ष की पत्नी के द्वारा पालित मयूर, जिसे वह ताल दे देकर नचाया करती थी, रात्रि के समय विश्राम किया करता था। भवन के द्वार के समीप मंगलचिह्नों के रूप में शङ्ख और पद्म चित्रित किये गये थे। भवन का चित्रण करने वाली कुछ काव्यपङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं,
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतक- तनया कान्तया वर्धितो मे,
हस्त- प्राप्य-स्तवक- नमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ २-१२
वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्ध- सोपानमार्गा
हैमैश्च्छन्नाविकच- कमलैः स्निग्ध- वैदूर्यनालैः। २-१३
तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः।
क्रीडाशैलः कनककदली- वेष्टनप्रेक्षणीया। १-१४
रक्ताशोकश्चल- किसलयः केशरश्चात्रकान्तः।
प्रत्यासन्नो कुरवक- वृतेर्माधवी- मण्डपस्य। १-१५
तन्मध्ये च स्फटिक- फलका काञ्चनी वासयष्टि
र्मूलेबद्धामर्णिभिरनतिप्रौढ़- वंश- प्रकाशैः।
तालैः सिंजावलय- सुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्धः ॥ २-१६
एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपदमौ च दृष्ट्वा। २-१७

विरहिणी यक्ष-पत्नी—

कालिदास ने यक्ष-पत्नी के सौन्दर्य और उसकी विरहव्यथा का अत्यन्त प्रभावकारी वर्णन २-२० से लेकर ३५ तक किया है, जो न केवल यक्षी प्रत्युत सभी भारतीय नारियों के विरही जीवन पर प्रकाश डालता है । २-१९ में कवि ने यक्ष-पत्नी के सौन्दर्य की चर्चा की है । विरहिणी की स्थिति का निरुपण करने के लिये यह पीठिका आवश्यक भी थी । इस सौन्दर्यवर्णन के सहारे कवि ने अपनी कल्पना की नारी का भी शब्दांकन कर दियः है—

तन्वी श्यामा शिखरि- दशना पक्व- विम्बाधरोष्ठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्येक्षामा चकित- हरिणी- प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।

श्रोणी- भारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां

या तत्रस्याद् युवति- विषये सृष्टिराद्येव धातुः ।। २-१९

वह छरहरे और इकहरे शरीर वाली है, यौवन के मध्यकाल में स्थित है, नुकीले विखरे दाँतों वाली, पके बिम्ब फल के समान रक्तिम ओष्ठों वाली और क्षीण कटि से युक्त है । उसकी नाभि गहरी है । चकित हरिणी के समान देखती, स्तनों के भार से कुछ-कुछ झुकी हुई और जघन भार के कारण धीरे-धीरे चल पाती है । लगता है जैसे विधाता ने स्त्रियों में सर्वप्रथम उसी को बनाया है ।

नारी के अंग सौष्ठव के सम्बन्ध में कालिदास की मान्यता यही थी । अपने तीनों नाटकों में नारी सौन्दर्य का वर्णन करते समय इन्हीं वैशिष्ट्यों को भिन्न शब्दों में दोहराया है । यहाँ उन्होंने एक तो मेघ को चहचानने में सरलता हो इसलिये और दूसरे ऐसी अप्रतिम सुन्दरी की ग्लपित शोभा का निरुपण करने के लिये यह चित्र प्रस्तुत किया है । यक्षी चक्रवाक- वधू के समान एकाकिनी पड़ी रहती थी । बहुत कम बोलती, रोते-राते उसके नेत्र सूज गये थे और उष्ण निःश्वासों के कारण ओष्ठ फट गये थे । लम्बे खुले बाल उसके मुख पर, जिसे वह हाथ पर टिकाये बैठी रहती थी, आधा ढँके रहते थे । कभी उठती तो देवताओं या पशु-पक्षियों को बलि अर्पित करने के लिये अथवा मन में पति के कार्श्य की कल्पना कर फलक पर उसका चित्र बनाने के लिये । कभी पञ्जरस्थ सारिका से पूछती—रसिके ! क्या तुम्हें कभी स्वामी की याद आती है ! तुम्हें तो वह बहुत प्यार करते थे । वह बिना बदले मलिन वस्त्र पहने रहती, अंक में वीणा रखकर पति द्वारा बनाये हुए गीत को गाने का प्रयत्न करती किन्तु वीणा नेत्रों से झरने वाली अश्रुधारा से भीग जाती और वह स्वयं अपनी ही मूर्च्छना को बार-बार भूल जाने के कारण वीणा उठाकर रख देती । वियोग के बचे दिनों को गिनने के लिये वह देहली पर पुष्पों को एक पंङ्क्ति में रखती । दिन तो किसी प्रकार घर के छोटे-मोटे कामों में बीत जाता किन्तु रात्रि काटे नहीं कटती । रात्रि के समय वह विरह शय्या के एक किनारे एक ही करवट से पड़ी रहती और मन में पति के साथ बिताये हुये सुखद क्षणों की याद करती रहती । कवि के शब्दों में यक्षी की दशा का वर्णन देखिये—

तां जानीथः परिमित- कथां जीवनं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्। २-२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूनं तस्याः प्रवलरुदितोच्छून नेत्रं- प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकल- व्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरण- क्लिष्ट- कान्तेर्विभर्ति॥ २-२१

आलोके ते निपतति पुरा सा वलि- व्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनं सारिकां पञ्जरस्थाम्
कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति॥ २-२२

उत्सङ्गे वा मलिन- वसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम्
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्री मार्द्रांनयन- सलिलै सारयित्वा कथञ्चिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्तीम्॥ २-२३

प्रथम विरह दिवस में उसने जो केश बाँध लिये थे वे शाप के अन्त में ही खुलेंगे; इसलिये कठोर पड़ गये उन केशों को इतने समय से न काटने के कारण बढ़ गये नखों से वह बार-बार इधर उधर सरकाती रहती। बिना किसी प्रकार के उबटन आदि के शुद्धस्नान करने के कारण अलक परुष पड़ गये थे और बिखर-बिखर कर कपोलों पर लटक जाते थे। आभूषण उतार देने के कारण उसकी शरीर यष्टि और भी कृश दिखती थी। नेत्र अञ्जन से रहित और मधु के परित्याग के कारण भृकुटियाँ विलासहीन हो गई थी।

यक्षी का यह रुप यद्यपि उसके पति की कल्पना से प्रसक्त है, किन्तु वह कालिदास की कल्पना की भी उतनी ही अभिव्यक्ति है जितनी यक्ष की। सम्भ्रान्त परिवारों में कालिदास कालीन प्रोषितपतिका का यही वास्तिवक स्वरुप था, जिसकी पुष्टि न केवल कामसूत्र अपितु स्मृति ग्रन्थों से भी होती है। यह एक प्रकार की अर्धमरणावस्था थी जिससे होकर हर विरहिणी को गुजरना पडता था। अनेक बार तो सब प्रकार के अलंकरणों, प्रसाधनों यहाँ तक कि सुघड़ वस्त्रों तक से रहित, हर प्रकार के विनोदों और मनोरंजनों से हीन, स्मित तक से वञ्चित युवती का यह जीवन उसके लिये निरपराध दण्ड ही था। कालिदास की वियोगिनी का मेघदूत में वर्णित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुप कठोर से कठोर व्यक्ति के मन में वेदना और सहानुभूति का संचार करने में समर्थ है।

यक्ष-संदेश—

ऐसी शिरीष- कोमला और तुषार- तरला विरहिणी के मन का जिस कोमलता के साथ स्पर्श कालिदास ने किया है वह भी साहित्य में अद्वितीय है। यक्ष के व्याज से वह मेघ से कहते हैं— मेरे गृह पर पहुँचने के समय यदि उस विरहिणी को नींद लग गयी हो तो वहाँ शब्द न करना। शान्त भाव से एक प्रहर तक प्रतीक्षा कर लेना। कहीं ऐसा न हो कि वह सोती-सोती प्रिय के मिलन का स्वप्न देख रही हो और वह तुम्हारे शब्द से टूट जाए। उसे अपने जल कणों से शीतल वायु के हल्के झोंकों से उठाना और जब वह सुस्थिर हो जाय तो कहना—हे सौभाग्यवति ! मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ और उसका सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारा सहचर रामगिरि आश्रम में प्रवास के दिन बिता रहा है। जीवित है। उसने तुम्हारा कुशल समाचार पूछा है। उसने कहा है कि मैं तुम्हारी एक-एक पीड़ा का अनुमान कर स्वयं भी उसी का वरण कर रहा हूँ। मैं यहाँ श्यामा लताओं में तुम्हारी देहयष्टि, चकित मृगियों के नेत्रों में तुम्हारी दृष्टि, चन्द्र में मुख शोभा, मयूर पंखों में तुम्हारी केश छवि तथा नदी की लहरों में तुम्हारे भ्रूविलासों को देखने की चेष्टा करता हूँ किन्तु तुम्हारा सादृश्य कहीं भी तो नहीं मिलता। कभी मैं तुम्हारे प्रणय कुपित रुप की कल्पना कर तुम्हें मनाने के लिये स्वयं को तुम्हारे चरणों पर गिरता चित्रित करने की इच्छा से गेरु से शिला पर चित्र बनाने की चेष्टा करता हूँ तो नेत्र अश्रुओं से भर जाते हैं और मुझे कुछ नहीं दिखता। मैं स्वप्न में तुम्हें आया समझकर मिलने के लिये आकाश में हाथ फैलाता हूँ किन्तु व्यर्थ। कभी मैं उत्तर से बहकर आये हुये वायु का इसलिये आलिंगन करने लगता हूँ कि वह तुम्हारा स्पर्श कर यहाँ तक आया होगा। मैं तो किसी तरह बहुत कुछ सोच-विचार कर स्वयं अपने को सँभाल लेता हूँ, तो कल्याणि ! तुम भी अधिक दुःखी मत होना। जीवन में सुख और दुःख आते-जाते रहते हैं। अगली देवोत्थानी एकादशी को हमारी शाप की अवधि समाप्त हो जायगी। तुम ये अवशिष्ट चार मास आँखें मींच कर बिता दो। फिर हम दोनों शरद की पूर्ण चन्द्रिका से भरी रात्रियों में अपनी सब अभिलाषाओं को पूर्ण कर लेंगे। आइये मेघ सन्देश को महाकवि के मुख से ही सुनें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामास्वङ्गं चकित- हरिणी- प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी- वीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।। २-४१

त्वामालिख्य प्रणय- कुपितां धातुरागैः शिलाया
मात्मानं ते चरण- पतितं यावादिच्छामि कर्तुम।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ।। २-४२

नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्। २-४६
शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा । २-४७

उपसंहार—

सन्देशार्थ मेघ को प्रेरित करते समय यक्ष ने चाटुकारिता पूर्वक उसकी प्रशंसा की थी। यथा—जातं वंशे भुवन- विदिते पुष्करावर्तकानां, जानामि त्वां प्रकृति- पुरुषं कामरुपं मघोनः। (१-६) तथा—सन्तप्तानां त्वमसि शरणम् आदि (१-७) तो कार्य सम्पन्न हो जाने पर वह उसे आशीर्वाद देता हुआ कहता है कि मैं जानता हूँ कि मेरी यह प्रार्थना अनुचित है फिर भी तुम मैत्री के कारण अथवा मुझे दुःखी देखकर मुझपर करुणा की दृष्टि से यह कार्य कर दो और फिर प्रावृष् से संवर्धित होकर मन चाहे स्थानों में विचरण करो। भगवान करेगा तो तुम्हारा अपनी प्रिया विद्युत् से कभी क्षण भर के लिये भी वियोग नहीं होगा—

एतत् कृत्वा प्रियमनुचित- प्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद् वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोश- बुद्ध्या।
इष्टान् देशान् जलद् विचर प्रावृषा सम्भृतश्री
र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युताविप्रयोगः ।। २-५२

और यहीं पर मेघ सन्देश समाप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार-संभव

प्रारम्भिक रचना होने पर भी काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से कुमार सम्भव का स्थान महत्त्वपूर्ण है । इसकी ख्याति का एक कारण इसका हिमालय वर्णन है जो प्राय: उद्धृत किया जाता है । इसमें कुछ तो कवि की कल्पना से प्रसूत है और कुछ यथार्थ । कालिदास ने हिमालय और हस्तियों का अविच्छिन्न सम्बन्ध बतलाया है । प्राचीन भारत में हिमालय, विन्ध्य और मलय पर्वतों के क्षेत्र में गज अधिकता से मिलते थे । देवदारु के वृक्ष तो वहाँ होते ही हैं । हाथियों की कनपटी में जब खुजली होती है तो वे उसे इन्हीं वृक्षों से रगड़ते हैं । रघुवंश में भी कालिदास ने कहा है—"कण्डूयमानेन कटं कदाचिद् वन्यद्विपेनोन्मथितात्वगस्य " कुमारसम्भव में भी कालिदास ने यही बात कही है । मस्तक की रगड़ से देवदारु की छाल उखड़ जाती है तो उससे दुग्ध के विन्दु निकलने लगते हैं । देवदारु का यह रस बड़ा सुगन्धित होता है और चारों ओर के वातावरण को सुरभित बना देता है । कवि ने कहा है—

कपोल- कण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।

यत्रस्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनिगन्धः सुरभीकरोति ।। १-९

कितना यथार्थ है यह वर्णन । कवि ने हिमालय पर होने वाले भूर्ज वृक्षों और उनकी छाल, जिस पर कभी पत्र और ग्रन्थ लिखे जाते थे तथा वहाँ अधिकता से मिलने वाले कीचकों (बांस के पोले वृक्षों) जो वायु के वेग से बाँसुरी जैसा शब्द करते हैं, रात को चमकने वाली औषधियों और जमने वाली बर्फ, गुफाओं में सदा बने रहने वाले अन्धकार और उन्हें चारों ओर से फेरे हुये मेघों, चमरी मृगों और भागीरथी के शीतल जलकणों से युक्त देवदारूओं को कम्पित करती हुई बहने वाली वायु आदि का सोलह श्लोकों में बड़ा मनोरम वर्णन किया है । धीरे-धीरे बाल्य को त्यागकर यौवन की ओर बढ़ती हुई पार्वती का बीस श्लोकों में अत्यन्त सरल-सहज ढंग से जैसा मनोमोहक वर्णन कालिदास ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । एक उदाहरण देखिये—

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान् मुक्ताफलं वा स्फुट- विद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठ पर्यस्तरूचः स्मितस्य ।।

१-४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीर- विप्रेक्षितमायताक्ष्याः।

तयागृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः ॥ १-४६

द्वितीय सर्ग में देवताओं के द्वारा ब्रह्मा की स्तुति भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह कवि की गम्भीर चिन्तना की परिचायक है और सांख्य तथा उपनिषदों के चिन्तन का सार लिये हुए है। द्वितीय सर्ग के ये पन्द्रह श्लोक साहित्य की निधि हैं। यथा—

आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।

आत्मनाकृतिना च त्वं त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥ २-१०

तथा—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरूषार्थ- प्रवर्तिनीम्।

तद्दर्शनमुदासीनं त्वामेव पुरूषं विदुः ॥ २-१३

उद्घातः प्रणवो यासां न्यायैस्त्रिभिरूदीरणम्।

कर्मयज्ञा फलं स्वर्गस्तासां त्वं प्रभवो गिराम् ॥ २-१२

इसके तृतीय सर्ग में वसन्त का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन है और दूसरी ओर एकान्त वन में शिव और उनकी पूजा में संलग्न पार्वती का चित्र भी। वसन्त के प्रभाव से सारी प्रकृति हरी-भरी, पुष्पित और श्रृंगारोन्मुखी हो उठी है। पशु-पक्षियों पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा है। लताएँ पुष्पों के गुच्छों के भार से इस तरह झुक गई हैं जैसे स्तनभार से तरूणियाँ। उनमें नये फूटे प्रवाल ओष्ठों के समान मनोहर लगते हैं, वृक्ष झुककर उन वधू- सी दिखने वाली लताओं का आलिंगन पाकर झूम उठे हैं—

पर्याप्त- पुष्पस्तबकस्तनाभ्यः स्फुरत- प्रवालोष्ठ- मनोहराभ्यः।

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र- शाखा- भुजबन्धनानि ॥ ३-३९

और द्विरेफभ्रमर अपनी प्रिया को साथ लेकर एक ही कुसुम पात्र में उसके साथ मधुपान कर रहा है। दूसरी ओर कृष्णसार मृग अपने सींग से प्रिया मृगी के नेत्र प्रान्त को खुजला रहा है। प्रिय के स्पर्श से रससिक्त मृगी ने अपने पलक गिरा लिये हैं—

मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।

श्रृङ्गेण च स्पर्श- निमीलिताक्षीं मृगीकण्डूयत कृष्णसारः ॥

३-३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वातावरण में उमा शिव को आकर्षित करने के लिए सज-धजकर उनकी तपोभूमि में जाती है। पार्वती की रूप -शोभा का एक चित्र—

आवर्जिता किञ्चिदिव-स्तनाभ्यां वासो वसाना तरूणार्करागम्।

पर्याप्त पुष्पस्तवकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव ॥ ३-५४

इधर शिव का तपोवन नन्दी के प्रभाव से पूर्णतया शान्त, नियन्त्रित है—

निष्कम्प- वृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्त- मृगप्रचारम्।

तच्छासनात् काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भइवावतस्थे॥ ३-४२

चतुर्थ सर्ग में रति का करूण विलाप है। कालिदास के अज और रति विलापों पर अलग चर्चा की गयी है। यह विलाप चेतन अचेतन सभी को दहला देने वाला है—

शशिना सहयति कौमुदी सहमेघेन तडित्प्रलीयते।

प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥ ४-३३

मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि॥ ४-२१

पञ्चम सर्ग में पार्वती की कठोर तपस्या और शिव द्वारा उसकी प्रेम-परीक्षा का वर्णन है। घर छोड़ कर गौरीशिखर पर जाकर तप करने वाली पार्वती के श्रृङ्गार परित्याग के साथ कठोर तप का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस सर्ग में है।, और निम्नश्लोक तो समीक्षकों द्वारा बार-बार उद्धृत किया जाता है—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपात-चूर्णिताः।

वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः॥

५-२४

पार्वती तप में निमग्न है। ग्रीष्म-ऋतु में चारों ओर अग्नि जलाकर और सूर्य से दृष्टि मिलाकर स्वयं को तपाती है। खुले आकाश में जब वर्षा का प्रथम जल गिरता है तो पहले शिर पर से नीचे उतर कर क्षण भर उसकी पलकों पर ठहरता है। पलकों से ओठों पर और ओठों से स्तनों पर गिरकर चूर-चूर हो जाता है। स्तनों से धीरे धीरे उतर कर त्रिवली में और फिर वहाँ से उतर कर नाभिकुण्ड में समा जाता है। इस प्रसंग में कवि ने पार्वती के प्रेमोन्माद का भी बड़ा मार्मिक स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत किया है । इस अंक में शिव-पार्वती संवाद और पार्वती की वयस्या के द्वारा उसकी मनोदशा का वर्णन साहित्य की अमूल्य निधि है । सखी कहती है ।

उणत्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सवाष्प-कण्ठस्खलितैःपदैरियम् ।

अनेकशःकिन्नरराज- कन्यका वनान्त- सङ्गीत सखीररोदयत् ॥

५-५६

षष्ठ सर्ग में सप्तर्षियों और शिव का संवाद, सप्तर्षियों द्वारा हिमालय के समीप जाकर शिव-पार्वती के विवाह का प्रस्ताव, हिमालय की स्वीकृति और सप्तम सर्ग में विवाह-कौतुक, वर-यात्रा, पार्वती श्रृङ्गार, पुरनारियों द्वारा वर दर्शन के लिये तीव्र कौतूहल और इसके साथ विधिपूर्वक विवाहविधि का सम्पादन बड़े ही आकर्षक ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है । विवाह वेला का एक चित्र—

रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गलिः पुङ्गव- केतुरासीत् ।

वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य ।।७-७७

रघुवंश के अज- इन्दुमती परिणय और शिव-पार्वती विवाह के वर्णनों में अद्‌भुत साम्य है । मनोरंजक बात यह है कि ये वर्णन रघु० और कुमार० दोनों के सप्तम सर्ग में ही आये हैं और दोनों के छः श्लोक (रघु० ६ से ११,और कुमार. के ५७ से ६२) समान हैं । अभी ऊपर जो श्लोक उद्‌धृत किया गया है वह भी शब्दान्तर से दोनों में समान मिलता है । देखिये—

आसीद् वरः कण्टकित- प्रकोष्ठः स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी ।

तस्मिन् द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन ॥

रघु. ७-२२

अष्टम सर्ग में शिव-पार्वती प्रणय के फलीभूत सम्भोग- श्रृंगार का निरर्गल वर्णन है, और है साथ ही गन्धमादन के अनुपम सौन्दर्य का विभिन्न पृष्ठ-भूमियों में अत्यन्त हृदयावर्जक चित्रण । इसकी समीक्षा अन्यत्र प्रस्तुत की गयी है । दो श्लोकों में सम्भोग का मादक चित्र देखिये—

घूर्णमान- नयनं स्खलत् कथं स्वेदविन्दु- मदकारणस्मितम् ।

आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पपौ ॥ ८-८०

क्लिष्टकेशमवलुप्त- चन्दनं व्यत्ययार्पित- नखं समत्सरम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य तच्छिदुरमेखला- गुणं पार्वतीरतमभून्न तृप्तये ॥ ८-८३

कुमारसम्भव कवि के उद्दाम यौवनकाल के भावना- प्रवण हृदय से प्रेरित रचना है। यह उस काल की कृति है जब कवि प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं के प्रति अत्यन्त संवेदनशील और तादात्म्य परायण होता है। कुमार-सम्भव कालिदास की अत्यन्त सरस मादक और भावानुभूति तथा काव्य-सौष्ठव से भरपूर मनोरम कृति है, जिसमें जीवन और यौवन निर्बन्ध रूप से मुखरित है।

कुमारसम्भव कालिदास का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें शिव के पुत्र कुमार के जन्म की कथा है। कुमार को स्कन्द, कार्तिकेय और षाण्मातुर भी कहते हैं। कुमारसम्भव की कथा पुराणों से ली गयी है, मुख्यतः महाशिव पुराण के पार्वती खण्ड से। दोनों की अनेकों पक्तियाँ एक दूसरे से मिलती हैं। शिव की पत्नी सती एक बार अपने पिता दक्ष के यज्ञ में बिना बुलाये ही चली गयीं। वहाँ उन्होंने पिता द्वारा की गयी शिव की उपेक्षा और अपमान को सहन न कर सकने के कारण यज्ञ-वेदी में कूद कर शरीर त्याग कर दिया। तब से शिव विरक्त होकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगे। इसी बीच तारक नामक असुर ने तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे वर प्राप्त किये और फिर उद्धत होकर समस्त जगत, विशेषतः देवों को पीड़ित करने लगा। त्रस्त होकर देवता लोग इन्द्र को आगे कर ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने बतलाया कि शिव के वीर्य से उत्पन्न सन्तान ही तारक का वध कर सकेगी। तब समस्या उत्पन्न हुई कि शिव को विवाह के लिए किस प्रकार प्रेरित किया जाय। इन्द्र को कामदेव का स्मरण आया और उसने वसन्त के साथ काम के समक्ष सारी बात स्पष्ट की। कामदेव ने शिव के ब्रह्मचर्य को भङ्ग करने का व्रत ठाना। इसी समय हिमालय की पत्नी मेना से उत्पन्न उसकी उमा नामक पुत्री बढ़ कर यौवन का आँचल छू रही थी। एक दिन नारद घूमते घूमते हिमालय के राजभवन में आ पहुँचे और उन्होने शिव को उमा के योग्य वर बतलाया। तब से पार्वती, पिता के आदेश से शिव की सेवा टहल करने जाने लगी थी। काम अवसर की तलाश में था। उसके साथी वसन्त ने सारे वन की काया पलट कर वातावरण को कामोद्दीपक बना दिया और पार्वती जब अपने सम्पूर्ण रूप-वैभव के साथ शिव के समक्ष सेवार्थ आयीं तो काम ने शिव पर वाण से प्रहार किया। शिव के मन में विकार आया किन्तु उन्होंने तुरन्त मन पर अंकुश लगा कर विकार के कारण की जो खोज की तो काम को छिपकर प्रहार मुद्रा में खड़ा पाया। बस फिर क्या था ? उनके तृतीय नेत्र से ज्वाला फूटी और काम क्षण भर में भस्म होकर रह गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम के दग्ध होने पर उनकी पत्नी रति ने बहुत विलाप किया और वह चितारोहण के लिए तैयार हुई किन्तु आकाशवाणी से यह जानकर कि शिव का विवाह पार्वती के साथ होने पर जब वे उसके साथ रमण करेंगे तो उसका पति अनङ्ग बनकर जी उठेगा। रति ने मरण का विचार त्याग दिया। उधर पार्वती घबरा गयी और उसने रूप का विश्वास छोड़कर कठिन तप का व्रत लिया। अन्त में शिव ब्रह्मचारी का रूप धारण कर पार्वती की परीक्षा लेने आये और प्रसन्न होकर सप्तऋषियों के माध्यम से उसके साथ विवाह कर मुक्त विहार करने लगे।

कालान्तर में उनके पुत्र हुआ जिसे कृतिकाओं ने पालकर बड़ा किया और अन्त में उसने देवताओं का सेनापतित्व स्वीकार कर तारक का वध किया। कुमार संभव में यह सारी कथा सत्रह सर्गों में समाप्त हुई है। किन्तु विद्वानों के बीच कुमारसंभव के कर्तृत्व को लेकर काफी विवाद रहा है। प्रश्न यह है कि क्या सारा कुमारसंभव एक ही व्यक्ति की रचना है। शैली की दृष्टि से देखा जाय तो इसका उत्तर है, 'नहीं'। स्पष्ट ही अष्टम सर्ग के बाद की रचना कालिदास कृत नहीं प्रतीत होती। कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इसके आठ सर्गों पर ही टीका की है। तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या कवि ने जानबूझकर केवल अष्टम सर्ग की समाप्ति पर ही काव्य को पूर्ण मान लिया था। किन्तु तब इसका नाम शिव-परिणय या पार्वती-परिणय होता क्योंकि कुमार का संभव अर्थात् जन्म तो दशम सर्ग में हुआ। और तब क्या इसकी गणना महाकाव्यों में होती ? यदि यह मान लिया जाय कि कवि का निधन महाकाव्य के पूर्ण होने से पहले ही हो गया होगा तो इसकी रचना शाकुन्तल और रघुवंश के बाद माननी पड़ेगी जो शैली एवं काव्य प्रौढ़ता की दृष्टि से सम्भव नहीं प्रतीत होता। यह भी कहा जाता है कि कालिदास ने इस काव्य की रचना 'कुमार गुप्त' प्रथम के जन्म के अवसर पर की थी। यदि यह बात मान ली जाय (यद्यपि मैं इसे ठीक नहीं समझता) तो भी दशम सर्ग से पहले इस काव्य की समाप्ति का औचित्य नहीं। तब क्या यह मान लिया जाय कि मल्लिनाथ सूरि का देहावसान टीका पूर्ण करने से पूर्व हो गया। एक यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि महाशिवपुराण की कथा एवं उसकी वाक्यावली का आश्रय न केवल आठ सर्गों में ही अपितु महाकाव्य के सम्पूर्ण सत्रह सर्गों में लिया गया है। वस्तुतः यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। परम्परा से कुमार सम्भव की पूर्णता सत्रह सर्गों में ही मानी जाती रही है और मेरे विचार से कुमारसंभव महाकाव्य का अर्थ सत्रह सर्गों का महाकाव्य ही माना जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौवन काल की रचना होने के कारण कुमारसम्भव की पंक्ति-पंक्ति में कवि का स्फुट उद्दाम यौवन बोलता है। काव्य के आठों सर्ग भाव-समीक्षा की दृष्टि से तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं—(१) प्राकृतिक सुषमा के वर्णन-इसके अन्तर्गत प्रथम सर्ग का आधा भाग, तृतीय एवं अष्टम सर्ग का अधिकांश आता है—(२) भक्ति-भावना की अभिव्यञ्जना-द्वितीय और पञ्चम सर्ग का अधिकांश इसका साक्षी है। (३) श्रृंगार निरूपण-प्रथम सर्ग का कुछ भाग और सम्पूर्ण अष्टम सर्ग। सामाजिक विधि-विधानों एवं धार्मिक विश्वासों की विशद झाँकी पञ्चम और सप्तम सर्ग में स्पष्ट है। श्रृंगार के दोनों रूप 'सम्भोग और वियोग' कुमारसम्भव में उद्दाम रूप में मिलते हैं।

हिमालय के प्रति कालिदास का अनुराग लोक-विश्रुत है। काव्यों और नाटकों में जहाँ थोड़ा भी अवसर मिला कि वे हिमालय दर्शन के लिए निकल पड़े। कुमार सम्भव में तो हिमालय की एक से बढ़कर एक मनोरम झांकियाँ प्रस्तुत की गयी है। चोटियों की ऊंचाई इतनी कि बादल उनके नीचे-नीचे घूमते और बरसते रहते हैं। गिरिजन जब ऊपर धूप से तप जाते हैं तो नीची चोटी पर जाकर बादलों की छाया में बैठ जाते हैं। निचली चोटी पर वर्षा से भीग जाते हैं तो ऊपर चढ़कर खुली धूप में अपने वस्त्र सुखा लेते हैं—

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।

उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥ १-५

रजनी का मुख (प्रारम्भ) है। चन्द्र- बिम्ब उसका स्पर्श कर रहा है। प्रदोष कालीन तिमिर उसकी किरणों में फँस कर खोया-सा जा रहा है। यह सारा दृश्य ऐसा लगता है जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रिया की केशराशि को एक हाथ से दबाये उसका मुँह चूम रहा हो। यहाँ शशि प्रेमी और रजनी प्रेमिका है। बिखरा अन्धकार उसके केश हैं और किरणें प्रेमी चन्द्र की उंगलियाँ। रजनी मुख, केश संचय और चुम्बति के सहारे कवि ने जो बिम्ब- विधान किया है उस पर कोई भी सहृदय निछावर हो सकता है। श्लोक देखिये—

अङ्गुलीभिरिव केश-संचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।

कुड्मलीकृत-सरोज-लोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी॥ ८-६३

ऐसे न जाने कितने प्राकृतिक सुषमा से मण्डित चित्र कुमारसम्भव में बिखरे हैं जिनमें कुछ तो आधुनिकतम काव्य के लिए भी नये लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मानवीय सौन्दर्य का तो कहना ही क्या । उसके तो वे अप्रतिम चितेरे हैं । प्रथम सर्ग के पार्वती-वर्णन प्रसंग में उसकी मनोरम झाँकी देखी जा सकती है । यह सौन्दर्य जैसा प्रसाधन-सज्जा के समय, वैसा ही अपने निरलंकृत रूप में भी आकर्षक है । पार्वती का यौवन 'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभि र्भिन्न मिवारविन्दम् ' की स्थिति में जितना मनोरम है वैसा ही भयंकर आतप और वर्षा के कष्ट सहन करता हुआ घोर तप की स्थिति में भी—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेध-निपात-चूर्णिताः ।

वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः ॥

५-२४

पार्वती कठोर तप में मग्न है । वर्षा की पहली बूँदे गिरती हैं उसकी पलकों पर । क्षणभर वे वहाँ थमती हैं । फिर ओठों पर चोट करती है । उसके पश्चात् ऊँचे उठे स्तनों के आघात से चूर-चूर हो कर लुढ़कती हुई उदर के गड्डों में गिरती हैं और अन्त में धीरे-धीरे नाभि में समा जाती है । यहाँ कवि ने पार्वती की धुली-धुली पलकों, ओठों, स्तनों, उदर की सलवटों और नाभि के सौन्दर्य की ओर इंगित किया ही है, वर्षा की बूँदों के भूमि पर गिर कर मार्ग बनाने, आगे बढ़ने के लिए संघर्ष करने और अन्त में किसी बड़े नाले या गड्ढे में समा जाने की ओर भी संकेत किया है ।

श्रृंगार के संयोग, और वियोग दोनों पक्षों की बड़ी कोमल और मनोहर झांकियाँ कुमारसंभव में देखने को मिलती हैं । स्नेह के प्रथम अंकुर के फूटने से लेकर अन्तिम विछोह तक की शायद ही कोई ऐसी मनःस्थिति हो, जिसकी ओर इस महाकवि का ध्यान न गया हो । सप्तर्षियों द्वारा विवाह के प्रस्ताव के समय उमा पिता के पास ही बैठी थी । अपने परिणय की चर्चा सुनकर उसका मन खिल उठा किन्तु एक ओर परम पूज्य ऋषि और दूसरी ओर पिता । हर्ष को व्यक्त करे भी तो कैसे ! कवि ने उसके हर्ष और लज्जा दोनों का निर्वाह कैसे कलापूर्ण ढंग से किया है ।

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नीचा सिर किये पिता के पास बैठी अपने लीला-कमल के पत्ते गिनती रही। खिला लीलाकमल आनन्द और प्रफुल्लता का तथा पत्ते गिनना लज्जा का मूर्तिमन्त रूप है।

त्वामामन्ति प्रकृतिं पुरूषार्थ प्रवर्तिनीम्।

तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरूषं विदुः।

यह स्थिति सांख्य से ऊँची है।

कुल मिलाकर कुमारसम्भव में वे सब बातें अपने कलात्मक रूप में उभर कर आयी हैं जिनसे कालिदास के समग्र कवि रूप का निर्माण हुआ है। समूचे काव्य में कोई ऐसा स्थल नहीं जिसमें उनकी उर्वर प्रतिमा और संवेदनशीलता के दर्शन न होते हों।

भारत का प्रथम बाल सेनानी : स्कन्द

प्राचीन भारत में कुमार- सेनानियों और योद्धाओं की एक दीर्घ श्रृङ्खला मिलती है। इस श्रृङ्खला की प्रथम कड़ी है स्कन्द, जिन्हें कुमार, गुह, कार्तिकेय षडानन, षाण्मातुर तथा दक्षिण में सुब्रह्मण्य आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसी श्रृंखला में आगे चलकर रघु, लव-कुश, अभिमन्यु, अश्वत्थामा, कुणाल और वसुमित्र प्रभृति अनेक सेनानायकों के नाम लिये जा सकते हैं। स्कन्द का व्यक्तित्व पौराणिक है तथापि यह नाम भारतीय जनता में ऐतिहासिक के समान समादृत रहा है। ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी से ही उनकी पूजा सामान्य जनता में प्रचलित हो चुकी थी। महर्षि पतञ्जलि (ई० पू० द्वितीय शती) के व्याकरण महाभाष्य में बार-बार शिव और विशाख के साथ स्कन्द की पूजा-प्रतिष्ठा और मूर्ति के उल्लेख मिलते हैं। मौर्य राजाओं ने शासन की ओर से ढलवाकर जिन मूर्तियों के विक्रय का व्यवसाय प्रारम्भ किया था, उनमें स्कन्द प्रमुख थे। आगे चलकर गुप्त सम्राटों ने तो उन्हें आराध्य ही बना लिया। सम्राट् चन्द्रगुप्त के ध्वज एवं मुद्राओं पर मयूर की पीठ पर बैठे सेनानी स्कन्द की प्रतिकृति रहती थी। गुप्तवंशीय सम्राट् स्कन्द गुप्त का नाम स्वयं इस श्रद्धा का निदर्शन है। दक्षिण भारत में तो आज भी सामान्य नगरों से लेकर गाँवों तक में सुब्रह्मण्य (स्कन्द) के मन्दिर मिलते हैं। कुमार० के ८से १७ सर्गों तक स्कन्द की वीरता की कथा वर्णित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्द के प्रति इतनी बड़ी श्रद्धा का कारण उनका आजीवन ब्रह्मचर्य और सेना-नायकत्व है। पौराणिक परम्परा के अनुसार वे शिव के द्वितीय पुत्र थे—गणेश के कनिष्ठ भ्राता, किन्तु वास्तविक अर्थ में शिव और पार्वती की एकमात्र सन्तान। वे कुमार-वन को अपना निवास स्थान बनाकर आजीवन अविवाहित रहे। इस वन में स्त्री का प्रवेश वर्जित था। यदि भूल से कोई स्त्री वहाँ आ जाती तो वह लता बन जाती थी अर्थात् उसे असंगवत् आचरण करना पड़ता था।

स्कन्द के जन्म की कथा भी रोचक है। महाशिव पुराण में उसका विशद-वर्णन है। कालिदास के कुमार-सम्भव नामक महाकाव्य का वर्ण्य विषय भी यही है। वर्तमान भारत में इस कथा का विशेष महत्त्व है। संसार में प्रारम्भ से ही दो वर्ग चले आये हैं—एक शिष्ट आदर्शवादियों और दूसरा मदोद्धत शक्तिवादियों का। ठीक जिस प्रकार तर्कोचित न्याय की बात न सुनकर शक्ति के मदातिरेक में कुछ राष्ट्र हमें ललकारते हैं उसी प्रकार एक समय तारक के नेतृत्व में असुरों ने इस देश के विवेकशील आदर्शवान् जनों को ललकारा था। न्यायी आदर्शवादी कभी भी कहीं बर्बरों से लोहा नहीं ले सके हैं—न इस देश में, न परत्र। फलत: वे ऐसी संकट की घड़ी में ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा इनमें सबसे बड़े विद्वान् एवं नि:स्पृह व्यक्ति थे। ब्रह्मा ने उन्हें परामर्श दिया कि किसी महान् ब्रह्मचारी योगी की ब्रह्मचारी सन्तान यदि सेनापतित्व स्वीकार करे तो असुरों पर विजय पायी जा सकती है। शिव सबसे बड़े योगी ब्रह्मचारी थे। किन्तु शिव विवाह क्यों करने लगे ? वे हिमालय पर रहते थे। यह हिमालय पूर्वैतिहासिक युग से भारत की उत्तरी सीमा का प्रहरी रहा है। कालिदास ने इसे 'पृथ्वी का मान-दण्ड' कहा है। इन्द्र, काम, वसन्त और नारदादि के सम्मिलित प्रयत्न से शिव का विवाह हुआ। यह कथा भारत में इतनी विख्यात है कि इसकी पुनरावृत्ति की आवशकता नहीं। इसमें केवल एक ही बात ध्यान देने की है कि इस विवाह का लक्ष्य सन्तानोत्पत्ति मात्र था। इसीलिए विग्रही अनंग की चितावेदी पर उसका निष्पादन हुआ। बाह्य स्नेह जब आन्तर बन गया तभी वह परिणय में परिणत हो सका। उधर तारक जो—

उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थित:

संसार में उपद्रव फैलाने के लिए धूमकेतु के समान उदित हुआ था, अपनी शक्ति बढ़ाता रहा और अन्त में इतना बलशाली हो गया कि उसकी राजधानी में सूर्य डर के मारे उतनी ही धूप फैलाता था जिससे उसकी बावड़ियों या तड़ागों के कमल खिल सकें। चन्द्रमा बारहों मास षोडश कलाओं से खिला रहता था। वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना ही चलता था कि लताओं के खिले फूल न झर सकें। ऋतुएँ उद्यानपाल के समान उसके उपवनों के शोभा-संभार-मात्र की साधक थीं। समुद्र रत्नों की भेंट लिए उसकी प्रतीक्षा करता था। वासुकि आदि नाग सिर पर मणिदीप लिए दीपधर का काम करते थे। इतनी सेवा-परिचर्या पाने पर भी वह तीनों लोकों को सताता रहता था, क्योंकि दुष्ट पुरूष उपकार से नहीं, सीधी चोट से ही मानता है:—

इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।

शाम्येत प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ॥

क्या यही स्थिति आज अनेक देशों की नहीं है ? स्वतन्त्र जनतन्त्र के नाम पर भारत ने सर्वात्मना जिनका समर्थन किया उनसे प्रत्युपकार क्या मिला ? यदि हम इस दृष्टि से विचार करें तो लगेगा जैसे तारक के बहाने कालिदास ने वर्तमान युग का ही चित्र उपस्थित किया है। वे कहते हैं—उससे कोई उपाय नहीं चलता। सन्निपात रोग में जैसे शक्तिशाली ओषधियाँ भी काम नहीं करतीं, वैसे ही कोई तर्क उस पर प्रभाव नहीं डालता। इसलिए अब एक ही उपाय शेष रह गया है—युद्ध। उसके लिए हमें एक सेनानी चाहिये, जो देव-सेना की रक्षा कर सके और जिसे अग्रणी बना कर इन्द्र शत्रुओं की जयश्री को बन्दी बनाकर ला सके:—

तदिच्छामि प्रभो स्त्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये।

गोप्तारं सुर- सैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित्।

प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो बन्दीमिव जयश्रियम् ॥

और तपती भूमि पर वर्षा की प्रथमधार के समान स्कन्द का जन्म हुआ। गङ्गा ने उसे आँचल में लिया। कृत्तिकाओं ने उसे धात्री बन कर पाला, अग्नि ने उसका तेज झेला। प्यार के कारण कृत्तिकाओं में विवाद हो जाता क्योंकि प्रत्येक कहती कि स्कन्द मेरा बेटा है। शिव-पार्वती इस अपूर्व वात्सल्य के दृश्य को देखते:—

ततः कुमारः सुमुदां निदानैः सबाललीला-चरितैर्विचित्रैः।

गिरीश-गौर्योर्हृदयं जहार मुदे न हृद्या किमुबालकेलिः ॥

वह कभी शिव के नन्दी के सींग खींच कर भाग जाता, कभी पार्वती के सिंह के अयाल पकड़ता, और कभी भृङ्गी की पतली चोटी पकड़कर तानता। कभी शिव को गोद में लेटे-लेटे उनके कण्ठ के सर्पों के दाँत एक, नौ, दस, पाँच, सात इस प्रकार गिनता और कभी शिव का जटा-जूट नीचे झुका कर उस पर स्थित चन्द्रखण्ड को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूमने लगता। इस प्रकार खेलते-कूदते बालक स्कन्द इतना बड़ा हो गया कि एक दिन वह अस्त्र-शस्त्रों से खेलने लगा और तब इन्द्र ने शिव के पास आकर-निवेदन किया, क्योंकि कुमार के कवचहर देख कर उसे विश्वास हो गया :—

ततः कुमारं कनकाद्रिसारं पुरन्दरः प्रेक्ष्य धृतास्त्र-शस्त्रम्,

महेश्वरोपान्तिक-वर्तमानं शत्रोर्जयाशां मनसा बबन्ध ॥

और तब इन्द्र से कहने लगा :—

निदाघधामक्लमविक्लवानां नवीनमम्भोदमिवौषधीनाम्,

सुनन्दनं नन्दनमात्मनो नः सेनान्यमेतं स्वयमादिशन्तम्।

महारणक्षोणिपशूपहारे कृते सुरे तत्र तवात्मजेन,

बन्दिस्थितानां सुदृशांकरोतु वेणिप्रमोक्षं सुरलोकएषः ॥

भगवन् ! आप अपने पुत्र स्कन्द को हमारा सेनापतित्व करने का आदेश दीजिए। आपका पुत्र हमारे लिए ऐसा ही सिद्ध होगा जैसे ग्रीष्म से सूखी हुई वनस्पतियों के लिए नवीन मेघ। जब आपका पुत्र संग्राम की भूमि में तारक को सियार आदि पशुओं को भेंट कर देगा तभी देवगण अपनी बन्दी बनायी हुई सुन्दरियों की वेणी खोल सकेगा। और कौन पिता अपने पुत्र को इतने बड़े सत्कार्य के लिये गद्गद कण्ठ से अनुज्ञा न देगा ? इन्द्र की प्रार्थना मानकर शिव और पार्वती दोनों ने बालक को सानन्द विदा किया। शिव ने कहाः—

पुरा मयाकारि गिरीन्द्र-पुत्र्याःप्रतिग्रहोयं नियतात्मनाऽपि,

तत्रैष हेतुः खलु तद्भवेन वीरेण यद्वध्यत एष शत्रुः ॥

अथोपपन्नं तदमी नियुज्य कुमारमेतं पृतना-पतित्वे,

निघ्नन्तु शत्रुं सुरलोकमेष भुनक्तु भूयोऽपि सुरैःसुरेन्द्रः ॥

मैं ब्रह्मचारी था। फिर भी मैंने पार्वती से इसलिए विवाह किया कि हमारी सन्तान आततायियों का दमन करे। आज वह दिन आया है। आप लोग इस कुमार को सेनानी बनाकर ले जाइये और शत्रु का वध कीजिये। और पार्वती ने शिव का अनुमोदन किया :—

गिरिजया मुमुदे, सुतविक्रमे सति न नन्दति का खलु वीरसूः ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरिजा पुत्र को युद्धक्षेत्र में भेज कर प्रसन्न हुई। कौन ऐसी वीर माता होगी, जो अपने पुत्र के पराक्रम पर आनन्दित न हो।

कालिदास के इस वर्णन का पुनः प्रत्यक्ष हमने सन् १९६२ के चीन-युद्ध और सन् ६५ के पाकिस्तान-युद्ध में किया, जब कि अस्पताल में घायल पड़ा युवक मिलने के लिए आये हुए माता-पिता से पहला वाक्य कहता था—"मैंने पीठ पर गोली नहीं खाई" और ८० वर्ष की दादी अपने तीन बेटों और आठों पोतों को प्रोत्साहित करती हुई पत्र लिखती थी, "खून की आखिरी बूँद तक लड़ना।" और तब हमें लगता था कि गिरिजा और स्कन्द की परम्परा अभी तक भारत में अविच्छिन्न है।

शासनं पशुपतेः स कुमारः स्वीकार शिरसावनतेन।

कुमार ने पिता का आदेश सिर झुका कर स्वीकार किया और सामान्य वेष छोड़ कर सैनिक-वेष धारण किया—"प्रस्थान कालोचित-चारुवेषः"। शिव ने आर्शीर्वाद दिया—जाओ, बेटा, शत्रु का विनाश करो और अमरों की स्थिति सुदृढ़ बनाओ।

जहीन्द्रशत्रुं समरेऽमरेश-पदं स्थिरत्वं नय वीर वत्स ।

पार्वती ने गोद में बिठा कर उसका आलिंगन किया और मस्तक सूँघते हुए कहा—जाओ बेटा, शत्रु को जीत कर मुझे वीर माता कहलाने की अधिकारिणी करो।

तमङ्कमारोप्य सुता हिमाद्रेराश्लिष्य गाढं सुतवत्सला सा।
शिरस्युपाघ्राय जगाद शत्रुं जित्वा कृतार्थी कुरु वीरसूं माम्॥

कुमार ने सेना का नेतृत्व हाथ में लेते ही देखा कि देवता भय के मारे अपने-अपने घर छोड़ कर भाग आये हैं और लौट कर वहाँ जाना नहीं चाहते। हर व्यक्ति आगे होते डरता है। सब दूसरे को आगे ठेल कर स्वयं पीछे ही जाना चाहते हैं। आज की भाषा में, उनका नैतिक बल नष्ट हो चुका था। तभी तो—

पुरोभवत्वं न पुरो भवामि नाहं पुरोगोऽस्मि पुरःसरस्त्वम्।

इत्थं सुरास्तत्क्षणमेव भीताः स्वर्गे प्रवेष्टुं कलहं वितेनुः।

और तब कुमार ने ढाढस दिया। आप लोग डरिये मत और तुरन्त अपने-अपने स्थान पर वापस चले जाइये। मैं शत्रु के दिखते ही इस स्थान पर उससे युद्ध करूंगा :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार के पास धनुष था, शक्ति थी और था मन से अधिक तीव्रगामी दुर्वार विजित्वर रथ। साथ में थे सैनिक वेष धारण किये हुए एवं अपने वाहनों पर आरूढ़ इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरूण, मरुत्, कुबेर, रूद्रगण आदि विदिध वाहिनीपति। यह बात ध्यान में रखने के योग्य है कि भारत के सभी देवता योद्धा हैं। वे शास्त्र और शस्त्र दोनों में निष्णात है, यहाँ तक कि स्कन्द की माता स्वयं सिंहवाहिनी और युद्धविशारदा है।

फिर क्या था ? युद्ध के नगाड़े बज उठे। उनकी ध्वनि से शत्रु की लक्ष्मी में कपकँपी उत्पन्न हो गयी। दिशाओं में प्रतिध्वनित होकर आकाश की कुक्षि को भरती हुई वह सब ओर फैल गयी। उस पर्वत पर रशों से पिसी हुयी, घोडों के खुरों की चोट खायी हुई, हाथियों के सूप जैसे कानों से सब ओर फैलायी हुई और ध्वज-पटों द्वारा उड़ाई हुई धूलि वायु के थपेड़े खाकर धीरे-धीरे आकाश में फैल गयी। ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, जिधर देखो उधर धूल ही धूल। पृथ्वी और आकाश के अन्तर को पाट देने वाली सैन्य-रज देखकर लोग तर्क करते थे कि शत्रु ऊपर से नीचे आ रहा है या नीचे से ऊपर जा रहा है। उस समय प्राणियों की दृष्टि न ऊपर जाती थी न नीचे, न आगे कुछ दिखाई पड़ता था और न नीचे। दायें-बायें कहीं भी नेत्र काम नहीं करते थे। उधर नगाड़ों की ध्वनि आकाश में विमानों के रव से प्रतिवर्धित होकर आकाश को गुँजा रही थी। उसकी भीषणता से दिग्गजों का झरता हुआ मद सूख गया था। कालिदास ने इस स्थिति को इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

सुरारि-लक्ष्मी-परिकम्प-हेतवो दिक्चक्रवाल प्रतिनादमेदुराः।
नभोऽन्त-कुक्षि-भरयो घ्नाःस्वना निहन्यमानैः पटहैर्वितेनिरे॥ १॥

क्षुण्णं रथैर्वाजिभिराहतं खुरैः करीन्द्र-कर्णैः परितः प्रसारितम्।
धूतं ध्वजैः काञ्चनशैलजंरजो वातैर्हतं व्योम समारूहत् क्रमात्॥२॥

विलोक्य धूली-पटलैर्भृशंर्भृतं द्यावा पृथिव्योरलमन्तरं महत्।
किमूर्ध्वतोऽधः किमधस्त ऊर्ध्वतो रजोऽभ्युपैतीति जनैरतर्क्यत॥३॥

नोर्ध्वंन चाधो न परो न पृष्ठतो न पार्श्वतोऽभूत् खलु चक्षुषोर्गतिः।
सूच्यग्रभेद्यैः पृतनारजश्चयैराच्छादिता प्राणिगणस्य सर्वतः॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महती सेना पृथ्वी को ढकती हुई अकाश की ओर बढ़ती चली। भीड़ में किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता था कि किधर, किस ओर जायँ। ऊँचे-ऊँचे घोडों की हींस, उद्दाम मदवाले हाथियों की चिंघाड़ और बड़े-बड़े रथों की नेमिध्वनि ने लोगों की साँस ही निरुद्ध कर दी। नीचे गड्ढे स्थल बन गये और ऊँचे स्थल गड्ढों में परिणत हो गये। बहुत से ऊँचे प्रदेश दौड़ते हुए घोडों के खुरों और हाथियों के पाँवों की चोट से समतल बन गये। इतनी विशाल सेना के सेनापति कुमार को दिखा कर तारक को देव-सेना के प्रमुखों ने समझाया कि कुमार का सामना करना कठिन है। तुरन्त उदित हुए सूर्य को संसार भर की भी तमोराशि नहीं दबा सकती। जानते नहीं जब स्कन्द बालक ही थे तभी उन्होंने सैकड़ों ऊँची-ऊँची चोटियों से प्रकाश को ढँक लेने वाले क्रौंच पर्वत को बाणों से छेद-छेद कर उसमें रन्ध्र (दर्रा) बना दिया जो क्रौंच-रन्ध्र के नाम से विख्यात हैं। तब तारक ने क्रोधाविष्ट होकर उत्तर दिया, 'मूर्खों ! चार दिन के छोकरे को आगे करके स्वयं आकाश में घूमते हुए तुम लोग कार्तिक मास के कुत्तों की तरह क्यों भौंक रहे हो ?' शाम के सियारों की तरह क्यों चिल्ला रहे हो ? यह छोकरा तुम्हारे साथ पड़ कर इस तरह मारा जायगा जैसे चोरों के बीच पड़ कर अचोर मारा जाता है और फिर क्या था :—

पत्तिः पत्तिमभीयाय रणाय रथिनां रथी।

तुरङ्गस्थं तुरङ्गस्थो दन्तिस्थं दन्तिनि स्थितः ॥ १ ॥

निर्दयं खड्ग-भिन्नेभ्यः कवचेभ्यः समुत्थितैः।

आसन् व्योमदिशस्तूलैः पलितैरिव पाण्डुराः ॥ २ ॥

विसृजन्तो मुखैर्ज्वाला भीमा इव भुजंगमाः।

विसृष्टाः सुभटैः रुष्टैर्व्योम व्यानशिरेः शराः ॥ ३ ॥

पदैल से पदैल, रथी से रथी, घुड़सवार से घुड़सवार और गजारोही से गजारोही भिड़ गये। (उस समय निहत्थी भोली ग्रामीण जनता पर बम बरसाने का रिवाज नहीं था जैसा कि अम्बाला आदि में बम बरसा कर पाकिस्तान ने या उत्तरी वियतनाम पर अमेरिका ने प्रारम्भ किया था)। तलवारों से काट-काट कर चिथड़े किये कवच रूई की तरह आकाश में उड़ने लगे। मुख से जहरीली लपटें उगलते हुए भयंकर भुजगों जैसे बाण आकाश को भरने लगे। एक दूसरे पर प्रहार करने वाले धनुर्धारियों के बाण विरोधी को मारते हुए वेग के कारण बिना खून लगे सूखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही शरीर के पार-जाकर दूर भूमि में धँस जाते थे। ऊपर उड़ते हुए गिद्धों ओर श्येनों के बहाने आकाश चीख उठा। कोश से बाहर नंगी तलवारे आकाश में चमचमाती हुयीं अपने भाग्य पर हँसने लगीं। चिपके हुए शोणित के साथ वे युद्ध की रजोन्धकारित भूमि में विद्युत-सी चमकती थी। ऊपर उछाले जाते हुए कुन्त (भाले) यम की लपलपाती जिह्वा के समान दिखायी दे रहे थे। चक्री लोगों के दमदमाते चक्र नभ में सैंकड़ों सूर्यों जैसे घूम रहे थे। आखिर युद्ध-स्थल खून से भर गया। यहाँ तक कि उसमें रथ उतराने लगे तो भी योद्धा सामने रिपु को देख कर हुंकार के साथ बाण छोड़ने से नहीं चूकते थे। तलवार से सिर कट जाने के कारण घोड़े से गिरते हुए योद्धा गिरने से पहले प्रतिभट को तलवार से साफ कर देते थे। शस्त्रों से कटे हुए वीरों के सिर दाँतों से ओठ चबाते हुए भयंकर रूप में शत्रु के पीछे दौड़ते थे। हाथी द्वारा सूंड से पकड़ कर फेंकने के लिए उठाया हुआ योद्धा गिरने से पहले तलवार से हाथी का सिर काट लेता था। घुड़सवार सामने के शत्रु को साँगे से मार कर, गिरते समय उसके फेंके हुए बर्छे की छाती में चुभन की ओर ध्यान हीं नहीं देता था।

इस भयंकर युद्ध में कुमार ने तारक की चपेट में आये हुए बन्दीकृत इन्द्र और उसके सहयोगियों को अनेक बार अपने बल से छुड़ाया। तब तारक ने सोचा कि इनको छोड़कर कुमार पर ही प्रहार करना उचित होगा। वह सीधा स्कन्द के सामने पहुँचा और उसे ललकारता हुआ बोला, 'अरे तपस्वी के छोकरे ! अपनी भुजाओं के बल का गर्व छोड़ दे और इन्द्र की सहायता से दूर हट जा। शस्त्रों के भारी बोझ से तेरी नन्हीं-नन्हीं हथेलियाँ थक गयी होंगी। अपने माँ-बाप का तू अकेला बेटा है। मेरे कठोर बाणों से मृत्यु का ग्रास न बन। जा और माँ-बाप की गोदी में विश्राम कर :—

रे शंभु-तापस-शिशो। बत मुञ्च मुञ्च
दोर्गर्वमत्र विरम त्रिदिवेन्द्र-कार्यात्।
शस्त्रैः किमत्रभवतोऽनुचितैरतीव
बालत्व-कोमल-भुजा-तुल-भार-भूतैः ॥
एकस्त्वमेवतनयोऽसि गिरीश-गौर्योः
किं यासि कालविषयं विषमैः शरैस्त्वम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रामतोऽपसर जीव पितुर्जनन्या

स्तूर्णं प्रविश्य वरमङ्कतलं निधेहि ॥

तब शान्त और नम्रभाव से स्कन्द ने उत्तर दिया, 'हे दैत्यराज ! आपने गर्वपूर्वक जो कुछ कहा है वह आपके लिए उचित ही है, किन्तु आप शस्त्र पकड़िये । मैं आपका बाहुबल देखता हूँ ।' फिर क्या था । दोनों ओर से बाणों की मूसलाधार वर्षा हुई । बाणों के ज्वलन, शमन, घन, विद्युत्, मरूत् आदि जितने भेद और उनके जितने प्रहार-विधान थे, सबका प्रयोग हुआ और अन्त में:—

उद्योतिताम्बर-दिगन्तमंथाशु-जालैः शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य ।
हर्षाश्रुभिः सह समस्त दिगीश्वराणां शोकोष्ण-वाष्प-सलिलैः सह दानवानाम् ।

अपनी चमक से आकाश और दिशाओं को कौंधती हुयी स्कन्द की शक्ति तारक के हृदय पर लगी और वह दानवों के शोकाश्रुओं एवं देवों के आनन्द-वाष्प के साथ भूमि पर गिर गया ।

रघुवंश महाकाव्य

कालिदास ने रघुवंश की रचना बौद्धों के दीपवंश तथा कृष्णोपासक वैष्णवों के हरिवंश को ध्यान में रख कर की । दीपवंश बौद्ध साहित्य की प्रथम रचना है जिसमें पालिभाषा में लंका का प्रारम्भ काल से लेकर राजा महासेन के शासन काल (३५५-३५२ ई.) तक का इतिहास वर्णित है । यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ कि इसके अनुकरण पर महावंश आदि पन्द्रह प्रसिद्ध पालिकाव्य लिखे गये । महाभारत का खिलपर्व या खिल पुराण हरिवंश जिसकी वैष्णवों में बड़ी प्रतिष्ठा है, तीसरी-चौथी शती ईसवी के लगभग लिखा गया । इस प्रकार यह अनुमान करना सरल है कि रघुवंश की रचना के समय ये दोनों ग्रन्थ कालिदास के समक्ष थे । रघुवंश की योजना भी दीपवंश से मिलती जुलती है । रघुवंश की रूप रेखा के लिए दीपवंश और कथा की प्रेरणा के लिए हम हरिवंश को प्रेरक मान सकते हैं । वैष्णव-भक्ति के चरमोत्कर्ष का यह काल था जब सौर, ब्राह्मण शैव, और शाक्त पुराणों तक के स्वरूप में परिवर्तन कर उन्हें वैष्णव रूप दिया गया था । ब्रह्मा, विष्णु, शिव की त्रयी के ऊपर परमविष्णु की कल्पना की गयी और विष्णु को सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठत किया गया । भू पर कृष्ण उनके सविग्रह रूप में अवतीर्ण माने जाने लगे थे । पूर्व भारत में, कृष्ण की परमोच्च प्रतिष्ठा के बाद, धीरे-धीरे राम को विष्णु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में मान्यता मिलने लगी थी यद्यपि उनका विष्णु के अवतार के रूप में पूर्ण स्वीकार लगभग चौथी ईसवी से ही प्ररम्भ हुआ। इसके पूर्व कृष्ण और बलराम की मूर्तियाँ तो मन्दिरों में प्रतिष्ठित और पूजित होती थीं किन्तु राम की नहीं। राम की मूर्तियों का प्रचलन इसी काल में हुआ और पुराणों में उन्हें कृष्ण से कुछ नीचे किन्तु अवतार के रूप में स्थान मिल गया। वह मर्यादापुरूषोत्तम के रूप में पूजे जाने लगे। राम के चरित की विशद चर्चा रामायण में हो चुकी थी। पुराणों में वह दोहरायी जा चुकी थी। उसके एक अंश को लेकर भास नाटक लिख चुके थे। जिनका सफल रंग-प्रयोग पहले हो चुका था। इसलिए कालिदास ने राम के पूर्वापर वंश (कालिदास के शब्दों में अन्वय) का वर्णन अधिक उपयुक्त समझा। इसमें उन्हें अपनी काव्य प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए ही नहीं, अपनी विविध मान्याताओं और आस्थाओं को अभिव्यक्ति देने के लिये भरपूर अवकाश था। दो वंश-काव्य उनके सम्मुख थे।

वाल्मीकि और कालिदास दोनों ने अपने महाकाव्यों का प्रणयन कुछ आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए किया है। किन्तु जहाँ वाल्मीकि को अपने काव्य के नायक की खोज में नारद की सहायता लेनी पड़ी वहाँ कालिदास को उनके नायकों के गुणों की प्रसिद्धि ने स्वयं होकर प्रेरित किया। वाल्मीकि पृच्छा करते हैं—कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान्- धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्चसत्य वाक्यो दृढव्रतः ॥ रामा. १-२

किन्तु कालिदास कहते हैं—

रघूणामन्वयं वक्ष्येतनुवाग्विभवोऽपि सन्।

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः। रघु. १

वाल्मीकि राम के चरित्र वर्णन के लिए स्वयं को 'तनुवाग्विभव' नही कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि रामायण के प्रणयन और रघुवंश की रचना के अन्तराल में इस वंश की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो चुकी थी। रघुवंश के जिन गुणों ने कालिदास की लेखनी को प्रेरित किया वे हैं—

(१) आजन्मशुद्धता अर्थात् निषेकादि- सर्वसंस्कार- संम्पन्नता।

(२) कार्य सिद्धि पर्यन्त कर्म कारिता अर्थात् सफल कार्यारम्भता।

(३) समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासकत्व अर्थात् एवच्छत्र साम्रज्य ।

(४)स्वर्ग तक रथ की गति की अवाधता अर्थत् इन्द्र की सहचारिता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)शास्त्र-विधि के अनुसार यज्ञ करना।

(६)याचकों की इच्छा को सम्मानसहित पूर्णकरना।

(७)अपराधियों को नियमानुसार दण्डित करना।

(८)समय पर प्रबोधित (जागरूक या जाग्रत्) रहना।

(९) धन का संग्रह दानार्थ या परोपकारार्थ ही करना।

(१०) असत्य वाक्य मुख से न निकल जाय इसलिए वाक्संयम।

(११) अन्य राज्यों को लोभ के कारण नहीं, अपितु केवल यश के लिए जीतना।

(१२) विवाह और पत्नी-संपर्क काम की पूर्ति के लिए नहीं, प्रत्युत केवल सन्तान के लिये करना।

(१३) शैशव में विद्याभ्यास, यौवन में विषयोपभोग, वार्धक्य में वानप्रस्थ और अन्त में योग के द्वारा शरीर त्याग। इस प्रकार चारों आश्रमों का यथाविधि सेवन करना।

ये रघुवंशियों की विशेषतायें थी जो केवल इसी वंश में पायी जाती थीं। यह सूर्य या विवस्वान् से प्रारम्भ होने के कारण सूर्यवंश कहलाता था। सूर्य इसके इष्ट देवता थे। सूर्य के पुत्र मनु इस वंश के आदि पुरूष थे। वह मनीषियों के द्वारा पूजित और प्रथम पृथिवी-पति भी थे। रघुवंश के प्रारम्भ में ११वें श्लोक तक कवि ने यह बातें स्पष्ट कह दी हैं। आगे चलकर उन्होंने इसे सूर्यवंश तो अनेक वार कहा, इक्ष्वाकुवंश भी कहा किन्तु मनु की चर्चा आदि रघुवंशी के रूप में नहीं की। साथ ही इस वंश के राजाओं को इक्ष्वाकुवंशीय कहते हुए भी (३-७०) इक्ष्वाकु के विषय में कोई चर्चा नहीं की। आश्चर्य की बात तो यह कि ग्रन्थ का नाम भले ही रघुवंश हो किन्तु काव्य का प्रारम्भ महाराज दिलीप की जीवन कथा से हुआ है। यह बात अवश्य है कि उन्होंने दिलीप के जीवन की केवल एक ही महत्त्पूर्ण घटना तक स्वयं को सीमित रखा है। संभवत: रामायण के दशरथ के साथ दिलीप भी ग्रन्थ के नायक के प्रभव के निमित्त के रूप में वर्णित किये गये हैं। वैसे रामायण में राम की तुलना में दशरथ का व्यक्तित्व कहीं छोटा है किन्तु दिलीप के व्यक्तित्व के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। रघुवंश के दिलीप की गुणातिशयिता और तेजस्विता रघु से कम नहीं है। रामायण से मिलाकर देखें, तो उनका व्यक्तित्व राम के समकक्ष सा लगता है। आइये दिलीप के गुणों को देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलीप–

१. चौड़े बड़े वक्ष और बैल के समान ऊँचे, पृथुल कन्धों, बड़ी बड़ी भुजाओं और शाल वृक्ष के समान ऊँचाई से सम्पन्न, क्षत्रियोचित कर्म-पराक्रम, एवं शौर्य के अनुकूल शरीर वाले थे।

२. अन्य सब से अधिक बल और सब को अभिभूत करने वाले तेज से युक्त।

३. जैसा शक्तिमान् शरीर वैसी ही बलवती प्रज्ञा, जैसी प्रज्ञा वैसा ही शास्त्राभ्यास, जैसा शास्त्राभ्यास वैसे ही कर्म और जैसे कर्म वैसी ही फलसिद्धि और उन्नति।

४. एक ओर तेज और प्रताप तथा दूसरी ओर शील सौजन्य की मृदुता। इन दोनों राजगुणों के कारण अनुयायियों और आश्रितों के लिए अविजेय और साथ ही, आश्रयदाता।

५. उसकी प्रजा मनु द्वारा स्थापित जीवन मार्ग से लेश-मात्र विचलित नहीं हुई।

६. वह प्रजाओं की उन्नति और कल्याण के लिये ही उनसे कर लेते थे।

७. यद्यपि उसके पास विपुल सेना थी फिर भी उसकी कार्य सिद्धि शास्त्रों में निष्णातबुद्धि और धनुष्-बाण पर ही आश्रित थी।

८. विचार, आकार और इङ्गित का पता किसी को नहीं चलता था। उसके कार्यों का पता फल से ही चल पाता था।

९. निर्भय होकर आत्मरक्षा, बिना हड़बड़ी के धर्म (कर्तव्यों) का निर्वाह, बिना लोभ लालच के धन-ग्रहण और बिना आसक्ति के सुख भोग।

१०. ज्ञान होने पर भी मौन, शक्ति रहने पर भी क्षमा,दान देने पर भी प्रशंसा से बचना। इस प्रकार एक गुण दूसरे का सहचर-सा दिखता था।

११. विषय में अनासक्ति, विद्याओं में पारदृश्वता और धर्म में, अनुरक्ति। इनके कारण वह बुढ़ापे के बिना ही वृद्ध(बड़े) दिखते थे।

१२. प्रजाओं का रक्षण, भरण और विनयाधान (शिक्षण) करने के कारण वह उनके पिता थे।

१३. किसी को दण्ड दिया तो केवल समाज-व्यवस्था के लिये और विवाह किया तो सन्तान के लिए। इसलिए उनके अर्थ और काम भी धर्म ही थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४. जैसे इन्द्र पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करने के लिए द्यौ का दोहन करता है—जल बरसाता है, वैसे ही वह यज्ञों के लिए पृथिवी का दोहन करते थे—प्रजा से कर वसूल करते थे। इस प्रकार वह और इन्द्र परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा दोनों लोकों को धारण करते थे।

१५. उन के राज्य में तस्करता केवल शब्द में रह गयी थी। कोई कुछ चुराता नहीं था। इसलिए उनका यश किसी राजा ने नहीं चुराया।

१६. शिष्ट व्यक्ति विरोधी भी हो तो उन्हें प्यारा लगता था जैसे रोगी को कड़वी औषधि। और प्रिय व्यक्ति यदि दुष्ट हो तो वह उसे साँप-काटी उँगली की तरह अलग कर देते थे।

१७. उन्हें ब्रह्मा ने पाँचों महाभूतों (पृथिवी,जल तेजस्, वायु और आकाश) की कारण सामग्री से बनाया था इसीलिए उसके सारे गुण परोपकार के काम आते थे।

१८. वह पृथ्वी के एक छत्र राजा थेऔर पृथ्वी पर ऐसे शासन करते थे मानों वह एक नगरी हो।

रघुवंश के प्रथम सर्ग(१३ से ३० तक) में कालिदास ने दिलीप के निजी (वैयक्तिक) तथा राजा के रूप में उसके गुणों का वर्णन किया है।

रामायण के राम और रघुवंश के दिलीप

दिलीप (रघु. प्रथम सर्ग)	राम—(रामा.अयो. प्रथम सर्ग)
(१) व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः। (१३) आत्मकर्मक्षमंदेहंक्षात्रो धर्म इवाश्रितः(१३)	(१) रूपोपपन्नश्च वीर्यवान् (९) तरूणो वाग्मी वपुष्मान् (१८) कुलोचित मतिः क्षात्रं धर्मं बहुमन्यपते(१६)
(२) सर्वातिरिक्त- सारेण सर्व तेजो ऽभिभाविना- स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरूरिवात्मना। (१४)	२. भूमावनुपमः (९) लोके पुरूष- सारज्ञः (१८) श्रैष्ठ्यं चास्त्र- समूहेषु (२७) लोकेऽतिरथ- संमतः— अमिततेजाः (८) अभियाता प्रहर्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	च सेनानयविशारदः(२९) अप्रधृष्य- पराक्रमः (३३)।
(३) आकार- सदृश- प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः। आगमैः सदृशारम्भः (१५) शास्त्रेष्क्कुण्ठिता बुद्धिः। (१९)	(३) उत्तरोत्तर युक्तीनां वक्ता वाच स्पतिर्यथा(१७) बुद्ध्या बृहस्पते स्तुल्यः(३१) सर्व- विद्या- व्रतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित् स्मृतिवान् प्रतिभानवान् (२०) लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः(२२) (४) शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च
(४)भीम- कान्तैर्नृप-गुणैः स बभूवो- पजीविनाम् अधृष्य श्चाभिगम्यश्च (१६)	(४) अमोघ- क्रोध- हर्षश्च (२३) अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरा सुरैः (२९) नावसेयश्च भूतानाम्(३०) तथा सर्व प्रजाकान्तैः प्रीतिं संजननैः पितुः गुणैर्विरूरूचेरामः (३२) वृद्धिकामो हिलोकस्य सर्वभूतानुकम्पकः- मत्तः प्रियतरो लोके पर्यज्यइव (३७)
(५) तस्य संवृत- मन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च (२०)	(५) निभृतः संवृताकारो गुप्त मन्त्रः सहायवान्(२३)
(६) ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौत्यागे श्लाघा- विपर्ययः(२२)	(६) उच्यमानोऽपि परूषं नोत्तरं प्रति पद्यते(१०) वीर्यवान्नच वीर्येण महतास्वेन विस्मितः(१३) नाश्रेयसि रतो यश्चनविरूद्धकथा- मतिः(१७)
(७) अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः -तस्यधर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा बिना (२३)	(७) शीलवृद्धै र्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः- कथयन्नास्त वैनित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि(१२) दीनानुकम्पीधर्मज्ञो नित्यंप्रग्रह वाग्छुचिः (१५) दृढभक्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	स्थिरप्रज्ञोनासद्वादी न दुर्वचः निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोष- परदोष वित्(२४)
(८) स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्-अप्यर्थकामौतस्यासन् धर्म एवमनीषण: ।(२५) प्रजानामेवभूत्यर्थं सताभ्यो वलिमग्रहीत्(१८) दुदोहगां स यज्ञाय(२६) तथाहि सर्वे तस्यासन्परार्थैक फलागुणा:(२९)	(८) सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च। आय कर्मण्युपायज्ञ: संदृष्ट व्ययकर्मवित् (२४) वृद्धि कामोहिलोकस्य सर्वभूतानु कम्पक:(३७)
(९) जुगोपात्मानमत्रस्त: ।	(९) महीधर- समोधृत्याम्(३८)

किन्तु यह बात आश्चर्यजनक है कि कवि ने दिलीप जैसे प्रतापी राजा के नाम पर अपने महाकाव्य का नाम न रख कर उनके पुत्र रघु के नाम पर रखा । जबकि यह वस्तुत: दिलीप वंश है । कालिदास ने रघु की जो वंशावली दी है, उसका आधार भी स्पष्ट नहीं है । भिन्न भिन्न पुराणों में सूर्यवंशीय राज परम्परा एक दूसरे से भिन्न है और जो एक पुराण में पिता है वह दूसरे में पुत्र बन गया है । निदर्शन के लिए कालिदास, भागवत पुराण, विष्णु पुराण और पद्मपुराण में प्राप्त वंशावलियों में कितनी भिन्नता है यह निम्न तालिका में स्पष्ट है—

रघुवंशीय राजाओं की वंशावली

कालिदास	भागवत	विष्णुपुराण	पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड)
१. दिलीप	१. मरीचि	१. कश्यप	१. कश्यप
२. रघु	२. कश्यप	२. विवस्वान्	२. विवस्वान्
३. अज	३. विवस्वान्	३. मनु (वैवस्वत)	३. मनु
४. दशरथ	४. मनु	४. इक्ष्वाकु	४.इक्ष्वाकु
५. राम	५. इक्ष्वाकु	५. ज्येष्ठ (अज्ञातनामा)	५. विकुक्षि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. कुश	६. विकुक्षि	६. ककुत्स्थ	६. ककुत्स्थ
७. अतिथि	७. ककुत्स्थ	७. सुयोधन	७. सुयोधन
८. निषध	८. पुरंजय	८. पृथु	८.पृथु
९. नल	९. पृथु	९. विश्वावसु	९. विश्वावसु
१०. नभम्	१०. विश्वरन्धि	१०. आर्द्र	१० आर्द्र
११. पुण्डरीक	११. चन्द्र	११. युवनाश्व	११. युवनाश्व
१२. क्षेमधन्वा	१२. युवनाश्व	१२. शावस्त	१२. शावस्त
१३. देवानीक	१३. शावस्त	१३.वृहदश्व	१३. वृहदश्व
१४. अहीनगु	१४. वृहदश्व	१४. कुवलयाश्व	१४. कुवलयाश्व
१५. पारियात्र	१५. कुवलयाश्व	१५. धुन्धमार	१५. दृढाश्व
१६. शिल	१६. धुन्धुमार	१६. दृढाश्व	१६. प्रमोद
१७. उन्नतनाभ	१७. दृढाश्व	१७. प्रमोद	१७. हर्यश्व
१८. वज्रनाभ	१८. हर्यश्व	१८. हर्यश्व	१८.निकुम्भ
१९. शङ्खण	१९. निकुम्भ	१९. निकुम्भ	१९. संहताश्व
२०. व्युषिताश्व	२०. वर्हणाश्व	२०. संहताश्व	२०. रणाश्व
२१. विश्वसह	२१. कृशाश्व	२१. रणाश्व	२१. युवनाश्व
२२. हिरण्यनाभ	२२. सेनजित्	२२. युवनाश्व	२२. मान्धाता
२३. कौसल्य	२३. युवनाश्व	२३. मान्धाता	२३. पुरुकुत्स
२४. वसिष्ठ	२४. मान्धाता	२४. पुरुकुत्स	२४. संभूत
२५. पुत्र	२५. पुरुकुत्स	२५. संभूत	२५. संभूति
२६. पुष्य	२६. त्रसद्दस्यु	२६. संभूति	२६. त्रिधन्वा
२७. ध्रुवसन्धि	२७. हर्यश्व	२७. त्रिधन्वा	२७. त्रैधारुण
२८. सुदर्शन	२८. आरुण	२८. त्रैधारुण	२८. सत्यव्रत
२९. अग्निवर्ण	२९. सत्यव्रत	२९. सत्यव्रत	२९. सत्यरथ
	३०.त्रिशङ्कु	३०. सत्यरथ	३०. हरिश्चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१. हरिश्चन्द्र	३१. हरिश्चन्द्र	३१. रोहित
३२. रोहित	३२. रोहित	३२. वृक
३३. हरित	३३. वृक	३३.वाहु
३४. भरुक	३४. वाहु	३४. सगर
३५. वृक	३५. सगर	३५. असमंजस
३६. वाहुक	३६. असमञ्जस	३६. प्रंशुयान्
३७. सगर	३७. अंशुमान्	३७. दिलीप
३८. असमञ्जस	३८. दिलीप	३८. भगीरथ
३९. अंशुमान	३९. भगीरथ	३९. नाभाग
४०. दिलीप	४०. नाभाग	४०. अम्बरीष
४१. भगीरथ	४१. अम्बरीष	४१. सिन्धु द्वीप
४२. खट्वाङ्ग	४२. सिन्धुद्वीप	४२. अयुतायु
४३. दीर्घवाहु	४३. अयुतायु	४३. ऋतुपर्ण
४४. रघु	४४. ऋतुपर्ण	४४. कल्माषपाद
४५. पृथुश्रवा	४५. कल्माषमाद	४५. सर्वकर्मा
४६. अज	४६. सर्वकर्मा	४६. आरण्य
४७. दशरथ	४७. आरण्य	४७. रघु
४८. राम	४८. निघ्न	४८. निघ्न
४९. कुश	४९. रघु	४९. दिलीप
५०. अतिथि	५०. दिलीप	५०. अज
५१. निषध	५१. अज	५१. दीर्घबाहु
५२. नल	५२. दीर्घबाहु	५२. प्रजापाल
५३. पुण्डरीक	५३. प्रजापाल	५३. दशरथ
५४. क्षेमधन्वा	५४. दशरथ	५४. राम
५५. देवानीक	५५. राम	५५. कुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६. अनीह	५६. कुश	५६. अतिथि
५७. पारियात्र	५७. अतिथि	५७. निषध
५८. वलस्थल	५८. निषध	५८. नल
५९. वज्रनाभ	५९. नल	५९. नभस्
६०. खगण	६०. नभस्	६०. पुण्डरीक
६१. विधृति	६१. पुण्डरीक	६१. क्षेमधन्वा
६२. हिरण्यनाभ	६२. क्षेमधन्वा	६२. देवानीक
६३. पुष्प	६३. देवानीक	६३. अहीनगु
६४. ध्रुवसन्धि	६४. अहीनगु	६४. सहस्राश्व
६५. सुदर्शन	६५. सहस्राश्व	६५. चन्द्रावलोक
६६. अग्निवर्ण	६६. चन्द्रावलोक	६६. तारापीड
६७. मरु	६७. तारापीड	६७. चन्द्रगिरि
	६८. चन्द्रगिरि	६८. चन्द्र
	६९. चन्द्र	६९. श्रुतायु
	७०. श्रुतायु	

इन चारों सूचियों में पर्याप्त अन्तर है। इनमें तीन तो प्रमुख वैष्णव पुराणों की हैं। पद्म और विष्णु पुराण में सादृश्य है किन्तु किसी में भी दशरथ से ऊपर की पीढ़ियों का कालिदास से मतैक्य नहीं है। विवस्वान् के पुत्र मनु, सगर, भगीरथ, मरीचि, कश्यप, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ, त्रिशङ्कु नामों का उल्लेख उन्होंने अवश्य किया है किन्तु उनके पौर्वापर्य की जानकारी उन्होंने नहीं दी है। राम की परवर्ती पाँच पीढ़ियाँ विष्णु और पद्म पुराण में कालिदास से मेल खाती हैं। भागवत की रचना दक्षिण भारत में हुई। काल का अन्तराल इतना है कि सूतगण नामों से तो परिचित रहे किन्तु पौवापर्य के विषय में उन्हें स्थानीय श्रुति- परम्परा का ही आधार ग्रहण करना पड़ा। पुराणों में सूर्यवंश के ही नहीं, अन्य राजवंशों के विषय में भी मत-वैभिन्य है। मेरे लिए यह कह सकना कठिन कि कालिदास की सूची का आधार क्या था। यों भी उनका उद्देश्य पुराणों से भिन्न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुवंशीय राजाओं की चरितावली—

दिलीप चरित—

महाराज दिलीप की, जिनके गुणों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है अनेक पत्नियाँ थीं किन्तु उनके बीच मगध वंश की सुदक्षिणा को सम्राज्ञी का पद प्राप्त था। दिलीप उनका सर्वाधिक सम्मान करते थे। काफी समय बीत जाने पर भी जब उनके सन्तान नहीं हुई तो दिलीप ने राज्य का भार सचिवों को सौंप दिया और स्वयं गुरु वसिष्ठ के आश्रम को चले गये। पत्नी साथ थी। मार्ग में याज्ञिकों के आशीर्वाद तथा ग्रामवासियों के उपहार को स्वीकार करते हुए वे दोनों सायं वेला में महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुँच गये। वहाँ मुनियों ने उनका सत्कार किया। सायं-विधि के समाप्त होने पर वे वसिष्ठ और उनकी पत्नी अरुन्धती से मिले। उनका चरण स्पर्श किया। महर्षि ने उनका कुशल क्षेम पूछा। दिलीप ने उनके प्रतिश्रद्धा व्यक्त करते हुए बतलाया आपके ब्रह्मतेज का ही फल है कि राज्य में किसी प्रकार कष्ट नहीं है किन्तु हम दोनों के कोई सन्तान नहीं है। यह पीड़ा हमारे लिये असह्य है। आप इसका प्रतिविधान कीजिये। इक्ष्वाकुओं को सारी दुर्लभ सिद्धियाँ आपसे ही प्राप्त होती आयी हैं। तब वसिष्ठ ने प्रणिधान द्वारा सन्तति के निरोध का कारण जानकर राजा से कहा—काफी समय पहले जब तुम इन्द्र की पूजा कर पृथ्वी को लौट रहे तो तुम्हारे मार्ग में कामधेनु कल्पवृक्ष की छाया में बैठी हुई थी। किन्तु तुम शीघ्रता में थे क्योंकि तुम्हारी यह पत्नी सुदक्षिणा ऋतुस्नाता होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। उस हड़बड़ी में तुम कामधेनु को प्रणाम करना भूल गये। इस पर धेनु ने तुम्हें शाप दिया कि जिस कारण से तुम मेरी अवमानना कर जा रहे हो वह सफल नहीं होगा और मेरी सन्तान की आराधना किये बिना तुम्हारे सन्तान नहीं होगी। उस समय आकाश गंगा के तीव्र नाद के कारण तुम उस शाप को नहीं सुन सके। कामधेनु तो इस समय वरूण के दीर्घसत्र यज्ञ के लिए पाताल में है। इसलिए तुम दोनों उसकी पुत्री नन्दिनी की सेवा कर उसे प्रसन्न करो। वह तुम्हारी कामना को पूर्ण कर सकती है। इसी समय नन्दिनी वन से लौटी। पाटलरंग की इस धेनु के मस्तक पर श्वेत रोमराजि शोभित थी। उसे देख कर महर्षि ने कहा—राजन्। नाम लेते ही यह धेनु यहाँ आ गयी है इसलिए अब सिद्धि को निकट ही समझो। तुम वन में इस का अनुगमन करो। यह चले तो चलो, खड़ी हो तो खड़े हो जाओ, बैठे तो बैठ जाओ और जब यह जल पी ले तो तुम भी जल ग्रहण करो। तुम्हारी पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातः इसकी पूजा करे और बन तक इसके पीछे जाय तथा सांय वेला में लौटने पर आगे बढ़ कर इसका स्वागत करे। इस प्रकार तुम्हारे विघ्न नष्ट हो जायँगें। राजा ने ऋषि के आदेश को स्वीकार किया और वह उनके द्वारा बतायी हुई पर्णशाला में कुशों की शय्या पर जा कर सो गये।

गो-सेवा—

अगले दिन वह ऋषि के निर्देशानुसार नन्दिनी की गन्ध माल्य से अर्चना कर और बछड़े को उसका दूध पिलाकर वन में चराने निकले। वह खड़ी होती तो खड़े हो जाते, चलती तो चलने लगते, बैठती तो आसन जमा कर बैठ जाते और जल पीती तो स्वयं भी जल ग्रहण करते। सायं वेला में जब वह लौटती तो सुदक्षिणा अक्षत-पात्र हाथ में लेकर उस की प्रदक्षिणा करती और उसके मस्तक पर रोली अक्षत लगाती। फिर वे दोनों सन्ध्या वन्दन करते और गुरू तथा उनकी पत्नी के चरण दबाते। सान्ध्य दोहन के बाद वे फिर नन्दिनी के पास जाकर गोशाला में बलि- प्रदीप रखते। उसके सोने के पश्चात् सोते और उठने के पश्चात् उठ जाते—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनवन्ध- धीरः।

जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्। रघु. २-६

तामन्तिकन्यस्त- वलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणी- सहायः।

क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्। रघु. २-२४

इस प्रकार सेवा करते हुए इक्कीस दिन बीत गये। तब नन्दिनी ने उनकी परीक्षा लेने के लिए माया जाल रचा। एक दिन जब राजा क्षण भर के लिए गंगा प्रपात की शोभा देख रहे थे तो सहसा एक सिंह ने गाय पर आक्रमण कर दिया। गाय की चीख सुन कर राजा ने तुरन्त धनुष पर बाण-सन्धान किया किन्तु प्रहार करते समय उसकी उँगुलियाँ अकड़ गयीं। वह वाण नहीं चला सके। तब सिंह ने उन से कहा, आप व्यर्थ श्रम मत कीजिए। मैं अष्ट मूर्ति शिव का सेवक हूँ। मैं निकुम्भ का मित्र हूँ। मेरा नाम कुम्भोदर है। यह जो सामने देवदारू का वृक्ष देख रहे हो, उसे माँ पार्वती ने सींच कर पुत्र के समान पाला है। एक दिन एक गज ने अपनी कनपटी खुजाते हुए इसकी छाल उखाड़ दी। इससे पार्वती को दुःख हुआ और उन्होंने मुझे इसकी रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। साथ ही यह भी कहा कि जो पशु तुम्हारे पास आ जाय उसे खाकर अपना पेट भर लेना। इसलिए तुम लौट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ। मुझ पर अक्रमण करने की शक्ति किसी में नहीं है। राजा ने कहा कि यदि ऐसा है तो तुम इस गाय को छोड़ दो और मेरे शरीर को खाकर अपनी पारणा कर लो। सिंह ने हँसते हुए उत्तर दिया—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च

अल्पस्य हेतो र्बहु हातुमिच्छन् विचार- मूढः प्रतिभासि मे त्वम्। २-४७

तुम पृथिवी के एक छत्र सम्राट्, नयी तुम्हारी आयु, इतना सुन्दर शरीर एक गाय के लिए इतनी बड़ी हानि उठाना मूर्खता है। तुम एक गाय के बदले अपने गुरू को करोड़ों दुधारू गायें दे सकते हो। राजा ने कहा—

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रःक्षत्रस्य शब्दो भुवनेषुरूढः।

राज्येन किं तद्विपरीत- वृत्तेः प्राणैरूपक्रोश- मलीमसैर्वा॥ २-५३

आप जानते ही है कि क्षत्रिय उसे कहते हैं जो दूसरों को चोट से बचाये। वैसा न करके जीने से क्या लाभ ? आप तो मेरा भक्षण कर लीजिये और इस गो को छोड़ दीजिये। ऐसा कहकर वह सिंह के मुख के पास बैठ गया। उसी समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। सिंह अन्तर्हित हो गया और देखा कि माता के समान स्तनों से दूध टपकाती हुई गाय सामने खड़ी कह रही है—-उठो बेटा ! मैनें मायारच कर तुम्हारी परीक्षा ली। ऋषि के प्रभाव से मुझपर काल तक प्रहार नहीं कर सकता, अन्य हिंसक जीवों की बात तो बिसात ही क्या ? में प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तब राजा ने माँगा कि सुदक्षिणा की कुक्षि से मेरे यशस्वी पुत्र का जन्म हो।

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जित- वीरशब्दः

वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे। २-६४

नन्दिनी ने वर देते हुए कहा कि तुम दोनों पत्तों के दोनों मे मेरा दूध दुहकर पी लेना। तब दिलीप और सुदक्षिणा मे बछड़े के पीने और ऋषि की यज्ञक्रियाओं में उपयोग से बचा हुआ दूध ऋषि की आज्ञा लेकर पी लिया और अगले सवेरे प्रास्थानिक स्वस्त्ययन कर राजधानी को लौट आये।

पुत्रजन्म—सुदक्षिणा गर्भवती हुई। आठों लोकपालों का तेज उसके गर्भ में निविष्ट था। दशम मास में उच्च स्थित, अनस्तमित ग्रहों के योग में रानी के पुत्र का जन्म हुआ। तपोवन से आकर पुरोहित ने उसका सम्पूर्ण जातकर्म कराया और इस आशा से कि वह श्रुत (वेद-शास्त्र) तथा शस्त्रविद्या में पारंगत भी बनेगा, गत्यर्थक रघि धातु से निष्पन्न रघु उसका नामकरण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब रघु युवा हुआ तो दिलीपने अश्व की रक्षा का भार उसे सौंपकर सौवाँ अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ किया और यज्ञ के सफलता के साथ पूर्ण हो जाने पर पुत्र को राज्य का भार सौंपा और स्वयं विषयों से विरक्त होकर पत्नी के साथ तपोवन में चले गये। इक्ष्वाकुवंश की यही परिपाटी थी।

रघु-चरित

रघु का जन्म उच्चस्थित पाँच ग्रहों के सुयोग में हुआ था। उसके जन्म के अवसर पर राज्य में महान् उत्सव मनाया गया था। जातकर्म, चूड़ाकर्म और उपनयनादि संस्कारों के सम्पन्न हो जाने पर विद्वान् गुरुओं ने उसे विधिवत् शास्त्रों की शिक्षा दी। वह रुरु-चर्म पहनकर पिता से अस्त्रविद्या सीखने लगा युवाकाल में प्रवेश के साथ गोदान संस्कार हुआ और विवाह विधि भी संपन्न की गयी। राजपुत्रियाँ उस सत्पति को पाकर अत्यन्त प्रसन्न थीं। रघु के कन्धे मज़बूत, ऊँचे थे, वक्षःस्थल किवाड़ के सदृश और भुजायें युग (जूए) के लम्बी थीं। योग्य समझकर पिता ने उसे युवराज बना दिया और अपने अश्वमेघ के अश्व की रक्षा का भार सौंपा। रघु अपने सैनिकों के साथ अश्व के पीछे गया ही था कि इन्द्र ने अदृश्य, शरीर से अश्व का हरणकर लिया। सारे योद्धा चकित थे और दुःखी भी कि उन्हें कामधेनु पुत्री नन्दिनी यदृच्छा से उधर आती दिखायी दी। रघु ने उसके मूत्र से अपने नेत्रों को आँजा तो उसे अतीन्द्रिय वस्तुओं को भी देखने की शक्ति प्राप्त हो गयी। अब रघु ने देखा कि पूर्व की ओर इन्द्र अपने रथ की रश्मियों से अश्व को बाँध कर लिये जा रहा है। उसे देखकर रघु ने कहा—

मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र सदा निगद्यसे

अजस्र- दीक्षा- प्रयतस्य मद्गुरोः क्रिया विघाताय कथं प्रवर्तसे?

३-४४

देवेन्द्र। आप को तो यज्ञ की आहुति सर्वप्रथम प्राप्त होती है। फिर मेरे यज्ञ में दीक्षित पिता की क्रिया में विघ्न डालने में क्यों प्रवृत्त हो रहे हो? इन्द्र ने उत्तर दिया—कुमार। तुम्हारा प्रश्न ठीक है किन्तु यशस्वियों को अपने यश की रक्षा तो करनी ही पड़ती है। मैं शतक्रतु हूँ। इस विशेषण का प्रयोग अन्य किसी के लिए नहीं होता। इसलिए मैंने कपिल का अनुसरण करते हुए तुम्हारे पिता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्व चुरा लिया है जिससे उनका यज्ञ पूर्ण न होने पाये और वह शतक्रतु बनकर मेरा पद न छीन सके—

हरिर्यथैकः पुरूषोत्तमः स्मृतः महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।

तथाविदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी नहि शब्द एष न।

३-४९

ततोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयाऽपहारितः।

अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य सन्ततेः।

३-५०

तुम अश्व छीनने का प्रयत्न मत करो, अन्यथा तुम्हारी भी स्थिति वही होगी जो सगर के पुत्रों की हुई थी। फिर क्या था ? रघु ने इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में जमकर युद्ध हुआ। पहला बाण रघु ने चलाया जो इन्द्र के वक्ष पर लगा।तब इन्द्र ने भी क्रुद्र होकर रघु के वक्ष पर प्रहार किया। रघु का दूसरा बाण इन्द्र के बाहु को क्षत कर गया और तीसरे मयुर-पंख वाले वाण ने उनका ध्वज, जिसपर वज्र अंकित था, काट दिया। फिर उसने इन्द्र के धनुष की प्रत्यंचा भी काट दी। तब अत्यन्त कुद्ध इन्द्र ने धनुष रख कर वज्र हाथ में ले लिया और रघु के वक्ष पर उसे मारा जिससे रघु मूर्च्छित हो गया—

रघुर्भृशं वक्षसितेनताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः।

निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिक- हर्षनिस्वनैः॥ ३-६१

क्षण भर में रघु उठ खड़ा हुआ। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा कि आज तक तुम्हें छोड़कर और कोई मेरे इस अस्त्र की मार को सहन नहीं कर पाया है। मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए। केवल यह अश्व मत माँगना। तब रघु बोला—यदि आप अश्व को अमोच्य समझते हैं तो ऐसा कीजिये कि विधिपूर्वक यज्ञ कार्य पूर्ण हो जाने पर मेरे पिता को क्रतु का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाय और दूसरे यज्ञ- सदस् में बैठे मेरे पिता को आप के ही दूत से यह सारा वृतान्त ज्ञात हो जाय। इन्द्र ने उसकी इच्छा का आदर कर वैसा कर दिया और दिलीप निन्यानवे अश्वमेध पूर्ण कर और राज्य रघु को सौंप कर सपत्नीक तपोवन को चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रियता—

पिता द्वारा प्रदत्त राज्य पाकर रघु ने विरोधियों का सर्वप्रथम शमन किया और राज्य को समृद्धि से भर दिया। मध्य मार्ग का ग्रहण कर और उचित दण्डनीति का अनुसरण कर उसने प्रजा का मन जीत लिया—

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः।

आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः॥ ४-८

और अपने 'राजा' विशेषण को सार्थक बना दिया—

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।

तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥ ४-१२

रघु की लोकप्रियता इतनी थी कि धान के खेतों की रखवाली करने वाली किसानों की बहू-बेटियाँ तक गाँवों में ईख की छाया में बैठीं उसके बचपन लेकर अद्यावधि कार्यों की यशोगाथा गाती थी—

इक्षुच्छाय- निषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।

आकुमारकथोद्धातं शालिगोप्योजगुर्यशः। ४-२०

दिग्विजय—

शरद् ऋतु आयी तो रघु ने परम्परानुसार दिग्-विजययात्रा प्रारम्भ की किन्तु उससे पूर्व निवास स्थान (राजधानी) की सुरक्षा, प्रान्त प्रदेश के दुर्गों के बचाव, पृष्ठभाग के शत्रुओं से संरक्षा और भविष्य के उत्कर्ष की व्यवस्था की। और तब छै प्रकार की सेना (मौल, भृत्य, सुहृत, द्विषद् और आटविक और श्रेणी) लेकर विजय के लिए प्रस्थान किया

सगुप्तमूल- प्रत्यन्तः शुद्ध- पार्ष्णिरयान्वितः।

षड्विधं वलमादाय प्रतस्थे दिग्-जिगीषया॥ ४-२६

रघु पहले पूर्व दिशा की ओर गये और अनेक जनपदों को विजित करते हुए ताड़ के वृक्षों से श्यामल महोंदधि के पास तक पहुँच गये। मार्ग में सुह्म जनपद के शासक ने नम्रता प्रदर्शित कर स्वयं को बचा लिया—

आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्। ४-३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बङ्गों को जो नौसेना लेकर लड़ने आये थे, रघु ने उखाड़ फेंका और गङ्गा प्रवाह में बसे द्वीपों में अपने झण्डे गाड़ दिये।

विचखानजयस्तम्भान् गङ्गास्त्रोतोऽन्तरेषु सः। ४-३६

फिर कपिशा नदी पार कर कलिङ्ग की ओर बढ़े और महेन्द्र पर्वत पर अपना प्रताप स्थापित किया। हाथियों की सेना लेकर कलिङ्गनरेश ने उन पर अस्त्रों की वर्षा की किन्तु जय श्री रघु के ही हाथ लगी—

प्रतिजग्राह कालिङ्गस्तमस्त्रैर्गजसाधनः। ४-४०

किन्तु उन्होने महेन्द्र की भूमि पर अधिकार नहीं किया। तदनन्तर वह सुपारी की वृक्ष श्रेणी से शोभित समुद्र तट से दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गये। उनकी सेना ने कावेरी के जल को गँदला कर डाला और आगे बढ़कर मलय पर्वत की तराई में डेरा डाला। यहाँ उनका सामना पाण्ड्यों से हुआ किन्तु वे रघु के तेज को सहन नहीं कर सके। वे ताम्रपर्णी से संयुक्त समुद्र से इकट्ठे किये हुए मुक्ताओं को भेंट कर अवनत हुए।

ताम्रपर्णी- समेतस्य मुक्तसारं महोदधेः

ते निपत्य ददुस्तस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम्। ४-५०

और तब रघु मलय और दर्दुर पर्वतों पर विहार करते हुए आगे बढ़ गये। पश्चिम की ओर बढ़ती हुई उन की सेना को सह्य पर्वत दूर होने पर भी सुमुद्र से सटा-सा जाना पड़ा। सेना को देखकर केरल की स्त्रियाँ इधर उधर भागने लगीं। उनके अलक सेना से उठी धूल में भर गये। मुरला की वायु के साथ उड़ते केतकी के कणों ने उनके योद्धाओं के कवचों पर पटवास का काम दिया। ताली वनों की ध्वनि, खर्जूर वनों की शोभा और नागकेसर के पुष्पों की सुगन्ध का सुख लेती उसकी सेना के समक्ष अपरान्त के शासक ने करद बनना स्वीकार किया। उन्होनें त्रिकूटपर अपना झण्डा गाड़ा और फिर पारसीकों को जीतने के लिए स्थल मार्ग से चल दिये। इस प्रदेश में यवनियों के कमल जैसे मुख मद्यपान से और भी लाल दिखते हैं। यहाँ यवनों की अश्वारोही सेना ने उनके साथ तुमुल युद्ध किया किन्तु रघु की सेना ने भालों से उनके वड़ी दाढ़ी वाले सिरों को काट कर पृथ्वी पाट दी। जो बच गये वे अपने शिरस्त्राणों (पगड़ियों) को उतार कर रघु की शरण में आ गये। तब उनके योद्धाओं ने वहाँ द्राक्षा-मद्यपीकर अपनी थकान उतारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् वे उत्तर की ओर प्रस्थित हुए। तब सिन्धु के किनारे लोटने पोटने से उसके अश्वों के स्कन्धों पर केसर-कुसुमों का पराग लगा हुआ था। तब उनके योद्धाओं ने हूणों को जीता। हूणों की स्त्रियाँ छाती और गालों को पीट पीट कर विलाप कर रही थीं। काम्बोज उनका सामना नहीं कर सके और वे भेंट में अखरोट अर्पित कर उनके सम्मुख झुक गये। उन्होने प्रचुर धन और उत्तम अश्व भेंट में दिये। तब रघु अश्वों के सहारे हिमालय पर चढ़ गये। मार्ग में भूर्जवृक्षों के मर्मर, कीचक ध्वनि और गङ्गा के शीकरों से मिश्रित वायु ने उनकी सेवा की। सैनिकों ने नमेरू वृक्षों की छाया में कस्तूरी से सुगन्धित शिलाओं पर विश्राम किया। पर्वतीय गणों के साथ रघु का तुमुल युद्ध हुआ। उन्होने उत्सवसंकेतगण को पीडित कर किन्नरों से अपनी शौर्य गाथा का गान कराया। पश्चात् उन्होनें लौहित्य नदी पार की तो प्राग्ज्योतिष का राजा काँप उठा—

चकम्पे तीर्ण- लौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः। ४-८१

उसने पराजय स्वीकार किया। कामरूप के शासक ने प्रणत होकर उन्हें मदस्रावी गज भेंट में दिये और बहुत से रत्न भी। इस प्रकार चारों दिशाओं के राजाओं को छत्रहीन कर रघु ने विश्वजित् यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और यज्ञ समाप्त होने पर सारे पराजित राजाओं को प्रचुर उपहार देकर उनकी पीड़ा को शान्त किया तथा समस्त राजन्यों को अपने अपने नगर को लौट जाने की अनुमति दी।

दानशीलता—

रघु ने अपनी सारी सम्पति विश्वजित् यज्ञ में दान कर दी थी। उसके कोष में सुवर्ण का लेश मात्र नहीं बचा था। ऐसे ही अवसर पर वरतन्तु ऋषि का स्नातक शिष्य कौत्स उनके पास गुरू दक्षिणा के लिए सुवर्ण माँगने आया। रघु ने मृण्मय पात्र से उसका अर्घ्य किया और कुशल समाचार पूछे। कौत्स अपनी माँग के प्रति निराश था किन्तु रघु ने उसे दो तीन दिन अपने प्रासाद में ठहरने को कहा और इस बीच कुबेर से द्रव्य लेने के लिये प्रयाण की तैयारी की। उसने सोचा—

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोःसकाशादनवाप्यकामम्।

गतोवदान्यान्तर मित्ययं मे मा भूत् परीवाद- नवावतारः।५-२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने में देखता क्या है कि ऊपर से उसके कोष गृह में सुवर्ण की वर्षा हो रही है। तब क्या था ! रघु कौत्स को अतुल सुवर्ण राशि देने को उत्सुक और कौत्स गुरू को प्रदेयधन से एक पाई भी अधिक लेने को तैयार नहीं—

जनस्य साकेत- निवासिनस्तौद्वावप्यभूतामाभिनन्द्य- सत्त्वौ।

गुरू- प्रदेयाधिक निःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थि- कामादधिकप्रदश्च।५-३१

पुत्र-प्राप्ति—

कौत्स रघु को अपने समान यशस्वी पुत्र की प्रप्ति का वर देकर चला गया। श्रोत्रिय की आशीष फलवती हुई। राजा को पुत्रलाभ हुआ। ब्राह्ममुहुर्त में उनकी पत्नी ने स्कन्द के तुल्य कुमार को जन्म दिया। ब्रह्म वेला में उत्पन्न होने के कारण राजा ने ब्रह्मा के अर्थ में ही नाम अज रखा—

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।

अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्नातमात्मजन्मानमजं चकार ॥ ५-३६

अज के युवा और विवाहित हो जाने पर रघु ने उसे राज्य का भार सौंपा और स्वयं वैखानस बनकर नगर के बाहर आवस्था में रहकर योग-साधना करते हुए योग-समाधि ले ली—तमसः परमापदव्ययं पुरूषं योगसमाधिना रघुः।८-२४

अजचरित

स्वयंवर- यात्रा

अज का जन्म ब्राह्म मुहुर्त में हुआ था। इसीलिए पिता ने ब्रह्मा के पर्याय के रूप में उनका नाम अज रखा। अज रूपाकृति में अपने पिता रघु से पूरी तरह मिलते जुलते थे—

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।

नकारणात् स्वाद् विभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीपइव प्रदीपात्॥

५-३७

गुरुओं से विधिवद् विद्या प्राप्त करके जब युवा हुए तो क्रथकैशिक (विदर्भ) के शासक भोज ने अपनी बहिन इन्दुमती के स्वयंवर के लिए रघु के समीप दूत भेजा और स्वयंवर में भाग लेने के लिए कुमार अज को आमन्त्रित किया। सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की श्लाघ्यता और अजकी विवाहयोग्य अवस्था को देखकर रघु ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और अज को उपयुक्त सेना के साथ विदर्भ राजधानी को भेज दिया। मार्ग में रघु ने नर्मदा के किनारे अपनी थकी सेना का विश्रान्ति के लिये पड़ाव डाला। तभी नर्मदा के भीतर से एक मत्त वन्य गज बाहर निकला। नर्मदा के शीतल जल में स्नान के कारण उसकी जो मदोन्मत्तता कुछ शान्त हो गयी थी वह सेना अन्य गजों को देखकर पुन: उद्दीप्तहो उठी। सेना के हाथी उसे देखकर भाग खड़े हुए। घोड़े बन्धन तोड़ कर भागने लगे। सारी सेना में कोलाहल मच गया। अज ने सुन रखा था कि राजा को वन्य गज की हिंसा नहीं करनी चाहिये इसलिये उन्होंने धनुष की डोरी बिना अधिक खींचे उसकी कनपटी पर वाण मारा। बाण लगते ही वह अपने गज रूप को छोड़कर व्योमचारी गन्धर्व बन गया और कुमार पर कल्पद्रुम के फूलों की वर्षा करता हुआ बोला- मैं प्रियदर्शन गन्धर्व का पुत्र प्रियंवद हूँ। महर्षि मतङ्ग के शाप से मुझे गजयोनि प्राप्त हुई थी। शाप के पश्चात् अनुनय करने पर उन्होंने कहा था कि जब इक्ष्वाकु वंश के अज अयोमुख बाण से तुम्हारे कुम्भ का भेदन करेंगे तो तुम्हें अपना स्वाभाविक शरीर प्राप्त हो जायगा। आपने मेरा उपकार किया है, अत: मैं प्रत्युपकार स्वरूप आपको अपना सम्मोहन नामक अस्त्र देता हूँ। इसके प्रयोग और संहार के पृथक्-पृथक् मन्त्र हैं। इससे शत्रु की हिंसा नहीं होगी और विजय प्राप्त हो जायगी।

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रंप्रयोग- संहार- विभक्त- मन्त्रम्।

गान्धर्वमादत्स्व यत: प्रयोक्तुर्नचारि- हिंसा विजयश्चहस्ते॥

५-५७

तब अज ने सोमोद्भवा नर्मदा के जल का आचमन कर उदङ्मुख स्थित होकर उससे अस्त्र के मन्त्र ग्रहण किये। तत्पश्चात् प्रियंवद चित्ररथ प्रदेश को और अज विदर्भ को प्रस्थान कर गये। विदर्भ पहुँचने पर क्रथकैशिकेश ने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की।

इन्दुमतीवरण

विदर्भराज की बहिन इन्दुमती के स्वयंवर में अनेक जनपदों के राजा उपस्थित थे। अज उनके लिये बनाये हुए मञ्च पर आसीन हुए। चारों ओर धूप की सुगन्ध फैल रही थी। विभिन्न जनपदों की वैजयन्तियाँ फहर रही थीं। शङ्खध्वनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तूर्यनाद के साथ विवाह वेश पहने हुए इन्दुमती मनुष्य- वाहित चौकोरपालकी पर मञ्चों के मध्य बनाये राजमार्ग पर उपस्थित हुई। उसे देखकर सब राजा उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये विविध चेष्टायें करने लगे। तब प्रतिहार रक्षी जो पुरुषों के समान प्रगल्भ थी और जिसे राजाओं के वंशवृत्त भी मालूम थे, इन्दुमती को, जिसके हाथ में वरमाला थी, लेकर क्रमशः मगधेश्वर, अङ्गनाथ, अवन्तिनाथ, अनूपराज, शूरसेनाधिपति सुषेण, कलिङ्गनाथ हेमाङ्गद उरगपुरेश्वर के पास ले गयी और प्रत्येक की विशेषताओं और उनके साथ विवाह से प्रत्याशित सुखों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया किन्तु इन्दुमती ने उनमें किसी का वरण करने की इच्छा नहीं व्यक्त की। तब प्रतीहारी सुनन्दा उसे अज के समीप ले जाकर बोली। यह महाराज रघु के पुत्र उत्तर कोसल के स्वामी, इक्ष्वाकुवंशीय ककुत्स्थलक्षण वाले कुमार अज हैं। यह काकुत्स्थविरुद वाले है। इन लोगों को इन्द्र के अर्धासन पर बैठने की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनके बाबा दिलीप ने इन्द्र की स्पर्धा से बचने के लिये निन्यानवे ही अश्वमेध किये थे। उनके राज्य में यदि कोई कामिनी विहार पथ पर भी निद्रित हो जाती तो मनुष्य की तो बात ही क्या, वायु तक उसके आँचल को सरकाने का साहस नहीं करता था। इनके पिता ने विश्वजित् नामक महाक्रतु का अनुष्ठान किया और चारों दिशाओं से संभृत अतुल सम्मत्ति को दान कर मृत्पात्री गये हैं—

यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्ध पथे गतानाम्।

वातोऽपिनास्त्रंसयदंशुकानि कोलम्बयेदाहरणाय हस्तम्।६-७५

गुणेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनय- प्रधानैः।

त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन॥६-७९

और लज्जा पर अंकुश लगाते हुए इन्दुमती ने वर माला अज के कण्ठ में डाल दी। तब विदर्भ की नारियाँ कहने लगीं—

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।

अस्मिन् द्वये रूपविधान- यत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्।

७-१४

यदि एक दूसरे से बढ़कर शोभा वाले इन दोनों की जोड़ी को ब्रह्मा न मिलाता तो उनके रूपनिर्माण में किया हुआ उसका श्रम व्यर्थ चला जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाओं के प्रतिरोध का दमन—

तब भोज ने इन्दुमती के विवाह की शास्त्रीय विधि पूर्ण थी और आगत राजाओं का भी यथा विधि सत्कार किया किन्तु राजा लोग ऊपर से हर्ष प्रकट करते हुए भी अन्तर में द्वेष छिपाये रहे। उन्होंने भोज द्वारा विदाई में भेंट की हुई वस्तुयें उपदा के बहाने लौटा दीं। भोज ने वहिन को शक्ति के अनुसार उपायन देकर विदा किया किन्तु वह प्रेमवश तीन पड़ावों तक उनके साथ रहे। स्वयं वरार्थ आये राजा रघु द्वारा अपनी सम्पत्ति ले लिये जाने के कारण पहले से ही रुष्ट थे। अत: वे अज की स्त्रीरत्न- प्राप्ति को सहन नहीं कर सके। उन्होंने अज को मार्ग में रोक लिया। तब अज ने पर्याप्त योद्धाओं के साथ विश्वस्त सचिव को इन्दुमती की रक्षा के लिये नियुक्त कर स्वयं पार्थिव सेना को रोका। फिर क्या था। दोनों ओर की सेना के पदाति पदातियों से, रथी रथियों से, अश्वारोही अश्वारोहियों से और गजारोही गजारोहियों से भिड़ गये। तुमुल युद्ध हुआ। अन्त में प्रियदर्शन गन्धर्व द्वारा प्रदत्त मोहनास्त्र का प्रयोग कर अज ने शत्रु सेना को निश्चेष्ट कर दिया और इन्दुमती को, जो पहले, अत्यन्त भीत हो गयी थी, लेकर राजधानी लौट आये। रघु यह सब समाचार जानकर बहुत प्रसन्न हुए और कुटुम्ब का भार अज को सौंपकर शान्ति मार्ग की ओर उन्मुख हुए—

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः सन्निवृत्तं

विजयिन मभिनन्द्य श्लाघ्य जायासमेतम्।

तदुपहित- कुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुको

ऽभून्नहि सतिकुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय॥७-७१

राज्याभिषेक—

पिता ने जो राज्यभार अज को सौंपा उसे अज ने पिता की आज्ञा समझ कर शिरोधार्य किया। राज्य की लालता तो उन्हें छू तक नहीं गयी थी—तदुपस्थित मग्रहीदजः पितु राज्ञेति न भोगतृष्णया॥ ८-२

महर्षि वसिष्ठ ने विभिन्न तीर्थों से लाये जल से स्नान कराकर उनका राज्याभिषेक कराया। अज को प्रजा ऐसा ही मानती थी जैसे रघु फिर से युवा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं । हर प्रजाजन यह समझता जैसे वही अज को सर्वाधिक प्रिय हैं । वहन अत्यन्त कठोर और न अति मृदु व्यवहार करता था ।

अहमेव मतो महीपतेरितिसर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ।

न खरो नच भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहामिव ८-८,९

पुत्र को सुप्रतिष्ति देखकर जब रघु ने वनगमन की तैयारी की तो आँखों में अश्रुभर कर उनसे स्वयं को छोडकर न जाने की प्रार्थना की । पुत्र को अश्रु मुख देख कर उन्होंने दूर वन में जाने का विचार तो त्याग दिया किन्तु राज्य लक्ष्मी को पुनः स्वीकार न कर नगर के बाहर स्थान में वैखानस बनकर रहने लगे । उनका सारा समय आत्मचिन्तन और योग साधना में बीतने लगा और अन्त में योग समाधिके के द्वारा ही शरीर त्याग कर दिया । पिता की मृत्यु का हाल सुनकर अज फूट फूट कर रोये और फिर यतियों के साथ मिलकर अग्नि संस्कार किया ।

इन्दुमती से अज को पुत्र की प्राप्ति हुई जिस का नाम उन्होंने दशशत रश्मि वाले सूर्य, तथा दशों दिशाओं में अप्रतिरथ होने का ध्यान रख कर दशरथ रख दिया । वह आगे चलकर दशमुख के वध कर्ता के पिता के रुप में प्रसिद्ध हुए ।

इन्दुमती- मरण

एक बार अज अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में विहार कर रहे थे । इसी समय दक्षिण समुद्र के पास स्थित गोकर्ण तीर्थ में वीणावादन द्वारा शिव की आराधनः करने के लिये नारद आकाश मार्ग से निकले । उनकी वीणा के शिरो भाग पर दिव्य पुष्पों से गुँथी हुई माला लटक रही थी । वह माला पवन के झोंके से उड़कर इन्दुमती के स्तनाग्रभाग पर आ गिरी और माला के गिरते ही इन्दुमती ने सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं । वह निश्चेष्ट होकर अज के ऊपर गिर गयी और साथ ही उसने अपने भार से अज को भी पृथिवी पर गिरा दिया । अज पत्नी को मृत देखकर मूर्च्छित हो गये उपचार करने पर अज की मूर्च्छा तो दूर हो गयी किन्तु इन्दुमती वैसी ही पड़ी रही ।

अज- विलाप

तब अज ने उसे उठाकर गोद में ले लिया और जोर जोर से रो रो कर विलाप करने लगे । गर्म करने पर तो लोहा भी पिघल जाता है फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विललाप स वाष्प- गद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु॥ ८-४३

वह कहने लगे- यदि यह माला प्राणापहारक है तो मुझे क्यों नही मारती। किसी के लिये विष अमृत बन जाता है और किसी के लिये अमृत विष।मैंने कभी तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं किया फिर क्यों मुझे छोड़ कर जा रही हो। शशी को तो शर्वरी फिर से मिल जाती है और चक्रवाक का भी पुन: अपनी प्रिया से मिलन हो जाता है। इसलिये वे विरह को सहलेते है किन्तु तुम तो सदा के लिये चल दीं। फिर मैं किस प्रकार सहन करुँ ? मेरा धैर्य अस्त हो गया, आनन्द मिट गया, गान समाप्त हो गया, ऋतुओं के उत्सव निष्प्राण हो गये, वस्त्राभूषण धारण करने का प्रयोजन ही नष्ट हो गया। मेरा शयन कक्ष सदा के लिये रिक्त हो गया। तुम मेरी गृहिणी थीं, सचिव थी, संगिनी थी और कला-सृजन में मेरी शिष्या भी थीं। एक तुम्हें छीनकर विधाता ने मेरा सब कुछ ही छीन लिया—

धृतिरस्तमिता, रतिश्च्युता, विरतं गेयमृतु र्निरुत्सवः।

गतमाभरण- प्रयोजनं परिशून्यं शयनीमद्य मे। ८-६६

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय- शिष्यालिलिते कलाविधौ

करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्न मे हृतम्। ८-६७

इस प्रकार विलाप करते हुए अज ने अपने साथ वृक्षों तक को रुला दिया। तब स्वजनों ने किसी प्रकार इन्दुमती को अज की गोद से उतारकर अगुरु और चन्दन की चिता पर रख दिया। अज अपनी पत्नी के साथ ही चिता में जल जाना चाहते थे किन्तु यह सोचकर कि राजा होते हुए भी मैं प्रमदा के साथ मर गया, इस अपयश से बचने के लिये जीवित बने रहे।

उन्होंने मरणोपरान्त की क्रियायें यथा- दशाह आदि नगर के उपवन में ही संपन्न कीं और तब नगर के भीतर प्रवेश किया। उस समय वसिष्ठ का यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाया था, अत: वह आने में असमर्थ थे। उन्होंने अपने शिष्य के द्वारा यह सन्देश भेजा—पुराकाल में तृणविन्दु ऋषि जब कठिन तप कर रहे थे तो इन्द्र ने डरकर उनका तपोभङ्ग करने के लिये हरिणी नामक देवाङ्गना को भेजा। तब मुनि ने तपो बाधा से क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया कि तुम मानुषी हो जाओ किन्तु जब उसने अनुनय किया कि मैं पराधीन थी, अत: क्षम्य हूँ तो मुनि ने कृपा पूर्वक कहा कि देव पुष्प के दर्शन के पश्चात् तुम शाप से मुक्त हो जाओगी। वही देवाङ्गना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रथ कैशिक वंश की कन्या बनकर तुम्हारी पत्नी बनी और अब देवपुष्पों का स्पर्श पाकर पुनः देवत्व को प्राप्त हो गयी है। इसलिये शोक छोड़कर राजकाज सम्हालियें। आप मर के भी उसे पा नहीं सकेंगे क्यों कि परलोक जाने वालों के गन्तव्य स्थान अपने अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। रोना भी हितकर नहीं है क्योंकि परिजनों के अधिक अश्रु प्रेत को जलाते हैं, ऐसी मान्यता है

परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्। ८-८५

स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ।८-८६

मरना तो शरीर धारियों का स्वभाव है। वस्तुतः जीवन ही विकार है, अस्वाभाविक है। यदि प्राणी क्षणभर भी जीवित रहता है तो उसे भाग्यवान् मानना चाहिये—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति र्जीवनमुच्यते वुधैः

क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु भाग्यवानसौ ॥८-८७

अज ने गुरु वसिष्ठ के वचनों को शिरोधार्य कर शिष्य को विदाकर दिया और अपने पुत्र दशरथ के अल्पवयस्क होने के कारण पत्नी के चित्र- दर्शन और स्वप्न मिलन आदि के द्वारा किसी प्रकार आठ वर्ष काट दिये और फिर पुत्र का राज्य में अभिषेक कर उसे प्रजाओं के रक्षण का आदेश दिया। पुत्र का शरीर अनेक रोगों से जर्जर हो गया था और रोग औषधि से असाध्य थे। अतः उन्होंने प्रायोपवेशन अन्नजल त्याग के द्वारा प्राणोत्सर्ग का निश्चय किया औरगङ्गा और सरयू- संगम- स्थल में देह त्याग कर पीड़ामुक्त हुए।

दशरथ चरित

पिता की मृत्यु के उपरान्त संयमियों और योद्धाओं में अग्रगण्य दशरथ उत्तर कोसल पर राज्य करने लगे। उस शान्तमना के राज्य में रोग ने पाँव नही रखा, शत्रुओं से होने वाले आक्रमणों की तो बात ही व्यर्थ है। धरती खूब, अन्नफल देती थी। दशरथ को न मृगया में रूचि थी और न द्यूतक्रीड़ा में। उन्हें मद्यपान का भी व्यसन नहीं था। नव यौवना स्त्रियाँ उन्हें आकृष्ट नहीं कर पाती थी। उन्होंने कभी इन्द्र के सम्मुख भी दैन्ययुक्त बात नहीं की, परिहास में भी असत्य नहीं बोला और शत्रु जनों से भी कभी कटुवचन नहीं कहे—

जनपदे न गदःपदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षितिरभूत् फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमर- तेजसिपार्थिवे ९-४

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं नच शशि- प्रतिमाभरणं मधु।

तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमान मपाहरत्।९-७

न कृपणाप्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहास- कथास्वपि

न च सपत्न- जनेष्वपि तेन वागपरुषापरुषाक्षरमीरिता। ९-८

उन्होंने एक रथ से ही धनुष के द्वारा समुद्र पर्यन्त पृथिवी पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, सेना तो कहने भर के लिये साथ में रही—

अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्य शरासनः ९-१०

भुवन- विजय के पश्चात् दशरथ ने मगध, कोसल और केकय के नरेशों की कन्याओं के साथ विवाह किया। उन्होंने युद्ध में इन्द्र तक की सहायता की और यज्ञों में मुकुट को उतारकर तमसा और सरयू नदियों के तटों को सुवर्ण के यज्ञ स्तम्भों से सुशोभित कर दिया—

क्रतुषु तेन विसर्जित- मौलिना भुज- समाहृतदिग्वसुना कृताः

कनकयूप- समुच्छ्रय- शोभिनो वितमसा तमसा- सरयूतटाः। ९-२०

मृगयावर्णन

वसन्त आया। वृक्ष और लतायें पहले कलियों-पुष्पों, फिर नवपल्लवों और फिर भवरों तथा कोकिल के कूजन से भर गये। इस प्रकार वह द्रुमवती वनस्थली में प्रकट हुआ। मान छोड दो, परस्पर झगड़ना बन्द करो, गया हुआ यौवन फिर लौटने वाला नहीं- कोयल की ऐसी उद्घोषणा सुनकर वधुएँ रमण में मग्न हो गयी। दशरथ ने भी वासन्तिक सुख का भरपूर उपभोग किया—

कुसुम जन्मततो नवपल्लवास्तदनु षट्पद- कोकिल- कूजितम्।

इति यथाक्रममाविरभून्मधु द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्॥९-२६

त्यजत मानमलं वतविग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः।

परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः।९-४७

विलासिनियों के साथ आर्तव का पूर्णतया आनन्द लेने के पश्चात् दशरथ का मन मृगया खेलने की ओर गया। सचिवों ने भी यह कहकर अनुमति दी कि इससे चल लक्ष्य पर बाण मारने का अभ्यास होता है। पशु भय और क्रोध की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन:स्थिति में कैसाव्यवहार करते है, इस बात का ज्ञान हो जाता है और परिश्रम करने से शरीर में भी स्फूर्ति बढ़ती है। तब श्वगणी लोगों और वागुरिकों को आगे भेजकर दस्युओं तथा अनल के भय से मुक्त स्थान मृगया के लिये चुना जो अश्वों के लिये कड़ी मजबूत मिट्टी वाला हो, जिसमें जल का सुभीता हो तथा जहाँ मृग, पक्षी तथा गवयआदि आखेट के प्राणी प्रचुरता से उपलब्ध हों। दशरथ तेज दौडने वाले अश्व पर, बाण सन्धान किये आगे बढे तो पहले ही कुश मुख में दबाये मृगों का बड़ा झुण्ड सामने दिखा। कृष्णसार मृंग गर्वित से उसके आगे आगे जा रहे थे। धनुष चढाये राजा को देखकर कातर दृष्टि से देखता हुआ वह यूथ भाग कर इधर उधर बिखर गया। राजा ने एक हरिण को बाण का लक्ष्य बनाया तो उसकी सहचरी बीच में अपनी देह को अड़ाकर खडी हो गयी। यह देखकर कृपालु राजा ने बाण धनुष से उतार लिया जब। अन्य मृगों पर बाण चलाने को उद्यत होता तो उनकी मस्त चञ्चल आँखें देखकर उसे अपनी प्रियाओं के नेत्र याद आ जाते और वह प्रत्यञ्चा ढीली कर देता। वह पोखरे के कीचड़ से बाहर निकले वराह- समूह के पीछे दौड़ा तो वराहों ने उलट कर उसी पर प्रहार करना चाहा। राजा ने उनके जघनों में बाण मारा तो उन्होंने उसकी चिन्ता नहीं की और भाग गये। तब उसने जंगली महिष की आँख को अपना निशाना बनाया। गुहा से बाहर निकले व्याघ्र का मुख बाणों से चलनी कर दिया, सिंहों को धनुष के टंकार से व्याकुल बना डाला, चमरों के पीछे लगकर उनके श्वेत वालव्यजन छीन लिये। एक मयूर उनके अश्व के पास से ही उड़ गया किन्तु उन्होंने उस पर बाण नहीं छोड़ा क्योंकि उसके पंख देख कर उन्हें अपनी प्रिया के खुले केशपाश का स्मरण हो आया। दिन बीत गया तो दशरथ ने कुसुमों और प्रवालों की शय्या पर अकेले ही भूमि पर सोकर रात बिता दी। उषाः काल में वह साथियों से छूट कर उसी तरह अकेले थकान से फेन गिराते हुए अश्व पर बैठकर रुरु मृगों कर पीछा करते करते तमसा नदी के पास पहुँच गये।

मुनिशाप

वहाँ उन्होंने नदी-जल में कुम्भ भरने का शब्द सुना किन्तु यह समझकर कि यह गज के बृंहित का शब्द है, उन्होंने गज को मारने के लिये शब्दवेधी बाण चला दिया। राजा को गज का आखेट निषिद्ध है किन्तु दशरथ ने उस मर्यादा का उल्लंघन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर वैसा किया। कभी कभी राजसिकगुण से प्रेरित होकर विद्वान् भी कुमार्ग में पाँव रख देते हैं—

नृपतेः प्रतिषद्धमेव तत् कृतवान् पंक्तिरथो विलङ्ध्य यत्।

अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तो ऽपिरजो- निमीलिताः ।।९-७४

बाण के साथ ही 'हातात' सुनकर राजा व्यथित हो उठा और शब्द के स्थान को ढूँढता हुआ वहाँ पहूँचा जहाँ कुम्भ से साथ घायल मुनि पुत्र पडा था। यह देख उसे प्रतीत हुआ जैसे बाण उसी के लगा हो। राजा अश्व से नीचे उतर कर जल कुम्भ पर लुढ़के पड़े मुनि पुत्र के पास गये और उससे वंश का परिचय पूछा तो उसने स्वयं को द्वितेजर वैश्य पिता से शूद्रामाता में उत्पन्न करण जाति का पुत्र बतलाया। राजा बालक को माता पिता के पास ले गये। माता पिता ने बहुत विलाप कर राजा से बालक के उर में गड़ा बाण निकलवाया। बालक मर गया। तब वृद्धपिता ने अपने आँसुओं का जल हाथ में लेकर राजा को शाप दिया—

दिष्टान्तमाप्स्यसि भवानपि पुत्रशोका

दन्त्ये वयस्यहमिवेतितमुक्तवन्तम्।

आक्रान्तपूर्वमिव मुक्त- विषं भुजङ्गं

प्रोवाच कोसल- पतिः प्रथमापराद्धः ।९-७९

तब दशरथ बोले कि मैंने तो अभी पुत्र का मुँह भी नहीं देखा है। इसलिये आपने यह शाप देकर भी मुझ पर उपकार किया है। अग्नि कृष्य भूमि को उसके घास पात सहित जला डालती है तो उसे अधिक उपजाऊ भी बना देती है।

शापोऽप्यदृष्ट- तनयानन- पद्मशोभे

सानुग्रहोभगवतामयि पातितोऽयम्।

कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो

बीज- प्ररोहजननीं ज्वलनः करोति। ७-८०

और राजा से इन्धन की व्यवस्था करा कर वह मुनि भी सपत्नीक पुत्र के साथ चिता में जल गया।

पुत्रेष्टि—दशरथ को राज्य करते हुए अनेक वर्ष बीत गये किन्तु उनके सन्तान नहीं हुई। तब सन्तान की कामना से ऋष्यश्रृङ्ग आदि महात्माओं ने ऋत्विक् बनकर उन्हें पुत्रेष्टि कराना प्रारम्भ किया। इसी समय रावण से पीड़ित देवता लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु के पास अपनी रक्षा की प्रार्थना लेकर गये। उन्होंने विष्णु की स्तुति की। प्रसन्न होकर विष्णु ने उनसे कुशल पूछा तो देवों ने अपनी व्यथा सुनायी। तब विष्णु ने कहा कि मैं जानता हूं कि तीनोभुवन रावण से पीड़ित हैं और उसने आप लोगों के तेज और प्रभाव का हरण कर लिया है। इन्द्र को मुझसे प्रार्थना करने की आवश्कता नहीं क्योंकि मेरा और उनका तो एक ही उद्देश्य है। रावण ने नौ सिर शंकर को चढ़ा दिये। अब उसका दसवाँ सिर मेरे सुदर्शन चक्र के लिये ही बचा है। अब तक मैंने ब्रह्मा के वर के कारण उसे सहन किया है। उसने तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे देवों के द्वारा अवध्य होने का वर पाया है। मनुष्यों को तुच्छ समझकर उनसे वध की उसने कल्पना ही नहीं की। इसलिये मैं दशरथ के पुत्र के रुप में जन्म लेकर बाणों से उसका शिरश्छेद करुँगा।

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वारणभूमेर्वलिक्षमम्।

करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरः कमलोच्चयम्॥१०-४४

तब इन्द्र आदि देवों ने अपने अपने अंशों से विष्णु का अनुगमन किया। इसके बाद ही पुत्रकाम्येष्टि संपन्न हुई तो ऋत्विजों ने देखा कि अग्नि से एक पुरुष प्रकट हुआ जो हाथों में बड़े हेमपात्र में पयश्चरु (खीर) लिये था। उसने वह चरु राजा दशरथ को अर्पित किया। दशरथ ने उस चरु को ज्येष्ठ पत्नी कोसल्या तथा प्रेयसी पत्नी कैकेयी को आधा आधा बाँट दिया। उनकी इच्छा थी कि सुमित्रा को वे दोनों स्वयं संभावित करें। पति की भावना को समझकर उन दोनों ने अपने भाग में से आधा आधा सुमित्रा को दे दिया—

अर्चितातस्य कोसल्या, प्रिया केकय- वंशजा।

अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः।१०-५५

ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौपत्युर्महीक्षितः।

चरोरर्धार्ध- भागाभ्यां तामयोजयतामुभे।१०-५६

पुत्रप्राप्ति—तब उन तीनों ने देवांशयुक्त गर्भधारण किया। विष्णु उनके गर्भों में अनेकधा होकर निवास करने लगे। दशममास आने पर पहले कोसल्या ने पुत्र को जन्म दिया। पिता ने उसका नाम राम रखा। कैकेयी के जो पुत्र हुआ उसका नाम भरत रखा गया। सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम के दो पुत्र हुए। उनके जन्म के अवसर पर पृथिवी पर मङ्गल प्रकट होने लगे। रावण के मुकुटों की मणियाँ टूटकर गिरने लगी किन्तु दशरथ के प्रासाद में कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारों के पश्चात् धात्री का स्तन्यपान करते हुए भी उनमें स्वाभाविक विनय और परस्पर प्रेम प्रकट होता था। यों तो चारों में बहुत स्नेह था किन्तु राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न में परस्पर कुछ अधिक ही सौहार्द दिखता था।

राम द्वारा ताड़का वध—

अभी ये बालक काक पक्षधर (छोटे) ही थे कि कौशिक मुनि उन्हें अपने यज्ञ में राक्षसों के द्वारा डाले जाने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये मांगने आये। दशरथ को वृद्धावस्था में बडी कठिनाई से पुत्रों की प्राप्ति हुई थी फिर भी उन्होंने लक्ष्मण के साथ राम को विश्वामित्र की सेवा में जाने की अनुमति दे दी और वे दोनों माता-पिता के चरण छूकर चल दिये। विश्वामित्र उन्हें पुराण-इतिहास की कथायें सुनाते जा रहे थे। इससे पैदल चलते हुए भी उनका मन लगा रहा। मार्ग में जा ही रहे थे राक्षसों का प्रदेश आ गया। तब राम ने धनुष पर प्रत्यञ्चा कस ली। प्रत्यञ्चा का शब्द सुन कर सुकेतु की पुत्री ताडका कपालों के कुण्डल पहने प्रकट हो गयी। वह एक लम्बी भुजा को यष्टि के समान ऊपर उठाये, और कटि में पुरुषों की आँतों की मेखला पहने श्मशान से उठे बवण्डर जैसी दिखायी दी। राम ने उसे लक्ष्य बना कर जो वाण चलाया, वह उसके वक्ष पर लगा और वह परलोक चली गयी—

राम- मन्मथ- शरेण ताडिता दुःसहेनहृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर- चन्दनोक्षिता जीवितेशपदवीं जगाम सा।११-२०

फिर वे वामनाश्रम में पहुँचे और यज्ञरक्षा में जुट गये। यह कौशिक की तपोभूमि थी। यज्ञ वेदी रक्त के बड़े बड़े बिन्दुओं से दूषित होती देखकर याज्ञिकों ने विकङ्कत के स्रुवा नीचे रख दिये। तभी राम ने ऊपर राक्षसों की सेना को देखा और उसके दो प्रधानों मारीच और सुबाहु पर बाण से प्रहार किया। बाण से ताड़का पुत्र मारीच को दूर गिरा दिया और सुबाहु को क्षुरप्र से खण्ड खण्ड कर पक्षियों के लिए फेंक दिया। विश्वामित्र ने उनकी पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

राम-विवाह

तभी ऋषि को मिथिला पति के निमन्त्रण पर मिथिला जाना पड़ा। वहाँ मिथिलेश ने अपनी पुत्री के स्वयंवर के निमित्त यज्ञ की तैयारी कर रखी थी। स्वयंवर वीर्य-शुल्क था। जो शिवधनुष को उठाकर उसपर बाण चढ़ा देगा उसी का वरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पुत्री सीता करेगी । जाते समय ऋषि राम लक्ष्मण को भी साथ लेते गये । मार्ग में वह उस आश्रम में पहुँचे जहाँ गौतम की पत्नी शिलामयी बनकर पड़ी थी । राम के चरण के स्पर्श से वहसजीव हो गयी । मिथिला में यज्ञ पूर्ण हो जाने पर ऋषि ने दोनों बालकों का परिचय कराया और धनुष उठाने के प्रति उनकी उत्सुकता बतलायी । तब चिन्ताग्रस्त मन से जनक ने अनुचरों के गण को धनुष उठालाने को कहा । धनुष आया तो उस धनुष पर जिससे शिव ने भागते हुए मृगरूपधारी यज्ञ पर बाण छोड़ा था राम ने सरलता से बाण चढ़ाकर सारी संसद् को चकित कर दिया । प्रत्यंचा के अधिक खींचने से धनुष भंग हो गया था और उसका वज्र जैसा परुष स्वन क्रोधी परशुराम के कानों में पड़कर उन्हें उस बात की सूचना दे आया कि क्षत्रिय वंश फिर उठ खड़ा हुआ है—

भज्यमानमतिमात्र- कर्षणात् तेन- वज्र- परुष- स्वनं धनुः ।

भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षमुद्यतमिवन्यवेदयत् ।। ११-४६

तब मिथिलाधीश ने वीर्यशुल्क के रूप में अपनी अयोनिजा कन्या विश्वामित्र की उपस्थिति में अग्नि को साक्षी कर राम को प्रदान कर दी । और दशरथ को सूचित कर उन्हें लेने के लिये पुरोहित को भेजा । दशरथ दलबल के साथ मिथिला आये । दोनों ओर कौतुकमङ्गल- क्रियायें हुई । जनक ने अपनी दूसरी पार्थिव कन्या उर्मिला का विवाह लक्ष्मण के साथ तथा अपने भाई कुशध्वज की पुत्रियों (माण्डवी और श्रुत कीर्ति) का विवाह भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया । जनक से विदा लेकर राम तीन दिन में अयोध्या पहुँचे किन्तु बीच में उन्हें अनेक अशकुन होने लगे थे । जब उन्होंने वसिष्ठ से पूछा तो वसिष्ठ ने केवल 'स्वन्त' अर्थात् इसका परिणाम अच्छा ही होगा, कहकर उन्हें सान्त्वना दी ।

परशुराम पराजय

इसी समय सेना के सामने एक तेजोराशि प्रकट हुई जिसे देखकर सबकी आँखें चौंधिया गयी । यह परशुराम थे जिनके कन्धे पर पिता का चिह्न यज्ञोपवीत तथा और हाथ में माता का अंश अस्त्र । दाहिने कान पर इक्कीस बार क्षत्रियजय का प्रतीक इक्कीस अक्षों की माला थी । दशरथ द्वारा अर्घ्यग्रहण करने की प्रार्थना को उपेक्षित कर उन्होंने अपनी दृष्टि राम पर गड़ा दी और बोले- एक तो तुमने अपना नाम राम रखकर मेरी कीर्ति के अपहरण का प्रयत्न किया है । और शिव का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो धनुष् तुमने तोड़ा है वह पुराना था फिर भी जब तक मैं तुम को न जीत लूँ तब तक मेरी विजय पूर्ण नहीं । अब यदि तुम मेरे धनुष पर बाण चढ़ा लोगे तो मैं मान जाऊँगा कि तुमने मुझे जीत लिया और इतना नहीं कर सकते तो हाथ जोड़कर मुझ से क्षमा माँगो । परशुराम के ऐसा कहने पर राम ने उनके धनुष के किनारे को भूमि पर रखकर उस पर बाण चढ़ा दिया ।

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन माभवतिनाजिते त्वयि ।

पावकस्य महिमा सगण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ।

११-७५

तेन भूमिनिहितैककोटि तत् कार्मुकं च बलिना ऽधिरोपितम् ।

निष्प्रभश्च रिपुरास योषितां धूमशेष इव धूमकेतनः ॥११-८१

तब राम ने उनसे कहा—आपने मेरा अपमान किया है फिर भी मैं आप पर प्रहार नहीं कर सकता क्योंकि आप ब्राह्मण हैं । तब बताइये कि अब इस बाण से आप की गति को नष्ट करूँ या आपके पुण्य लोक को ? परशुराम बोले—यह बात नहीं है कि मैं आपको विष्णु नहीं जानता किन्तु पृथिवी पर मैं आपके वैष्णव तेज को देखना चाहता हूँ । इसीलिये आपको क्रोधित किया है । मैंने पिता के शत्रुओं से बदला ले लिया है और सागर पर्यन्त पृथिवी सुपात्रों को दानकर दी । अब आप परमेष्ठी से प्राप्त पराजय भी मेरे लिये प्रशंसा की बात है । तो आप मेरे स्वर्ग- गमन मार्ग को निरुद्ध कर दीजिये किन्तु तीर्थ करने के लिये मेरी गति बनी रहने दीजिये । तब राम ने पूर्वोन्मुख होकर उनके धनुष् से बाण छोड़ा और वह बाण उनके स्वर्गमन मार्ग में अर्गलावन कर रह गया । तब राम ने क्षमा कर दीजिये यह कहते हुये परशुराम के चरण छुए । परशुराम 'मैं जा रहा हूं । आपका मार्ग निर्विघ्न हो ऐसा कह कर अन्तर्हित हो गये । तत्पश्चात् दशरथ मार्ग में कई रातें बिताकर अयोध्या पहुँच गये ।

राम का युवराज्त्व

दशरथ वृद्ध हो चुके । कैकेयी की शंका से उन्होंने राम को सिंहासन सौंपने का विचार किया । इस चर्चा से नागरिक बहुत प्रसन्न हुए किन्तु उसने सारे आयोजन को विफल कर दिया । उस चण्डी ने पति द्वारा पहले दिये हुए दो वरों को माँग लिया । इनमें एक से राम को चौदह वर्ष का वनवास और दूसरे से भरत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्याभिषेक माँगा। राम ने पिता द्वारा दिये जाते हुए सिंहासन को तो रोते हुए स्वीकार किया था किन्तु वनवास की आज्ञा मुदित होकर शिरोधार्य की। नागरिकों ने मंगल-क्षौम धारण करके और फिर वल्कल पहनते समय देखा कि उनके मुख पर समान भाव था।राम, सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए और साथ ही उनके वियोग से पीड़ित दशरथ ने अपने शाप का स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिया।

रामवनगमन

राम की कथा, यहाँ तक दशरथ के साथ गुथीं हुई है। राम के वन चले जाने, दशरथ के प्राणत्याग कर देने और भरत-शत्रुघ्न के ननिहाल में होने से अयोध्या का राज्य अरक्षित जानकर शत्रुगण उसे लूटने खसोटने लगे। प्रजा अनाथ हो गयी। तब मंत्रियों ने भरत को मातृगृह से वापिस बुला लिया। घर आकर भरत ने जब पिता की मृत्यु का कारण जाना तो उन्हें न केवल माता से, अपितु राज्यश्री से विराग हो गया। और तब वह सैन्य के साथ राम के पास चित्रकूट जाकर पिता की मृत्यु का समाचार देते हुए राम को अनुच्छिष्ट राज्यलक्ष्मी के भोग के लिये लौटाने की चेष्टा करने लगे।

चित्रकूट- वनस्थं च कथित- स्वर्गतिर्गुरोः।

लक्ष्म्या निमन्त्रयांचक्रेतमनुच्छिष्ट- सम्पदा॥१२-१५

राम तो निष्काम थे। उन्हें न राज्य प्राप्ति से हर्ष हुआ था, और न वनवास से दुःख—

पित्रा दत्तं रूदन् रामः प्राङ् महीं प्रत्यपद्यत।

पश्चाद् वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत्॥ १२-७

दधतो मङ्गल-क्षौमे वसानस्य च वल्कले।

दद्दशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः॥ ८

ऐसे राम को लौटा पाना असंभव देखकर भरत ने राज्याधिदेवता के रूप में उनसे पादुकाओं की याचना की और उन्हें लेकर वह नन्दिग्राम में रहकर न्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान प्रशासन चलाने लगे। राजधानी में उन्होंने प्रवेश नहीं किया। इसकार वह माता के पाप का प्रायश्चित्त करने लगे।

जयन्त-प्रसंग

एक बार राम थक कर किसी वृक्ष के नीचे सीता की गोद में सिर रख कर सो गये। इतने में इन्द्र का पुत्र जयन्त, पक्षी का वेष बना कर आया और सीता के दोनों स्तनों को नखों से विदीर्ण कर गया। जब सीता ने राम को यह बात बताई तो उन्होंने एक सींक को धनुष पर चढ़ाकर जयन्त के मारा। उसकी एक आँख फूट गयी और वह जान बचाकर भाग गया—

ऐन्द्रिः किलनखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः। १२-२२

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः।

आत्मानं मुमुचे तस्मादेक- नेत्र- व्ययेन सः॥ १२-२३

पञ्चवटी गमन

भरत के पुनः आने की आशंका से राम चित्रकूट छोड़ कर दक्षिण दिशा को चल दिये। मार्ग में ऋषियों के आश्रमों में ठहरते थे। अनसूया ने सीता को सुगन्धित अङ्गराग भेंट किया। मार्ग में सान्ध्य मेघ के समान कपिश वर्ण वाला विराध राक्षस उनका मार्ग रोक कर खड़ा हो गया और दोनों भ्राताओं के बीच से सीता को हर ले गया। राम लक्ष्मण ने उसे मार कर भूमि के भीतर गाड़ दिया जिससे वह दुर्गन्ध के द्वारा उस स्थली को दूषित न कर सके—

सजहारतयो र्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।

तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम्।

गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचन्खतुः॥ १२-३०

सीता हरण

तब अगस्त्य ऋषि के आदेश से राम पञ्चवटी में जाकर रहने लगे। वहाँ रावण की बहिन कामातुर होकर उनके पास आई और सीता के सामने ही अपने कुल का बखान करती हुई राम का वरण करने लगी। तब राम ने उससे कहा कि मैं तो कलत्रवान हूँ। तुम मेरे छोटे भाई के पास चली जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलत्रवानहं वाले। कनीयांसं भजस्व मे।

इति रामो वृषस्यन्तीं वृष- स्कन्धः शशास ताम्॥ १२-३४

किन्तु लक्ष्मण ने भी उसका प्रत्याख्यान कर दिया तो वह फिर राम के पास गयी। तब सीता उसे देखकर हँस पड़ी। इससे संक्षुब्ध होकर उसने अपना मायावी सुन्दररूप त्याग कर सत्य राक्षसी रूप प्रकट कर दिया और क्रुद्ध होकर कहा कि इसका फल तुम्हें शीघ्र ही मिल जायगा। तब लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट कर उसे कुरूप बना दिया—

पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य सः।

वैरूप्य- पौनरूक्त्येन भीषणां तामयोजयत्॥ १२-४०

जनस्थान में पहुँच कर उसने खरादिकों को राम के उस व्यवहार की सूचना दी। तब राक्षसों ने राम पर आक्रमण कर दिया। राम सीता को लक्ष्मण की सुरक्षा में छोड़ कर अकेले लड़ने पहुँचे और बाण प्रहार से सारी सेना, खरदूषण और त्रिशिरा नामक उनके सेनानियों को मार गिराया—

एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः।

ते तु यावन्त एवाजौ तावाँश्च ददृशेस तैः। १२-४५

तस्मिन् रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम्।

उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कबन्धेभ्यो न किञ्चन। १२-४९

केवल शूर्पणखा ही शेष रह गयी और उसी ने रावण को यह दुःसंवाद जाकर सुनाया। तब रावण मृगरूप राक्षस के द्वारा राम लक्ष्मण को छल कर सीता को हर ले गया। मार्ग में पक्षीन्द्र जटायु ने उसे रोकने की चेष्टा की किन्तु वह रोक न सका—

रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा सराघवौ।

जहार सीतां पक्षीन्द्र प्रयासक्षण- विघ्नितः॥ १२-५३

सीता को ढूँढते हुए उन्होंने जटायु को देखा जिसके पंख रावण ने काट डाले थे। जटायु ने उन्हें सीता विषयक जानकारी दी और दशरथ की मैत्री से उत्रृण हो कर प्राण त्याग दिये। तब दोनों ने पिता के समान उसका दाहसंस्कार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिवध

उन्होंने कवन्ध का वध भी किया। कवन्ध ने शाप से मुक्त होकर उन्हें सम-दुःखी सुग्रीव से मैत्री स्थापित करने का मार्ग बतलाया और राम ने सुग्रीव का पक्ष लेकर उसके ज्येष्ठ भ्राता बालि को मार कर उसका राज्य सुग्रीव को दे दिया—

सहत्वा बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।

धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्॥ १२-५८

सुग्रीव के आदेश से वानरगण सीता को ढूँढने चारों ओर निकल गये। जटायु के अग्रज सम्पाति ने उन्हें सीता का पता बताया तो हनुमान समुद्र पार कर लङ्का में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने राक्षसियों से घिरी सीता को देखा और उन्हें राम की अभिज्ञान मुद्रिका दी। सीता को सन्तुष्ट कर उन्होंने रावण- पुत्र अक्ष को मारा, मेघनाद का बन्धन भी भोगा और फिर लङ्का में आग लगा दी—

निर्वाप्य प्रियसन्देशैः सीतामक्षवधोद्यतः।

स ददाह पुरीं लङ्कां क्षण- सोढारि- निग्रहः॥ १२-६३

राम-रावण युद्ध

हनुमान ने लौट कर राम को सीता का अभिज्ञान चूडामणि प्रदान किया। तब राम ने लंका पर आक्रमण की तैयारी की। समुद्र तट पर रावण का भाई विभीषण उनसे आ मिला। राम ने ऋक्ष वानरों से समुद्र में पुल बनवाया और फिर समुद्र पार कर लंका को घेर लिया। वानरों और राक्षसों के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ। वानरों ने परिघों का सामना पादपो से, मुद्गरों का शिलाओं से, शस्त्र प्रहार का नखाघातों से और मतङ्गजों का शैलखण्डों से किया। किसी राक्षस ने सीता को राम का कटा शिर दिखाया तो त्रिजटा ने उसे मायावती कर सीता की व्याकुलता शान्त की—

कामं जीविति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्।

प्राङ्मत्वा सत्यमस्यातं- जीविताऽस्मीति लज्जिता॥ १२-७५

मेघनाद ने जो नाग पाश फेंका वह गरूड़ के आ जाने से छिन्न भिन्न हो गया। तब रावण ने लक्ष्मण के वक्ष पर शक्ति (साँगा) का प्रयोग किया। लक्ष्मण अचेत हो गये। राम का हृदय विदीर्ण सा हो गया। किन्तु मारूति के द्वारा लायी हुई महौषधि से उनकी व्यथा दूर हो गयी। सुग्रीव ने कुम्भ कर्ण के नाक कान काट लिए तब उसने आकर राम को घेर लिया किन्तु राम ने उसका वध कर दिया। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण मरने या राम को मारने का निश्चय करके महल से निकला। इन्द्र ने रावण को रथ पर किन्तु राम को पैदल देख कर उन्हें अपना कपिल अश्वों वाला रथ दे दिया। मातलि ने इन्द्र का कवच भी राम को पहना दिया। राम रावण के बीच भंयकर युद्ध हुआ। रावण लोहे ने की कीलों से भरी शतघ्नी राम पर फेंकी किन्तु राम ने उसे बाण के द्वारा खण्ड खण्ड कर दिया। तब राम ने धनुष पर अमोघ बाण चढ़ाया और मन्त्रपूर्वक रावण पर फेंका। उसने रावण के मस्तक समूह को काट कर गिरा दिया। देवों ने राम के मस्तक पर फूलों की वर्षा की। तब राम ने विभीषण को लंका का राज्य देकर और अग्नि द्वारा शुद्ध की हुई सीता को लेकर लक्ष्मण सुग्रीवादि के साथ स्वयं जीते हुए पुष्पक विमान से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

अयोध्या गमन

मार्ग में उन्होंने स्वयं बनवाये हुए पुल से मलयपर्वत तक विभक्त फेनिल अम्बु- राशि सीता को दिखायी और बताया कि कपिल द्वारा चुराये हुए अश्वमेघ के अश्व को ढूँढते हुए हमारे पूर्वजों ने पृथिवी का विदारण करके इसे बढ़ाया है। इसमें वडवाग्नि भी है। जब इन्द्र पर्वतों के पंख काटने लगे तो अनेक पर्वतों ने डर के मारे भाग कर इसके भीतर शरण ली थी। जब आदि वराह ने पृथिवी का उद्धार किया तो प्रलय काल का बढ़ा हुआ इसका जल भू के मुख का आभरण (अवगुण्ठन) बना था। राम ने सीता को बताया कि देखो अब फूटी हुई शुक्तियों से बिखरे मुक्ता- समूह और सुपारी के वृक्ष समूह से युक्त समुद्रतट आ गया। फिर वे सकानन भूमि पहुँचे। विमान उनकी इच्छा के अनुरूप कभी देवताओं के, कभी मेघों के और कभी पक्षियों के मार्ग से सजा रहा था। राक्षसों का भय समाप्त हो जाने के कारण चीर-वल्कल धारी तपस्वी अब जनस्थान में नयी पर्णशालायें बना रहे थे। वह स्थान भी देखा जहाँ राम को सीतान्वेषण के समय उनका एक कंकण पड़ा मिला था। वे उच्च शिखर वाले माल्यवान् पर्वत, पम्पासर, गोदावरी के ऊपर उड़ते सारस, पञ्चवटी, अगस्त्य का आश्रम, शातकर्णि मुनि का पञ्चाप्सरस तीर्थ जहाँ इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेज कर उन्हें तप से भ्रष्ट किया था, सुतीक्ष्ण का तपः स्थान, शरभङ्ग आश्रम, ककुद्मानम् चित्रकूट, मन्दाकिनी, अत्रिकातपोवन, 'श्याम' वट वृक्ष, गंगा-युमना संगम स्थल, निषाद राज का नगर श्रृङ्गवेरपुर, यज्ञयूपों से मण्डित सरयूनदी आदि पूर्वदृष्ट या उषित स्थानों के देखते हुए वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ उनका विमानभूमि पर उतरा। वहाँ भरत के नेतृत्व में सब ने उनका स्वागत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम पहले वसिष्ठ को प्रणाम कर वृद्ध मन्त्रियों से मिले। राम ने विभीषण और सुग्रीव का परिचय सब को दिया। भरत ने लक्ष्मण का आलिङ्गन किया राम की आज्ञा से वानर सेनापति मनुष्य रूप धारण कर हाथियों पर सवार हो गये। विभीषण ने अपने अनुगामियों के साथ रथों पर आरोहण किया। फिर राम अनुजों के साथ फिर पुष्पक पर सवार हो गये। भरत ने सीता को प्रणाम किया। आधा कोस पुष्पक से चल कर राम ने शत्रुघ्न द्वारा स्वागतार्थ सजाये हुए साकेतोपवन में प्रवेश किया।

राम- राज्याभिषेक

राम की मातायें पति की मृत्यु के कारण अत्यन्त कृश हो गयी थीं। उन्हें नेत्रों से स्पष्ट दिखायी नहीं देता था। वे स्पर्श से ही पुत्रों को पहचान पायीं। उनके क्षतांगों पर हाथ फेरने लगीं। दोनों भाई उनके चरणों पर झुक गये। सीता ने स्वयं को पति के लिए क्लेशावहा अलक्षणा कहते हुए दोनों माताओं को प्रणाम किया तो वे बोलीं—बेटी, तुम्हारे ही चारित्रिक बल के सहारे ये दोनों इतने कृच्छ्र सागर को पार कर सके हैं। तब वृद्ध मन्त्रियों ने तीर्थों से लाये हुए जल से राम का अभिषेक पूरा किया—

उभा वुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ।

विस्पष्टमस्रान्धतयान दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्श-सुखोपलम्भात्।१४-२

उतिष्ट वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव ।

कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या॥ १४-६

वे राजोचित वस्त्रालंकार धारण करने पर भी वैसे ही सुन्दर दिख रहे थे जैसे वह तपस्वी के वेष में लगते थे। तब उन्होंने अपनी कुल राजधानी में प्रवेश किया। स्त्रियाँ छज्जों से खीलें बरसा रहीं थीं। साथ रथ पर बैठे लक्ष्मण चँवर डुला रहे थे। शत्रुध्न भी चँवर लिये थे। भरत श्वेत छत्र लगाये थे। सीता कर्णीरथ पर सवार थीं। प्रासाद में प्रवेश करते हुए माता कैकेयी के चरणों पर यह कहते झुके कि 'मां' हमारे पिता यदि सत्य से नहीं डिगे तो उसका श्रेय केवल तुम्हें है।

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्ग- फलाद् गुरूर्नः।

तच्चिन्त्यमानं सुकृतंतववेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः।

१४.१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर ऋषियों, तपस्वियों तथा साथ आये ऋक्ष वानरों का सम्यक् सत्कार कर उन्हें विदा किया और राज काज देखने लगे। कुछ ही समय में सीता के मुख पर गर्भ के लक्षण दिखायी देने लगे। राम एकान्त में गोद में बिठाकर गर्भवती सीता से उसका दोहद (विशेष इच्छा) पूछते।

सीता -परित्याग

एक दिन सीता ने कहा—

सा दष्ट- नीवारवलीनिर्हिंस्त्रैः सम्बद्ध- वैखानस- कन्यकानि ।

इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं- भागीरथी- तीर तपोवनानि ॥

१४-२८

मैं मुनि कन्याओं वाले कुशवान् तपोवनों को, जो भागीरथी के तीर पर अवस्थित हैं, देखना चाहती हूं। राम ने स्वीकार कर लिया। इसी बीच जब उन्होंने भद्र नामक अपने गुप्तचर से राज्य के विषय में पूछा तो उसने बतलाया कि राज्य में सब लोग आप का यश गाते हैं किन्तु वे राक्षस भवन में रही हुई सीता देवी को आप के द्वारा पत्नी रूप में पुनःस्वीकार करना पसन्द नहीं करते—

निर्बन्धपृष्टः सजगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्।

अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेवदेव्याः ॥ १४-३२

यह सुन कर राम का हृदय विदीर्ण हो गया। क्या मैं बदनामी की उपेक्षा कर दूँ या सीता का परित्याग कर दूँ, यह सोचते सोचते उन्हें द्वितीय मार्ग ही उचित प्रतीत हुआ। उन्होंने भाइयों को बुलाकर सारी बात बतायी और कहा कि मैं नागरिकों में इस विषय को लेकर बढ़ते हुए असन्तोष को सहन नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि सीता निष्पाप है किन्तु मेरे लिये लोकापवाद बड़ी बात है—

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तपां तरङ्गेष्विव तैलविन्दुम्।

सोढुं नतत्पूर्वमवर्ण मीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः ॥

१४-३८

अवैमिचैनामनघेति किन्तुलोकापवादो वलवान् मतोमे। १४-४

इसलिए आप लोग मेरे इस निश्चय का विरोध मत करना। भाईयों में न कोई उनका अनुमोदन कर सका और न निषेध। फिर उन्होंने लक्ष्मण से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—सीता गर्भवती है। उसकी इच्छा तपोवन देखने की है। सो तुम इस बहाने उसे ले जाकर वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने 'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया' के अनुसार स्वीकार कर लिया और गंगा के पास ले जाकर उन्हें राम का आदेश सुनाया। सीता मूच्छित हो गयी। जब उनकी चेतना लोट आयी और लक्ष्मण ने उसे वाल्मीकि के आश्रम का मार्ग बताया और ढाढस भी बँधाया तो उसने कहा—वत्सलक्ष्मण ! मैं तुससे प्रसन्न हूँ। चिरंजीवी बनो। मेरी सासों को मेरा प्रणाम निवेदित करना और कहना कि वे मेरे उदर में स्थित अपने पुत्र की सन्तान के लिए मंगल कामना करें। और राम से कहना—हे राजन् अग्नि में विशुद्ध सिद्ध हो जाने पर भी मुझे लोकापवाद के कारण तुमने जो मुझे छोड़ दिया है वह क्या शास्त्रानुकूल या तुम्हारे कुल के अनुकूल है ? फिर भी मैं तुम्हें दोष नहीं देती। यह मेरे ही पूर्वजन्म के पातकों का परिपाक है। अब मैं तुम्हारे सन्तान को जन्म देने के पश्चात् इस प्रकार तप करूँगी कि अगले जन्म में तुम ही पति मिलो और तुमसे वियोग न हो—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् सराजा वह्नौ विशुद्धामपियत् समक्षम्

मांलोकवाद- श्रवणादहासीः श्रुतस्यकिं तत्सदृशं कुलस्य ॥

१४-६१

कल्याण वुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।

ममैव जन्मान्तर- पातकानां विपाक- विस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥

१४-६२

साहं तपः सूर्य- निविष्ट- दृष्टि रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।

भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।

१४-६६

लक्ष्मण के दृष्टि पथ से ओझल हो जाने पर वह गला फाड़ कर टिटहरी के समान चीख कर रोने लगी जिसे सुनकर मोरों ने नाचना बन्द कर दिया। वृक्षों ने पुष्प और हरिणियों ने मुँह में दबे कुशों को नीचे गिरा दिया। सारा वन सीता के साथ रो पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द्र विग्नाकुररीव भूयः ।

१४-६८

नृतं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहु र्हरिण्यः ॥

१४-६९

कुश तथा यज्ञसमिधा लाने के लिए निकले वाल्मीकि उसका रूदन सुन कर पास आये, वह वाल्मीकि जिन का शोकक्रौञ्च की व्यथा से उपजकर श्लोक में परिणत हो गया था—

तामभ्यगच्छद् रूदितानुसारी मुनिः कुशेध्माहरणाय यातः ।

निषाद- विद्धाण्डज- दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्यशोक ।

१४-७०

सीता ने मुनि को प्रणाम किया । मुनि ने उन्हें सुपुत्रवती होने की आशीष दी और कहा कि बेटी, मैं सब जान गया हूँ । तुम्हारे श्वसुर मेरे मित्र थे । तुम स्वयं को पिता के घर आयी समझो । यहाँ मेरे आश्रम में रहो । यहीं तुम्हारी सन्तति का जन्म और उनके सारे संस्कार निष्पन्न होगें । मुनि कन्यायें यहाँ तुम्हारा मनोविनोद करेंगी । उधर लक्ष्मण ने राम को सारी बात बतायी तो उनके आँसू गिरने लगे । निन्दा के भय से उन्होंने सीता को घर से निकाल दिया था, हृदय से तो नहीं—

वभूव रामः सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्य- चन्द्रः ।

कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेह- सुता मनस्तः । १४-८४

राम ने दूसरा विवाह नहीं किया । यज्ञ में अर्धाङ्गिनी के स्थान पर उसकी प्रतिमा प्रतिष्ठित कर ली । सीता की बात सुनकर किसी प्रकार विरह-वेदना को सहन किया ।

लवणासुर वध

राम राजकाज देखने लगे । तभी यमुना के पास रहने वाले याज्ञिक लोगों ने लवणासुरजन्य अत्याचार का निवेदन किया और बतलाया कि उसके पास शूल है जिसके रहते उसे कोई मार नहीं सकता । जब वह विशूल हो उस समय उसे ललकारिये । राम ने उसके प्रतिरोध के लिए लक्ष्मण को आदेश दिया । आदेश पाकर शत्रुघ्न याजक मुनियों के साथ चल लिये । मार्ग का पहला पड़ाव वाल्मीकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आश्रम में हुआ। उसी समय सीता ने दो पुत्रों को दिया। इस समाचार से प्रसन्न शत्रुघ्न वाल्मीकि की आज्ञा लेकर चल दिये और मधूपघ्न नामक लवणपुरी में पहुँचे। वहीं पर रावण की बहन कुम्भीनसी का पुत्र लवण वन से अनेक जीवों को पकड़ कर पहुँचा। उस समय उसके पास शूल नहीं था। सुअवसर जान कर शत्रुघ्न ने उस पर आक्रमण कर दिया। दोनों के बीच प्रबल युद्ध हुआ। अन्त में शत्रुध्न ने उसे कार्ष्ण (वैष्णव) बाण से मार कर गिरा दिया। ऋषियों और देवों ने उनपर पुष्प वृष्टि की। फिर शत्रुघ्न ने यमुना के किनारे मधुरा नामक नगरी बसायी।

उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरूष- भूषणः।

निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मधुरां मधुराकृतिः। १५-२८

लवकुश जन्म

उधर वाल्मीकि ने सीता के पुत्रों का कुश और लव (गो पुच्छ का बाल) से नाल काटे जाने के कारण उनका नाम कुश और लव रख दिया। उन्हें साङ्गवेद पढ़ाया और थोड़ा बड़े होने पर स्वरचित महाकाव्य रामायण का गान सिखाया। वे दोनों माता के सम्मुख राम के मधुर चरित्र को गा-गा कर उसका मन बहलाने लगे। राम के तीनों भाइयों की पत्नियों ने भी दो दो पुत्रों को जन्म दिया। शत्रुघ्न अपने दोनों पुत्रों सुबाहु और बहुश्रुत को क्रमशः मधुरा और विदिशा का राज्य देकर स्वयं राम के पास लौट आये। वाल्मीकि के आदेश से शत्रुघ्न ने राम को सीता के पुत्रों के विषय में कुछ नहीं बताया।

शम्बूकवध

एक दिन एक ब्राह्मण अपने मरे हुए शिशु को गोद में लिये द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। वह क्रन्दन करता-दशरथ के राज्य में तो पिता के रहते पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी। राम ने भी सोचा कि इक्ष्वाकुओं के राज्य में कभी अकाल मृत्यु नहीं हुई। उन्होंने द्विज से कहा-आप थोड़ी देर ठहरिये और स्वयं यम को जीतने के लिए कुबेर के विमान का स्मरण किया। वह शस्त्र लेकर विमान से चले ही थे कि गूढ़ रूप सरस्वती ने कहा—राजन्! राज्य में कुछ अपचार (नियमविरूद्व आचरण) हो रहा है। तब राम अपचार की तलाश में चल दिये। उन्होंने वृक्ष की डाल से लटके और धुएँ से लाल नेत्रों वाले अधोमुख पुरूष को तप करते देखा। नाम पूछा तो उस धूम्रपायी ने जो वर्ण से शूद्र था, अपना नाम शम्बूक बतलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम ने तपका अनधिकारी, अतः प्रजाओं के लिए अपकारी जानकर शस्त्र से उसके सिर को धड़ से अलग कर लिया। उसकी दाढ़ी मूछों के बाल भी शस्त्र की चिनगारियों से जल गये—

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम्।

शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे। १५-५१

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्ट- किञ्जल्कमिव पङ्कजम्।

ज्योतिष्कणाहतश्मश्रुकण्ठनालादपातयत्। १५-५२

राजा से उपयुक्त दण्ड पाकर वह सज्जनों की उस गति को प्राप्त हुआ जो उसे कठिन तप से भी प्राप्त नहीं हो सकती थी।

कृतदण्डःस्वयं राज्ञालेभे शूद्रः सतां गतिम्।

तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्ग- विलङ्घिना॥ १५-५३

मार्ग में राम अगस्त्य से मिले। अगस्त्य ने उन्हें समुद्र द्वारा प्रदत्त दिव्य अलंकार प्रदान किया। ब्राह्मण का पुत्र राम के अयोध्या पहुँचने से पूर्व ही जी उठा था।

रामाश्वमेघ

राम ने अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमें सभी दिशाओं से महर्षि गण पधारे। राम सुवर्णमयी सीता की मूर्ति के साथ प्राग्वंश (यज्ञशाला) में रहते थे। इस समय मैथिली के पुत्र कुश और लव गुरू की प्रेरणा से उनके बनाये रामायण का गान किया करते थे। रामचरित, वाल्मीकि की रचना और गायक किन्नर कण्ठ बालक , फिर भला श्रोताओं का मन क्यों न आकृष्ट होता। लोगों ने बालकों के रूप और गान की प्रशंसा की तो राम ने भी कुतूहलवश उन्हें बुलाकर संसद में सुना। सब सदस्य एकाग्र मन से सुनते हुए रोने लगे।

वृत्तं रामस्य, वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नर-स्वनौ

किं तद्येन मनोहर्तुमलंस्यातान्न शृण्वताम्॥ १५-६४

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।

ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली॥ १५-६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद् गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी वभौ। १५-६६

सीता- पाताल-प्रवेश

राम के पूछने पर बालकों ने बताया कि यह वाल्मीकि की कृति है और उन्होंने ही उन्हें इसको गाना सिखाया है। तब छोटे भाइयों के साथ राम वाल्मीकि के आश्रम में गये। वहाँ उन्होनें अपनी देह को छोड़ कर, सम्पूर्ण राज्य उन्हें समर्पित कर दिया। तब मुनि ने बतलाया कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं। तुम सीता को स्वीकार करो। राम ने उत्तर दिया—तात ! आपकी बहू विशुद्ध है किन्तु रावण को लेकर यहाँ के लोगों ने उस पर विश्वास नहीं किया। यदि मैथिली अपने चरित्र के विषय में उन लोगों को विश्वास दिला दे तो मैं पुत्रों के सहित उसे स्वीकार कर लूँगा—

तातशुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि।

दौरात्म्याद् रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः।

ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।

ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया। १५-७२,७३

राम के ऐसा कहने पर ऋषि ने सीता को बुलवाया। प्रजा भी बुलायी गयी। तब पुण्य जल से आचमन कर सीता से कहा—

वाङ्मनः- कर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।

तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हति॥ १५-८१

यदि मन, वाणी और कर्म से राम के विषय में मेरा चरित्र दूषित नहीं है तो हे विश्वम्भरे मां ! मुझे भीतर छिपा लो। उसके ऐसा कहते ही पृथ्वी के भीतर से एक प्रभामंडल उदित हुआ और उसके मध्य से नागों द्वारा फनों पर धारण किये हुए सिंहासन पर साक्षात् पृथिवी देवी प्रकट हुई और वह, जबकि सीता राम पर दृष्टि गड़ाये थी, सामाजिकों के 'ऐसा मत कीजिए, ऐसा मत कीजिए।' यह कहते कहते ही सीता को गोद में लेकर रसातल को चली गयी। महर्षि अपने अपने स्थान को चले गये। राम ने अपना सीता-स्नेह पुत्रों पर उड़ेल दिया। उन्होने मामा युधाजित के कहने से भरत को 'सिन्धु' प्रदेश का राज्य दे दिया। वहाँ भरत ने गन्धर्वों को युद्ध में जीत कर शस्त्रों के स्थान पर उन्हें गीत- वाद्य थमा दिये। और तक्ष को तक्षशिला तथा पुष्कल को पुष्कलावती राजधानी में अभिषिक्त कर स्वयं राम के पास चले आये। लक्ष्मण ने भी राम के कहने से अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पुत्रा को कारापथ का राजा बना दिया। माताओं के परलोक चले जाने पर उनके निवाप संस्कार किये।

राम का शरीर त्याग

तब काल मुनि का वेश धारण कर राम के पास आया और उनसे कहा कि मैं तुमसे एकान्त में वार्ता करूँगा। इस बीच जो कोई हमारे बीच आये, उसका परित्याग कर देना।

उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम्।

रहः संवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति॥ १५-९२

और तब एकान्त में काल ने उनसे कहा—मैं काल हूँ। अब आप ब्रह्मा के आदेश से स्वर्ग को चलें। इसी समय दुर्वासा आये और राम से मिलने का आग्रह करने लगे। शाप के डर से लक्ष्मण ने उन्हें जाने दिया। साथ ही स्वयं सरयू में जाकर शरीर त्याग के द्वारा काल के प्रति राम के वचन को म्त्य किया।

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित्।

चकारावितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः॥ १५-९५

लक्ष्मण की मृत्यु से पीडित राम ने कुश को कुशावती और लव को शरावती में अभिषिक्त कर भाइयों के साथ अग्नि को आगे लिये हुए उत्तर की ओर चल दिये। सारी अयोध्या उनके पीछे उमड़ पड़ी। राम विमान पर आरूढ़ हुये तो उनके पीछे आने वाली जनता के लिये सरयू को स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया। सरयू के तट पर स्नान करने वालों की इतनी भीड़ थी कि उस स्थान का जल गो के पार करने योग्य हो गया। इसलिये उस घाट का नाम गोप्रतर हो गया। इस प्रकार रामदेवों का कार्य (रावण) वध सम्पन्न कर और अपने दो कीर्तिस्तम्भों के रूप में दक्षिण गिरि पर विभीषण और उत्तर गिरि पर हनुमान को प्रतिष्ठित कर स्वयं अपने सर्वलोकाश्रयी भूत शरीर में प्रविष्ट हो गये।

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां

विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोक- प्रतिष्ठम्।

लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा

कीर्तिस्तम्भं द्वयमिवगिरौ दक्षिणे चोत्तरे च। १५-१०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशचरित

कुशावती और अयोध्या

राम और उनके भाइयों की मृत्यु के पश्चात् सातों रघुवंशीय युवराजों ने जन्म तिथि तथा गुणों की दृष्टि से भी बड़े होने के कारण कुश को विशिष्ट रत्न, सम्पत्ति और पद प्रदान किये। उन्हें सबने प्रमुख मान लिया और उनमें से किसी ने भी अन्य की सीमा का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार यह वंश आठ भागों में विभक्त हो गया। कुश अपनी राजधानी कुशावती में रहकर राजकाल देखने लगे और अयोध्या उजाड़ दिखने लगी। एक दिन जब कुश सोये हुए थे तो रात्रि बेला में एक स्त्री उनके सम्मुख दिखायी दी। उसने 'जय' कहकर अञ्जलि बाँधी। उसे देखकर कुश ने कहा कि तुम जोगिनी तो नहीं लगती, फिर भी मेरे बन्द गृह में घुस आयी हो। आकृति से दुःखी दिखायी देती हो। तुम कौन हो किसकी पत्नी हो ! मेरे पास किस उद्देश्य से आयी हो। यह सोचकर सारी बात कहो कि रघुवंशी इन्द्रियजयी होते हैं। वे दूसरों की स्त्रियों की ओर नहीं झुकते। तब उस स्त्री ने निवेदन किया—राजन्। मैं उस नगरी की अनाथ अधिदेवता हूँ जिसके स्वामी आपके पिता अपने साथ पौर जनों को भी लेकर स्वर्ग चले गये हैं। अब अयोध्या श्री हीन हो गयी है। अतः आप इस नगरी को छोड़ कर अब मेरे साथ चलिये। कुश ने उसकी बात स्वीकार कर ली और प्रातःकालीन संसद में उन्होंने यह बात द्विजों को बतलायी। उन सबने अनुमोदन किया तो कुश ने अपनी कुशावती वैदिक विद्वानों को दे दी और स्वयं रनिवास के साथ अयोध्या की ओर चल दिये। गजों, अश्वों और पदातियों से युक्त कुश की विशाल सेना रेणु को पंक और पंक को रेणु बनाती, विन्ध्य की शृंखला में मार्ग खोजने के लिये अनेक भागों में बँट गयी। लाल मिट्टी पर चलने से रथ के पहियों की नेमि भी लाल हो गयी। मार्ग में पुलिन्दों के द्वारा लायी गयी भेंटों को स्वीकार करते वे लोग विन्ध्य पार कर गये।

सा धातुभेदारुणयान-नेमिः प्रभुः प्रयाण- ध्वनि- मिश्रतोयः।

व्यलङ्घयद् विन्ध्यमुपायनानि पश्यत् पुलिन्दैरुपपादितानि॥

१६-३३

विन्ध्य के पास गंगा के घाट पर हाथियों की पंक्ति ने पुलसावनादिया जिससे गंगा की धारा प्रतीप- गामिनी बन गयी। अपने पूर्वजों द्वारा पृथिवी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लायी हुई गंगा को कुश ने प्रणाम किया। कई दिन की यात्रा के पश्चात् वह सरयू के तट पर पहुँचे जहाँ रघुवंशियों के यज्ञ वितान के स्मारकरूप सैकड़ों यूप गड़े थे—

इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्यकुशः सरय्वाः।

वेदि- प्रतिष्ठान् विततांध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्।

१६-३५

कुश की सेनाओं ने अयोध्या के समीप डेरा डाला। उनके पहुँचने से पूर्व ही शिल्पि- संघ ने नगरी को सजा दिया था। रघु ने वहाँ पहुँच कर देवताओं के प्रशस्त आयतनों वाली उस नगरी में वास्तुविद् विद्वानों के द्वारा पशुबलि सहित पूजा करायी। कुश राज- प्रासाद में रहकर अपने मंत्री आदि अधिकारियों के साथ प्रशासन करने लगे।

कुमुद्वती-परिणय

इतने में ग्रीष्म काल आ गया। कुश जल विहार का आनन्द लेने लगे। एक दिन पत्नी के साथ जल क्रीडा कर कुश जब सरयू से निकलकर उपकार्या (शामियाने) में आये तो उन्होंने अपना हाथ कंगन (वलय) से शून्य देखा। विजयश्री का वशीकरण वह वलय उन्हें राम ने दिया था—

स्नात्वा यथा काममसौ सदारस्तीर्थोपकार्यां गतमात्रएव।

दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमपोदनेपथ्यविधि र्ददर्श॥ १६-७३

बहुत से नदीष्णों (गोताखोरों) और जालिकों ने वलय को ढूँढने का प्रयत्न किया किन्तु जब वे सफल नहीं हुए तो उन्होंने आकर कहा कि शायद यहाँ सरयू के कुण्ड में रहने वाले कुमुद नामक नाग ने वह रत्न- वलय लील लिया हैं। तब क्रुद्ध होकर कुश ने गरूत्मात् बाण धनुष पर चढ़ाया। बाण चढ़ाते ही नागराज कुमुद ह्रद से बाहर निकला। वह एक कन्या को आगे किये था। उसके हाथ में कुश का वलय था। मैं विष्णु के अवतार के पुत्र आप को जानता हूँ। मैं भला आप का अपकार क्यों करूँगा। इस बाला ने, जब यह गेंद लपकने के लिए अपने हाथ ऊपर किये थी तो हाथ में आ जाने से वलय को पकड़ लिया। आप वलय लीजिये। इसे फिर पहन लीजिये। यह मेरी छोटी बहिन कुमुद्वती है। इसे भी सेवा में स्वीकार कीजिये। ऐसा कहकर उसने आभूषण और कन्या दोनों कुश को अर्पित कर दिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघात- रेखाकिण- लाञ्छनेन।

भुजेन रक्षापरिघेण भूमे रूपैतु योगं पुनरंसलेन। १६-८४

इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम्।

आत्मापराधं तुदतीं चिराय शुश्रुषया पार्थिव पादयोस्ते ॥ ८५

कुश ने माङ्गल्य ऊर्णा-वलय से युक्त कुमुद्वती का पाणि अग्नि के समक्ष ग्रहण किया। व्यापक तूर्यध्वनि हुई। मेघों से सुरभित- पुष्पवर्षा हुई।

अतिथि चरित

कुमुद्वती से कुश को अतिथि नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। कुश ने उसे विधिवत् आन्वीक्षिकी, त्रयी, दण्डनीति आदि की शिक्षा देकर उसका विवाह कर दिया। अतिथि में सारे पैतृक गुण विद्यमान थे। पश्चात् कुश युद्ध में इन्द्र की सहायता के लिये गये जहाँ उन्होंने दुर्जय नामक दैत्य को मारा और स्वयं भी उसके द्वारा मारे गये। कुमुद्वती उनके साथ सती हो गयी।

जघान समरेदैत्यं दुर्जयं तेन चावधि।

तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती

अन्वगात् कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ॥ १७-६

तब कुश की इच्छा का आदर करते हुए वृद्ध मन्त्रियों ने अतिथि को सिंहासन पर बैठाया—

पुरोहित- पुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः

उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः ॥ १७-१३

इस अवसर पर स्नातकों को पर्याप्त धन दिया गया, बन्दी मुक्त किये गये, प्राण दण्ड पाये हुओं को क्षमा किया गया। भारबाही पशुओं को भार से मुक्त और गाओं को दोहक्रिया से अवकाश दिया गया। पञ्जरों में बन्द पक्षी मुक्त कर दिये गये।

सतावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौवसु। १७-१७

बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणामवध्यताम्।

धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहंचादिशद् गवाम्। १७-१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।

लब्ध- मोक्षास्तदादेशाद् यथेष्ट- गतयोऽभवन् ॥ १७-२०

मोतियों का आभूषण पहने, मालाधारण किये, हंस चित्रित दुकूल से परिहित अतिथि सुधर्मा (देव सभा) के तुल्य सभा में सिंहासन पर बैठे तो उनकी शोभा अपूर्व थी—

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंस चिह्न- दुकूलवान् ।

आसीदतिशयप्रेक्ष्यः सराज्य- श्री- वधूवरः । १७-२५

अतिथि आदर्श राजासिद्ध हुआ । उसके शासन काल में समृद्धि और सुख का अन्त नहीं था । अतिथि गुणों और धर्म तथा नीति का अवतार था—

यदुवाच न तन्मिथ्या यद् ददौ न जहार तत् । १७-४२

वसिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्यधन्विनः ।

किं तत् साध्यं यदुभये साधयेयुर्न संगताः । १७-३८

अन्य नरेश

निषध

निषध नरेश की पुत्री से अतिथि को निषध पर्वत के समान बली पुत्र प्राप्त हुआ । उन्होंने उसका नाम निषध रखा । पिता उसे राज्य सिंहासन सौंपकर, विविध विषयों का भोग करने के उपरान्त स्वर्ग सिधारे । कुश का यह पौत्र कपाट के समान चौड़े वक्ष वाला था । उसने भी सागर पर्यन्त पृथ्वी का एक छत्र शासन किया ।

नल

निषध का पुत्र नल अत्यन्त तेजस्वी था । उसने राज्य ग्रहण कर शत्रुओं की सेना को छिन्न भिन्न किया था । देव-गन्धर्व उसकी कीर्ति गाते थे । नल के श्यामवर्ण वाला जो पुत्र हुआ उसका नाम नभस् रखा गया । नभस् लोक प्रिय था । उसे राज्य देकर धर्मपरायण नल वृद्धावस्था में तप के लिए वन को चले गये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नभस्

नभस् ने प्रजाओं का रंजन करते हुए शासन किया और फिर अपने अजेयपुत्र पुण्डरीक को राज्य लक्ष्मी का अधीश्वर बना दिया।

पुण्डरीक

नभस् के पश्चात् पुण्डरीक अयोध्या का शासक बना। पुण्डरीक भी, अमोध- धन्वा था। वह भी पुत्र को राज्य देकर शान्तभाव से तपोऽर्थ वन को चला गया।

क्षेमधन्वा

क्षेमधन्वा प्रजा के कल्याण में दक्ष था और क्षमावान् भी था वह याज्ञिक रूप मे ख्यात था।

देवानीक

क्षेमधन्वा के महावीर और देवतुल्य पुत्र हुआ-देवानीक। उसका नाम स्वर्ग तक प्रसिद्ध हुआ। उसने अपने पिता की कीर्ति का विस्तार किया।

अहीनगु

देवानीक का पुत्र अहीनगु अत्यन्त मृदुभाषी था। इसलिए उसके विरोधी भी उसे चाहते थे। वह व्यसनों से मुक्त था और हीन लोगों के संसर्ग से बच कर चलता था। युवा काल में भी वह निर्दोष आचरण का व्यक्ति था। उस ने भी इस सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन किया। वह मानव-स्वभाव को सम्यक् जानता-समझता था। उसने सामादि चार उपायों से चारों दिक्पालों पर विजय प्रप्त की।

पारियात्र

अहीनगु की मृत्यु के उपरान्त उसका पारियात्र (पर्वत) विजेता पुत्र पारियात्र राज्य का स्वामी बना। वह भोगों में रूचि लेता था अतः असमय ही जराने उनका वरण कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल

पारियात्र के शिलापट्ट जैसे वक्षस् वाला, शत्रुजयी किन्तु शीलवान् शिल नाम का पुत्र हुआ। परियात्र उसे बुद्धिमान् और धीर देखकर युवकाल में ही राज्य की बागडोर शिल को सौंपकर निश्चित भाव से सुखोपभोग करने लगे।

उन्नाभ

शिल का पुत्र उन्नाभ सचमुख उन्नत नाभि वाला था। वह समस्त नृप मण्डल का प्रधान था।

वज्रणाभ

उन्नाभ का पुत्र वज्रणाभ इन्द्र के समान तेजस्वी था और वीर भी। अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा उसने पुण्य लोक अर्जित किया।

शंखण

शङ्खण के राज्य का विस्तार समुद्र पर्यन्त था। उसने खनिजों का प्रचुर मात्रा में लाभ उठाया।

व्युषिताश्व

शङखण का पुत्र व्युषिताश्व सूर्य जैसा तेजस्वी और अश्विनी कुमारों जैसा सुन्दर था। उसकी सेना और अश्व वेला तटों पर रक्षार्थ नियुक्त थे।

विश्वसह

शंकर की आराधना कर व्युषिताश्व ने विश्वसह नामक पुत्र प्राप्त किया। वह सम्पूर्ण पृथ्वी के पालन में समर्थ हुआ। और फिर पुत्र के समर्थ हो जाने पर स्वयं वल्कल धारी वन कर तपोनिष्ठ हो गये।

हिरण्य नाभ

विश्वसह का पुत्र हिरण्यनाभ प्रताप के कारण शत्रुओं को असह्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौसल्य

हिरण्य नाम के कौसल्य नामक दर्शनीय, शान्त, मधुर पुत्र हुआ जिसकी कीर्ति ब्रह्म- सभा तक फैली यी। उसने अपने पुत्र ब्रह्मिष्ठ को राज्य सौंप कर ब्रह्म लोक प्राप्त किया।

ब्रह्मिष्ठ

ब्रह्मिष्ठ सचमुच ब्रह्मचिन्तक और कुलावतंस था। उसके राज्य में प्रजा अत्यन्त आनन्दित रही। पुत्र के हाथों वंश- प्रतिष्ठा को सुरक्षित देख कर वह सांसरिक विषयों से विरक्त होकर तीर्थ स्नान करते करते दिवंगत हुआ।

पुत्र

ब्रह्मिष्ठ का बेटा, जिसका नाम पुत्र था, गुरूजनों की शुश्रुषा में सदारत, विष्णु जैसा सुरूप और कमलाक्ष था। उसने पिता के यश में वृद्धि की। अन्त में जैमिनि का शिष्य वनकर और उनसे योग सीखकर पुनर्जन्म से मुक्त हुआ।

पुष्य

पुत्र की पत्नी ने पुष्य नक्षत्र से युक्त तिथि में पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पुष्य रखा गया। वह प्रजा के लिए भाग्यशाली सिद्ध हुआ।

ध्रुवसन्धि

पुष्य का पुत्र ध्रुवसन्धि ध्रुव के समान सत्यप्रतिज्ञ था। उसके शासनकाल में शत्रुओं ने सिर नीचा कर उसके साथ सन्धि कर ली थी। उसका पुत्र सुदर्शन जब बालक ही था तो वह मृगया करता हुआ सिंह के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

सुदर्शन

ध्रुव सन्धि की अकाल मृत्यु हो जाने पर उसका चन्द्र जैसा सुरूप पुत्र सुदर्शन राजा हुआ। मन्त्रियों ने राज्य को अनाथ देखकर बाल्यावस्था में ही उसका अभिषेक कर दिया। प्रजा ने उसे उसके पिता के समान आदर दिया। छै वर्ष अवस्था का सुदर्शन जब हाथी पर सवार होकर राजमार्ग पर निकला तो प्रजा ने उसका पिता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान ही सम्मान किया। राजा लोग भी उसके चरणों में प्रणाम करने लगे और वह 'महाराज' शब्द का अधिकारी बन गया। उसकी किसी बात का कभी समुद्र तक किसी ने उल्लंघन नहीं किया। बड़े होकर उसने पृथिवी को शत्रुविरहित बना दिया। दण्ड नीति के फलों का उपयोग वह कम आयु में ही करने लगा था। धीरे-धीरे उसमें वंशज और लोक रंजक सूक्ष्म गुणों का विकास हुआ। वह तीन विद्याओं में पारंगत और मंत्री, सेना आदि प्रकृतियों को भी बश में करने वाला सिद्ध हुआ। धनुर्विद्या में भी कुशल हुआ। उनके अग्नि वर्ण नामक पुत्र हुआ।उसे राज्य भार सौंप कर वह नैमिषारण्य को चला गया और तपोनिरत हो गया।

अग्निवर्ण

सुदर्शन सूर्य वंश के यशस्वी शासकों में था। उसने अपने पुत्र अग्नि वर्ण को निष्कण्टक और समृद्ध, सुखी साम्राज्य सौंपा था। इसलिए अग्नि वर्ण के पास करने के लिए विशेष कुछ था नहीं। सो वह भोग में लिप्त हो गया। कुछ वर्षों तक तो उसने राज-काज में रूचि ली किन्तु फिर सारा कार्यभार और अधिकार मंत्रियों को सौंप कर स्त्रियों में अनुरक्त हो गया। प्रजा की चिन्ता न कर नृत्य-गान और पान गोष्ठियों में मग्न रहने लगा। मंत्रियों के आग्रह से कभी कभी गवाक्ष से पाँव लटका कर प्रजा को दर्शन देता था। अत्यधिक विषय- भोग के कारण उसकी शक्तिक्षीण होने लगी तो भी उसने वैद्यों के परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। अन्त में वह क्षय रोग से आक्रान्त हो गया किन्तु मन्त्रिओं ने विविध बहाने बनाकर प्रजा से इस बात को छिपाये रखा। लोगों से कह दिया गया कि इन दिनों महाराज पुत्र प्राप्ति के लिए अनुष्ठान में व्यस्त हैं। क्षय ने उसके प्राणों का हरण कर लिया। तब मन्त्रियों और पुरोहितों ने मिलकर शान्ति कर्म के बहाने से उसे गृहोद्यान में ही गुप्त रूप से जला दिया। फिर धीरे से मंत्रियों ने प्रधान नागरिकों को आमन्त्रित कर सारी बात बतला दी और वैद्यों से सम्यक् पुष्टि करा कर गर्भ-लक्षणवाली उसकी सहधर्मचारिणी को राज्यलक्ष्मी सौंप दी। उस अन्तर्वत्नीराज्ञी ने सिंहासनारूढ़ होकर मंत्रियों की सहायता से निर्विघ्न और निर्दोष शासन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्र

यह कालिदास की तीन नाट्यकृतियों में सर्वप्रथम है। पाँच अंकों में विभाजित इस नाटक का प्रारम्भ भगवान शिव की स्तुति में पठित नान्दी से होता है। सूत्रधार वसन्तोत्सव के समय कालिदास- रचित मालविकाग्निमित्र नाटक के प्रयोग की घोषणा करता है तो पारिपार्श्विक प्रश्न करता है कि जब बड़े-भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि प्रसिद्ध कवियों के नाटक उपलब्ध हैं तो उन्हें छोड़कर आज के कवि कालिदास की कृति को इतना आदर क्यों दे रहे हैं ?

"प्रथित- यशसां भास- सौमिल्ल- कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्त्तमानकवे: कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमान:" ?

तो इसके उत्तर में सूत्रधार कहता है—

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः पर-प्रत्ययनेय- बुद्धिः ॥ १-२

इस प्रस्तावना के पश्चात् नाटक का प्रारम्भ होते ही महारानी धारिणी की परिचारिकाओं वकुलावलिका और कौमुदिका के वार्तलाप से ज्ञात होता है कि अभी विदिशा के राजा अग्निमित्र ने देवी धारिणी को चित्रशाला में आचार्य द्वारा नवनिर्मित चित्रकृति को देख कर पूछा कि चित्र में परिजनों के बीच बैठी यह, अपूर्व सुन्दरी बालिका कौन है। तब रानी ने बालिका के प्रति पति को आकर्षित होने से बचाने के लिए उसका नामादि बताना टाल दिया किन्तु पास हीं बैठी उनकी अल्पवयस्का बेटी ने बता दिया कि यह मालविका है। तब से रानी मालविका को पति की दृष्टि से बचाने लगी है। यह देख कर अग्निमित्र के मित्र विदूषक ने कोई प्रतिस्पर्धा-कलह उत्पन्न कर दिया और वे दोनों अपनी अपनी श्रेष्ठता का निर्णय कराने राजा के पास पहुँचे। राजा ने पण्डिता कौशिकी को निर्णायक, बनाकर रानी की उपस्थिति में उन्हें परीक्षा देने को कहा। परिव्राजिका कौशिकी ने कहा कि नाट्य तो प्रायोगिकी विद्या है। उसके विषय में कुछ निर्णय आचार्य के शिष्यों का नैपुण्य देखकर ही किया जा सकता है। क्योंकि—

शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेष युक्ता।
यत्रोभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥ १-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी किसी की प्राप्त शिक्षा उसी तक सीमित रहती है। और कोई अन्यों को प्रदान करते में कुशल होता है। जिसमें दोनों बातें—आत्म बोध और शिक्षण कौशल्य हों उसे शिक्षकों में मूर्धन्य स्थान देना चाहिए। इस लिए दोनों आचार्य अपनी अपनी शिष्याओं को शर्मिष्ठा द्वारा निर्मित चतुष्पादोत्थ छलिक का अभिनय प्रस्तुत करने को कहें। बात दोनों पक्षों ने मान ली। वयोवृद्ध होने के नाते आचार्य गण दास की शिष्या को पहले नाट्य प्रयोग का अवसर मिला। शिष्या मालविका के विशुद्ध नाट्य प्रयोग और अङ्ग-सौष्ठव को देखकर सारी सभा चकित रह गयी और राजा अग्निमित्र तो सर्वमनसा उस पर मुग्ध हो गया।

इस सन्दर्भ में नाटककार ने कई काम की बातें कही हैं। जैसे नाटय के विषय में यह कथन—

(१) नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्। १-४

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ॥ १-६

(३) यस्यागमः केवल- जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति। १-१७

(४) प्रभवन्त्योऽपिहिभर्तृषु कारणकोपा मनस्विन्यः ॥ १-१८

इस नाटक में राजनीति और प्रणय परस्पर जुड़े हुए चलते हैं। प्रथम अंक से ही यह भी पता चलता है कि विदर्भ नरेश को राजा अग्निमित्र ने एक पत्र लिखा था कि उसके चचेरे भाई माधव सेन को विदर्भ के अन्तपाल ने विदिशा आते समय पत्नी और बहिन के साथ बन्दी बना लिया था, उसे छोड़ दे। उत्तर में विदर्भराज ने लिखा कि माधवसेन की बहिन तो सेना के साथ प्रतिरोध में खो गयीं किन्तु माधवसेन को आप छुड़ा सकते हैं, यदि आप बदले में अपने द्वारा बन्दी बनाये हुए मौर्य सचिव को छोड़ दें। इस उत्तर पर अग्निमित्र क्रुद्ध होकर सेनापति को विदर्भ राज पर आक्रमण करने का आदेश देता है। अमात्य तन्त्रकार कौटिल्य का मत उद्धृत करता हुआ राजाज्ञा का समर्थन करता है। वह कहता है—

अचिराधिष्ठित- राज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।

नव- संरोपण- शिथिलस्तरूरिव शक्यः समुद्धर्तुम्॥ १-८

दूसरी ओर अग्निमित्र मालविका के अनुराग में और मालविका भी राजा के प्रणय में दीक्षित हो कर परस्पर मिलन के लिए व्याकुल रहने लगे। प्रेम की यह बात समस्त राजपरिवार में फैल गयी। तब विदूषक ने राजा के अभिलषित की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धि के लिए रानी धारिणी की परिचारिका और मालविका की सहेली वकुलावलिका से सहायता माँगी। रानी मालविका को कठोरता के साथ राजा से दूर रख रही थी। इसी बीच प्रमदवन की पालिका ने अशोक न फूलने की सूचना रानी को दी और इसके लिए दोहद की प्रार्थना की। रानी झूले से गिर गयी थी। उसके पाँव में चोट थी। अतः उसने मालविका को दोहद के लिए नियुक्त किया और उसे वचन दिया कि यदि दोहद के बाद पाँच दिन के भीतर अशोक फूल उठेगा तो तुम्हें मुँह माँगा पारितोषिक दूँगी। इसी बीच अग्निमित्र अपनी दूसरी रानी इरावती के आमन्त्रण पर विदूषक को साथ लेकर उसके साथ प्रमदवन में झूला झूलने गया और उधर से वकुलावालिका के साथ मालविका तपनीयाशोक की दोहद क्रिया (इसमें युवती भूषालंकृति के साथ सालक्तक चरण से अशोक वृक्ष पर पाद-प्रहार करती है) सम्पन्न करने के लिए प्रमदवन में आयी। विदूषक के परामर्श से राजा लता के झुरमुट में छिप गया और मालविका के आने पर उसके समक्ष उपस्थित हो गया। इरावती ने जब राजा को मालविका के साथ छिप कर मिलते देखा तो क्रुद्ध होकर उसने राजा की भर्त्सना की। अनुनय- विनय करते हुए राजा की अवधीरणाकर वह क्रुद्ध होकर दोलारोहण के बिना ही चली गयी।

कवि ने तृतीय अंक में प्रमद वन और उसमें दो प्रेमियों के मिलन तथा उसकी गुप्त योजना का सुन्दर वर्णन किया है। साथ ही विप्रलम्भ श्रृंगार के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रमद वन का एक दृश्य लीजिये—

रक्ताशोकरूचा विशेषित- गुणो विम्बाधरालक्तकः,

प्रत्याख्यात- विशेषकं कुरवकं श्यामावदातारूणम्।

आक्रान्ता तिलक- क्रिया च तिलकै र्लग्नद्विरेफाञ्जनैः,

सावज्ञेव मुखप्रसाधन- विधौ श्री र्माधवी योषिताम्॥ ३-५

रक्त अशोक की कान्ति स्त्रियों के ओठों पर लगायी गयी लाली से बढ़कर है। श्याम-श्वेत और अरूण कुरवक ने स्त्रियों के विशेषक (मस्तक और कपोलो पर बनायी गयी पत्र- रचना) को लजा दिया है। तिलक कुसुमों के सामने माथे का तिलकाभरण हल्का पड़ता है। द्विरेफ इसमें अञ्जन का काम कर रहे हैं। इसी प्रकार बासन्ती और मालविका का सौन्दर्य देखिये—

विपुलं नितम्ब- देशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः।

अत्यायतं नयनयो र्मम जीवितमेतदायाति। ३-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरकाण्डपाण्डु- गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा।
माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता॥ ३-८

भारी भारी नितम्ब, क्षीण सी कटि, उन्नत स्तन, विस्तृत नेत्र ! यह मालविका क्या, मेरे प्राण ही चले आ रहे हैं। बहुत कम आभूषण पहने और शरकाण्ड के समान विरह से पाण्डुर कपोल लिये यह मालविका ऐसी लग रही है जैसे वसन्त में पीले पत्तों और परिमित कुसुमों वाली कुन्दलता लगती है।

चतुर्थ अंक में इरावती राजमहिषी के पैर की चोट का हाल पूछने उसके पास जाती है और उसे अग्निमित्र तथा मालविका के निभृत मिलन का समाचार देती है। तब रानी उसे तथा वकुलावलिका को बेड़ी लगा कर भूगर्भ में काराबद्ध कर देती है। साथ ही भू- गृह की रक्षिका माधविका को आदेश देती है कि बिना नागमुद्रा से अंकित अंगूठी को देखे उन दोनों को न छोड़े। इससे दुःखित राजा विदूषक के साथ कुछ मंत्रणा कर पाद-पीडा से व्यथित बड़ी रानी का हाल चाल पूछने उसके पास चला जाता है। इसी बीच विदूषक केतकी के कण्टक से पाँव में व्रण-चिह्न बना कर सर्पदंश का नाटक करता हुआ आता है। रानी उसकी चिकित्सा के लिए विष- वैद्य ध्रुवसिद्धि को बुलाती है। ध्रुव सिद्धि उदकुम्भचिकित्सार्थ एक नागमुद्रा युक्त आभरण मँगवाता है। तब विदूषक के प्राण- संकट को देख कर रानी धारिणी अपनी ही नागमुद्रांकित अँगूठी उसे दे देती है। विदूषक अँगूठी लेकर मालविका और वकुलावलिका को बन्दी गृह से छुड़ा लेता है और उन्हें समुद्रगृह में टिका कर राजा से मिला देता है। इधर समुद्रगृह के अलिन्द में अकेला विदूषक सोया हुआ है यह सुनकर उसे देखने और अपने पति को प्रसन्न करने की इच्छा से इरावती वहाँ जाती है किन्तु अग्निमित्र को मालविका के साथ प्रेममग्न देखकर उसे उपालम्भ देने लगती है। तभी गेंद खेलती हुई राजकुमारी वसुलक्ष्मी को पिंगल वानर ने डरा दिया और वह घबराती हुई काँप रही है- यह सुनकर सब लोग बाहर-निकल आते हैं। मालविका भी बहुत घबरायी हुई है कि न जाने देवि धारिणी मेरे प्रणय वृत्तान्त को सुनकर क्या करेंगी। किन्तु पञ्चरात्र पूर्ण होने के पहले ही दोहद के कारण अशोक में कलियाँ आ गई हैं, इसलिए उसे यह भी विश्वास है कि देवी अपने वचन की रक्षा करती हुई उसे मुँह माँगा पारितोषिक देगी। पञ्चम अंक के प्रारम्भ में ही उद्यान पालिका अशोक के मुकुलित होने का समाचार देने के लिए देवी को ढूँढती आती है। मार्ग में उसकी साहसिक से बात होती है जिससे पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है कि अग्निमित्र के सेनानायकों ने विदर्भ नरेश को विजित कर लिया है और उनके सम्बन्धी माधवसेन को छुड़ा लिया है। विदर्भनरेश ने रत्न, वाहन आदि बहूमूल्य वस्तुओं और शिल्पकारिकाओं सहित बहुत सी भेंट लेकर अपना दूत महाराज के पास भेजा है। देवी धारिणी भी दोहद के सफल होने से अत्यन्त प्रसन्न होकर मालविका को विवाह नेपथ्य और अलंकरणों से सजाती है और परिव्राजिका के साथ उसे लेकर प्रमदवन को जाती है। वह अशोक के कुसुमस्तवक दिखाने के बहाने राजा को प्रमदवन में बुलाती है तभी विदर्भ से भेंट में आयी हुई मदनिका और ज्योत्स्निका नामक दो शिल्पकारिकाओं को लेकर कञ्चुकी आता है। वे दोनों मालविका तथा आर्या कौशिकी को पहचान लेती हैं। ज्योत्स्निका और कौशिकी बतलाती हैं कि मालविका राजकुमारी है और माधवसेन की बहिन है। वे विदर्भ से सम्बन्धित सारा वृत्तान्त भी सुनाती हैं। तभी अग्निमित्र को अपने पिता सेनापति सम्राट पुष्यमित्र का पत्र मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने सिन्धु नदी के किनारे यवन सेना को पराजित कर दिया है। यह सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न होते हैं। देवी धारिणी दोहद की सफलता के पारितोषिक के रूप में मालविका को उसके अभीष्ट प्रिय और अपने पति अग्निमित्र को भेंट कर देती है, जिसे वह लज्जा प्रदर्शित करते हुए स्वीकार कर लेता है। यहीं "आशास्यमीतिविगम- प्रभृति प्रजानां, सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे" इस भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

यह नाटक अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह ई. पू. दूसरी शताब्दी में मौर्य राजा बृहद्रथ की हत्या कर साम्राज्य को अपने अधिकार में कर लेने वाले शुंग सम्राट पुष्यमित्र के जीवनकाल की घटनाओं पर प्रकाश डालता है। पुष्यमित्र के इस साहसिक कार्य की पुष्टि बाण के हर्षचरित से भी होती है। इससे यह भी पता चलता है कि भारतीय इतिहास में राज्यपरिवर्तन की इस घटना की गूँज सातवीं शती ई. तक स्पष्ट सुनाई देती रही। शुंगों की दूसरी राजधानी विदिशा में थी जहाँ पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र युवराज के रूप में शासन करता था। पुष्यमित्र ने दो अश्वमेघ यज्ञ किए थे। महाभाष्यकार पतञ्जलि अश्वमेघ के प्रधान ऋत्विक् थे। यह यज्ञ पाटलिपुत्र में हुआ था और छोड़े गये यज्ञ- तुरंग की रक्षा के लिए अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र सेनानायक बनाकर भेजा गया था। उसने सिंधु नदी के तट पर ग्रीक यवन सेना को पराजित किया था। इस बात की सूचना पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को पत्र द्वारा दी थी। कालिदास के शब्दों में वह ऐतिहासिक पत्र इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार है—"स्वस्तियज्ञ- शरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो-वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्त मग्निमित्रं स्नेहात् परिष्वज्येदमनुदर्शयति । विदितमस्तु योऽसौ राजयज्ञ- दीक्षितेन मया राजपुत्रशत- परिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य संवत्सरोपावर्तनीयो निरर्गलस्तुरङ्गो विसृष्टः, स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः । तत् उभयोः सेनायोर्महानासीत् सम्मर्दः ।"

ततः परान् पराजित्य वसुमित्रेण धन्विनाः ।

प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः ।।५-१५

इस नाटक से यह भी पता चलता है कि पुष्यमित्र द्वारा साम्राज्य पर अधिकार कर लेने के पश्चात् भी मौर्यराज के पक्षपाती लोग यत्र-तत्र विद्रोह की मुद्रा में बने हुए थे । यह बात विदर्भनरेश द्वारा अग्निमित्र को लिखे गये पत्र से स्पष्ट होती है । पत्र इस प्रकार है—

मौर्य- सचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं ममश्यालम् ।

मोक्ता माधवसेनस्ततो मया बन्धनात् सद्यः ।।१-७

अग्निमित्र का शासन उपद्रवहीन शान्त और समृद्ध था। यह बात भरतवाक्य से स्पष्ट है । शुंग काल साहित्य, कला और भौतिक समृद्धि की दृष्टि से इतना सम्पन्न रहा था कि शताब्दियों बाद तक लोगों के मनों में उसकी स्मृति ताज़ी बनी रही । कदाचित् कालिदास द्वारा शताब्दियों पूर्व सम्पन्न हो चुकी घटना को लेकर नाटक लिखने का कारण यही था । कालिदास वैदिक धर्माभिमानी थे । बौद्धों के अनास्था पूर्ण, वेद और वर्णाश्रम विरोधी शासन को उच्छिन्न कर पुष्यमित्र ने वेद और वर्णाश्रम प्रतिष्ठा का उद्घोष किया था, । कालिदास उसके महान् पक्षधर थे । अपने प्रथम नाटक में उन्होंने शुंग नरेशों की इसी धर्मनिष्ठा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है । यह नाटक प्रणय और राजनीति का सुखद मिश्रण है और राजपरिवारों में चलने वाले गुप्त प्रणय- व्यापारों पर अच्छा प्रकाश डालता है । समकालीन शिक्षा व्यवस्था, आचार्यों की पारस्परिक स्पर्धा, राजप्रासादों की कूटनीति और विदूषक के छल- प्रपञ्चों तथा तज्जन्य हास्य का इसमें सुन्दर चित्रण हैं । विद्धशालभञ्जिका, कर्पूर मञ्जरी और प्रियदर्शिका पर इस नाटक का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

मालविकाग्नि नृत्य और अभिनय कला की सूक्ष्म और गम्भीर शास्त्रीय जानकारी प्रस्तुत करने के साथ राजतन्त्र और अगदतन्त्र, विशेषतया विषचिकित्सा की भी श्रेष्ठ जानकारी देता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्तक के शरीर का गठन कैसा होना चाहिए, यह कालिदास ने मालविका के रूप- वर्णन में स्पष्ट किया है:—

दीर्घाक्षं शरदिन्दु- कान्ति वदनं, बाहूनतावंसयो:.

संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुर:, पाश्वे प्रमृष्टे इव।

मध्य: पाणिमितो, नितम्बि जधनं पादावरालाङ्गुली,

छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्रिष्टं तथाऽस्या वपु: । अंक २-३१

बड़ी बड़ी आंखे, शरत्काल के चन्द्रमा जैसा कान्त मुख, कन्धों पर से झुकी हुई बाहु, कसा हुआ, ऊंचा किन्तु अधिक न फैला हुआ वक्ष, तराशे हुए से पार्श्वभाग, पतली, मुट्ठी में समा जाने वाली कमर, सुन्दर नितम्बों वाली जंघाये और अराल (तिरछी या उठी) उगंलियों वाले पैर बस जैसा शरीर नृत्य कराने वाले को चाहिये वैसा ही इसका बना है।

प्रस्तुत श्लोक किसी सुन्दर तराशी हुई प्रस्तर मूर्ति को देख कर लिखा गया जान पड़ता है। इस प्रकार (अंक २-६) में नृत्य की एक बड़ी सुन्दर मुद्रा का आलेखन कवि ने शब्दों में दिया है। मालविकाग्नि मित्र में कवि का झुकाव नृत्य, संगीत और कला की ओर बहुत है। उसमें काव्य की दृष्टि से सुन्दर स्थलों की कमी नहीं है किन्तु कवि की प्रारम्भिक नाट्य रचना होने से उसमें रूपाग्रह बहुत है। उसकी दृष्टि वर्ण्य के बाह्य पर टिक जाती है। अन्तर में प्रवेश नहीं कर पाती। शाकुन्तल में उसकी पहुँच अन्तर तक लक्षित है। ऊपर बतलाये हुए उदाहरणों की तुलना में शाकुन्तल का ऐसे ही प्रसंग का एक श्लोक रखने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी।

स्त्रस्तांसावतिमात्र- लोहित- तलौबाहू घटोत्क्षेपणा

दद्यापि स्तन- वेपथुं जनयति श्वास: प्रमाणाधिक:।

स्रस्तं कर्णशिरीष-रोधि-वदने धर्माम्भसां जालकं

बन्धे स्त्रंसिनि चैकहस्त-यमिता: पर्याकुलामूर्धजा: । १-२६

कंधे पर से झुकी बाहों की हथेलियाँ घड़ा उठाने के कारण अभी तक बहुत अधिक लाल है। सामान्य से अधिक चलती हुई साँस के कारण अभी भी स्तन काँप रहे है। कानों में शिरीष का फूल खोंसे हुए है। मुख से पसीने की बूंदे ढुलक रही है। जुड़ा खुल गया है इसलिये बिखरे हुए बालों को एक साथ से पकड़ रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्णन के आधार पर कितना सुन्दर चित्र बनाया जा सकता है। ये श्लोक मालविकाग्निमित्र से शाकुन्तल तक के कवि के कलात्मक विकास के अच्छे उदाहरण हैं।

इतना सब होकर भी मालविकाग्निमित्र नाटकीय दृष्टि से उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि अभिनय-शैथिल्य या नीरसता इसमें नहीं है। दर्शक का मन प्रारम्भ से अन्त तक उसमें लगा रहेगा क्योंकि कथानक का शैथिल्य इसमें नहीं आने पाया है किन्तु कला की उत्कृष्टता के दर्शन इसमें नहीं होते है। कवि यत्र तत्र अपने ज्ञान और शास्त्रीय जानकारी की अभिव्यक्ति के प्रति जागरूक दिखायी देता है। वह नाट्य- शास्त्रीय नियमों की जकड़ से ऊपर नहीं उठ पाता। इस नाटक का विदूषक सर्वाधिक समर्थ पात्र है किन्तु वह भी शास्त्रीय परिभाषाओं और नियमों से बँधा हुआ। कवि ने उसके सम्बन्ध में 'कलह प्रिय' और 'कामतन्त्र सचिव' विशेषणों का प्रयोग किया है, वे नाटक के लक्षण ग्रन्थों के ही है। राजा और नायिकादि के प्रति उसका सम्बन्ध, व्यवहार, बातचीत आदि सब कुछ नियमों के अनुसार है फिर भी वह कथावस्तु को आगे बढ़ाता और कर्तव्य दिशा का निर्देश करता चला है।

इस नाटक की एक बड़ी दुर्बलता है उसका नायक, जिसकी दो रानियाँ है धारिणी और इरावती। एक युवापुत्र भी है जो अश्वमेध के अश्व की रक्षा करता हुआ सिन्धुतट पर यवनों के साथ युद्ध में रत है। ऐसे अधेड़ आयु के अग्निमित्र का १७ वर्ष की विदर्भ कन्या मालविका के साथ प्रेमानुरक्त होना अस्वाभाविक लगता है। यह सत्य है कि पुरूरवा और दुष्यन्त के भी पत्नी थी। किन्तु वे अपुत्र थे। इसलिए उनके विषय में यह बात नहीं खलती। इसीलिए इस नाटक में वह वातावरण नहीं बन पाया जिसमें दर्शक को नायक या नायिका के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो। अग्निमित्र प्रेमी नहीं, कोरा कामी बन कर रह गया है। वह मालविका को देखकर यही कह पाता है—

वयस्य, पश्याम्यनाम्—

विपुलं नितम्बदेशे, मध्येक्षामं, समुन्नतं कुचयोः,

अत्यायतं नयनयोः मम जीवितमेतदायाति ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे देखकर लगता है जैसे उसका जीवन मालविका के नितम्ब देश, कटि, कुच और नयनों से ही बंधा हुआ था। मालविका में इनके अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं।

दूसरी ओर शकुन्तला को देख कर दुष्यन्त केवल इतना कहता है—"अये! लब्धं नेत्र निर्वाणम्" और इतने में ही सब कुछ कह देता है। यह अन्तर अग्निमित्र और दुष्यन्त के सम्पूर्ण चरित्र में देखा जा सकता है। दोनों अपने अपने कुल- व्रत की चर्चा करते हैं। अग्निमित्र कहता है—

दाक्षिण्यं नाम विम्नोष्ठि बैम्बिकानां कुलव्रतम्।

सभी पत्नियों या प्रेमिकाओं के प्रति सौजन्य- पूर्ण व्यवहार बिम्बकगोत्रीय शुंगों का कुल व्रत है। दुष्यन्त कहता है—

न परिहार्येऽर्थे वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

तथा—

अस्त्येतत् पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतं तरूमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्।

पुरूवंशीयों का मन अग्राह्य वस्तु की और जाता ही नहीं। उनके कुल का अन्तिम व्रत है वानप्रस्थ लेकर वन में वृक्षों के नीचे रहना। रघुवंशियों का भी यह कुलव्रत था। दिलीप को देखिये:—

अथ स विषय- व्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे,

नृपति- ककुदं दत्वा यूने सितातप- वारणम्,

मुनि- वन- तरूच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये,

गलित- वयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुल- व्रतम्। रघु. ३-७०

नायक के अनुपात में ही इस नाटक की नायिका भी दुर्बल है। उसका प्रेम परिस्थितिजन्य है, उर्वशी और शकुन्तला की तरह स्वतः स्फुटित नहीं। धारिणी और इरावती दोनों रानियाँ हंसपदिका और वसुमती की अविकसित और अपरिष्कृत प्रतिकृतियाँ हैं जिनका स्वरूप दोनों परवर्ती नाटकों की इन रानियों के समान मृदु एवं उदात्त नहीं बन पाया है। इनमें वसुमती के समान वह चारित्रक उच्चता नहीं है जो राज्य कार्यों में व्यस्त राजा के कार्यों में बाधा देना पसन्द नहीं करती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार यह नाटक काव्य और संवादों की दृष्टि से श्रेष्ठ होकर भी नाटकीय कला और जीवन के उच्चतर मूल्यों की दृष्टि से शेष दो नाटकों की तुलना में नीची कोटि का लगता है ।

मालविकाग्निमित्र की काटयवेमटीका

मालविकाग्निमित्र की काटयवेमटीका, जिसे काटयवेम ने व्याख्यान कहा है, कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । प्रथम तो यह बहुत पुरानी है । दूसरे इसमें संगीत, नृत्य और नाट्य आदि से सम्बन्धित कई बातों का प्रामाणिक व्याख्यान उपलब्ध होता है । और तीसरे इसमें जिन महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संकेतों का उल्लेख मिलता है वे कालिदास की तिथि पर प्रकाश डालने में क्षम हैं ।

काटयवेम ने कालिदास के तीनों नाटकों पर टीका लिखी है । वह काटय के प्रपौत्र, मार के पौत्र और काट के पुत्र थे । उनका विवाह कोण्डविदु के रेड्डि वंशीय राजा अनपोल की पुत्री से हुआ था । अनपोल सन् १३६६ के लगभग विद्यमान थे । उन्होंने अपनी राजधानी अड्डुड्कि से हटाकर कोण्डविदु में स्थापित की थी । अनपोल के पश्चात् जब उनके पुत्र कुमारगिरि गद्दी पर बैठे तो राज्य की बागडोर व्यावहारिक रूप से काटयवेम के हाथों में आ गयी । कुमारगिरि की बहन मल्लाम्विका के पति तो वह थे ही, साथ ही बड़े वीर योद्धा और विद्वान् भी थे । ऐसा लगता है कि अनपोल के बाद उनके छोटे भाई अनवेमरेड्डी सन् १३८१ तक शासन सम्हाले रहे और उनके पश्चात् सन् १३८३ से १४०३ तक कुमारगिरि गद्दी पर रहे । कुमारगिरि काव्य, नृत्य, संगीत और आनन्दोत्सवों के बहुत प्रेमी थे । इसलिये उन्होंने राज्य का भार काटयमेव के कन्धों पर डाल दिया था । स्वयं काटयवेम ने कुमारगिरि के विषय में कहा है—

भाग्यं नाम समग्रमीदृशमहो स्नेहैकपात्रंयतो,

वीरं काटयवेममुद्धतरिपु- ध्वंसे नियुज्य स्वयम्,

नित्यं नन्दतिनूतनैरभिनवैः कान्तैः बसन्तोत्सवैः,

सन्तानाभ्युदयैः कुमारगिरिभूपालोनृपालोत्तमः ॥

(मालविका० टीका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारगिरि स्वयं साहित्यशास्त्र में निष्णात थे । वसन्तराज उनका लेखकीय उपनाम था । कुमारगिरि ने नाट्यशास्त्र पर वसन्तराजीय नामक ग्रन्थ लिखा जो नाट्य क्षेत्र में पर्याप्त सम्मानित हुआ था । मल्लिनाथ ने माघ, कुमारस्वामी ने प्रताप रूद्रीय और नाडिन्दूल गोपमन्त्री ने प्रबोधचन्द्रोदय की टीका में तो इसे उद्धृत किया ही है, स्वयं काटयवेम ने मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीयम के स्वीय व्याख्यान में इसके उद्धरण लिये हैं । विक्रमोर्वशीय में उद्धृत एक श्लोक देखिए—यह वसन्त राजीय की प्रासादिकता का भी अच्छा निदर्शन है—

धृतातपत्रःशुभशुक्लवासाः पुष्पार्चितश्चन्दनचर्चिताङ्गः ।

विप्रश्शिखावान् कृत भोजनश्च ददातिदृष्टः पथिसर्वसिद्धिम् ।

इन्हीं गुमारगिरि के अनुरोध पर काटयवेम ने कालिदास के तीनों नाटकों की टीका लिखी और कुमारगिरि के साथ उनके उपनाम वसन्तराज का द्वितीय पद राज जोड़कर उसका नाम कुमारगिरि राजीय रखा । टीका में उन्होंने अपना नाम काटयवेम भूप दिया और कुमारगिरि को नृपालोत्तम भूपाल कहा । यथा—

इति श्री काटयवेमभूप- विरचिते कुमारगिरिराजीये

मालकिग्निमित्रव्याख्याने प्रथमोऽङ्कः ।

राज्य के प्रति की गयी उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप कुमारगिरि ने उन्हें राजमहेन्द्रपुरम् का स्वतन्त्र छोटा-सा राज्य दे दिया था जिसके वह भूप थे ।

काटयवेम के तीन पत्नियाँ थीं जिनमें दो के सन्तान हुई । एक से एक पुत्र जिसका नाम उन्होने कुमारगिरि रखा। दूसरी से एक पुत्री थी अनितल्ली। काटयमेव सन् १४१६ तक जीवित रहे । उनके पुत्र ने केवल ४ वर्ष राज्य किया । और उसके बाद कुलपरम्परा के अनुसार अनितल्ली की सन्तान शासक बनी । बाद में जब कुमारगिरि के उपरान्त वेमभूपाल केन्द्रबिदु की गद्दी पर बैठे तो उन्होनें राजमहेन्द्रपुर पर आक्रमण कर काटयवेम के पौत्र को पराजित किया और अपने चाचा द्वारा दिया हुआ राज्य छीन कर अपनी राज्य सीमा में मिला लिया । वेमभूपाल और उनकी पत्नी सूरमाम्बा दोनों उदार थे । सूरमाम्बा ने कई बड़े तड़ागों और नहरों का निर्माण कराया था । वेमभूपाल बड़े विद्वान् तथा कवियों के आश्रयदाता थे । श्रीनाथ और वामनभट्बाण जैसे कवि उनके दरबार में थे । वेमभूपाल ने अपना उपनाम वीर नारायण रखा था । श्री नाथ ने उन्हें सर्वज्ञ-चक्रवर्ती कह कर सम्बोधित किया है और वामन भट्टबाण ने उन्हें नायक बनाकर वीरनारायण चरित काव्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना की है। वह सप्तशतीसार और साहित्यचिन्तामणि के प्रणेता और अमरूक के टीकाकार के रूप में परसिद्ध हैं। उनका संगीत विषयकग्रन्थ संगीत- चिन्तामणि भी समादृत हुआ है।

यहाँ काटयवेम की थोड़े विस्तार के साथ चर्चा करने का उद्देश्य उनकी आनुवंशिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना है जिससे यह समझा जा सके कि उनके शास्त्रीय और ऐतिहासिक वक्तव्यों के पीछे गम्भीर चिन्तन और प्रामाणिकता है और वे केवल निजी कल्पना पर आधारित नहीं है। काटयवेम के कई शिलालेख एपिग्राफिका इण्डिका में प्रकाशित हैं।

काटयवेम कृत टीका के महत्त्वपूर्ण होने का एक कारण है टीकाकार की बहुज्ञता जिसके सहारे वह बड़े सरल ढंग से नाट्य शास्त्रीय सन्दर्भों के साथ साथ ज्योतिष, संगीत, नृत्य, बाद्य, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र और आयुर्वेद के भी पारिभाषिक शब्दों और प्रंसगप्राप्त अंशों की सोद्धरण व्याख्या करते चले हैं। ऐसे प्रंसगों में वह कहीं भी आवश्यक उद्धरण देने में नहीं चूकते। मार्ग (नाट्यविशेष) प्ररोचना, आमुख (प्रस्तावना के अंग), संगीतक, अङ्कावतार, प्रवेशक, विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपक, छलिक या चलित नामक नाट्यनृत्य, नाट्य, लास्य, ताण्डव, आंगिक आदि अभिनय, प्रेरणाङ्गपंचक, पीठमर्दिका, सप्तस्वर, मायूरीमार्जना, लयमध्या, चतुष्पदाकृति, नर्तकाङ्गसौष्ठव, उपगान, अप्राप्तिविप्रलम्भ, विविधसंचारिभाव, लय, शाखा (नृत्तहस्तमात्रा) और साभास जैसे पारिभाषिक शब्दों पर उनकी सोद्धरण टिप्पणियाँ बड़े काम की हैं। उदाहरणार्थ—पञ्चाङ्गभिनय पर उनकी टिप्पणी है—"प्रेरणस्याङ्गपंचकमुक्तं संगीतरत्नाकरे (१-४३)"—"नृतं तथाच कैबारोमर्मरोजागरंतथा-गीतं चेति समाख्यातं प्रेरणस्याङ्गपञ्चकम्।" त्रिभिस्त्वेतत्प्रयोज्यंस्यात् कैबारं जागरंबिना इति। अत्र पंचाङ्गरूप नृत्तान्तरोपक्रमकथनेन चलितं नृत्तं साकल्येनपरिशीलितमिति सूच्यते। यहाँ टीकाकार ने पंचाङ्गाभिनय की उक्त परिभाषा देकर इसे चलित नृत्त कहा है। नृत्त शास्त्रकारों के अनुसार भावरहित नृत्य है। यद्यपि संगीतरत्नाकार नृत्त को पञ्चांग अभिनय का एक अंग मानता है। काटयवेम चलित को नाट्य विशेष कहते हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि जिस नाट्य का प्रयोग मालविका करती है वह चलित है या छलिक। परिव्राजिका इसे छलिक कहती है—शार्मिष्ठायाः कृतिंचतुष्पादोत्थं छलिकं दुष्प्रयोज्यमुदाहरन्ति। इससे छलिक चतुष्पदीय छन्द प्रतीत होता है जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना नृत्य के लिये की जाती है और जिसे नाट्यरूप में प्रदर्शित करना कठिन होता है—इस प्रंसग में बार-बार संगीत रचना शब्द का भी प्रयोग हुआ है—तेण हि दुए वि वग्गा पेक्खाघरे संगीतरअणं करिअ तत भवदो दूदं पेसअह। अहवा मुदंग सद्दोएव्बणो उत्थावइस्सदि। संगीत को टीकाकार तौर्यत्रिक बतलाता है। संगीतरत्नाकर मानता है—"गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयंसंगीतमुच्यते।" वकुलाबलिका इस प्रयोग को छलिकनाट्यकहतीहैं—आणत्तम्हि देवीए धारणीए—अइरप्पउत्तोवदेसंछंलिअंणाम नदृअं अंदरेण कीरिसी मालविअत्तिणदृा अरिं अज्जगणदासं पुच्छिदुं। तादावसंगीतसालंगच्छम्मि। इसकी संस्कृत छाया में छलिअ का रूपान्तर चलित दिया गया है। जो असमर्थनीय है किन्तु काटयवेम ने "छलिकं नाम नाट्यविशेष:"कहकर छलिक पाठ ही माना है और प्रमाणस्वरूप यह परिभाषा भी उद्धृत की है—"तदेवछलिकं नाम साक्षाद्यदभिनीयते—व्यपदिश्यपुरावृत्तंस्वाभिप्रायप्रकाशकम्।" अर्थात् छलिक में किसी पूर्वकथा का सहारा लेकर अपने मन का अभिप्राय प्रकाशित किया जाता है। मालविका ने पुरावृत्त के लिए शर्मिष्ठा की जो कृति चुनी उसकी जानकारी हमें आज तक नहीं है। अवश्य ही वह कालिदास को उपलब्ध थी। यह ऐसी ही कोई प्रणय-कथा रही होगी जैसी दक्षिणीपद्धति के नर्तक रखते हैं और पद गा गा कर उनमें व्यक्त भावों को नृत्य द्वारा प्रदर्शित करते हैं। भरत नाट्य में ऐसा ही होता है—इसीलिए गणदास कहता है—

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यतेमया तस्यै।

तत्तद्विशेष- करणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला॥

इसकी टीका करते हुए काटयवेम ने लिखा है—प्रयोगविषयेऽ भिनयार्थे मया तस्यै मालविकायैयद्यद्भाविकं भाववत्—नृत्यमित्यर्थ:। यथोक्तं-आङ्गिकाभिनय- प्रायमल्पवाचिक- सात्त्विकम्—भावनामास्पदंनृत्यं पदार्थ व्यञ्जनात्मक। इससे स्पष्ट है कि नृत्य में आंगिक अभिनय की प्रमुखता रहती है और उसी के द्वारा पदार्थो (रचना के मूल तात्पर्य) का प्रदर्शन किया जाता है। सात्विक और वाचिक अभिनय का सहारा लिया भी जाता है तो नाममात्र के लिए। इसीलिए नृत्य भावास्पद होता है। मालविका ने राक्षसराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा की चतुष्पदा लयमध्याकृति की चतुर्थ वस्तु का प्रयोग किया ता। शर्मिष्ठा का परिचय हमें काटयवेम से ही प्राप्त होता है। उन्होंने इस प्रसंग में कई बातें स्पष्ट की हैं। जेसे शर्मिष्ठा की कृति काव्य रूप में थी। वह तालमान की दृष्टि से मघ्यम ताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर गायी जाती थी—"लयमध्या लयेनतालकालेन मध्या मध्यम- मानयुक्ता।" अर्थात् न द्रुत और न बिलम्बित अपितु मध्यमा चतुष्पदा अर्थात् चार खण्डों वाली-चतुष्पदा चत्वारि पदानि खण्डानियस्याः सा। तस्याः कृतिसम्बन्धिनश्चतुर्थ वस्तुनश्चतुर्थस्यतुर्यस्यवस्तुनः प्रबन्धस्य प्रयोगशः-"अर्थात् चारखण्डों वाली कृति का चौथाबन्ध अभिनेय था। काटयवेम ने मध्यमताल का कारण भी स्पष्ट किया है—श्रृङ्गारस्य प्रतिपाद्यमानत्वाल्लयमध्येत्युक्तम्। भरत का मत उन्होंने उद्घृत किया है—"श्रृङ्गारहास्ययोर्मध्यलयः। करूणेबिलम्बितः वीर रौद्राद्भुतवीभत्सभयानकेषुद्रुतः।" कालिदास ने नृत्य संगीत को शिल्पाधिकार कहा है जिसकी व्याख्या काटयवेम ने 'कलाविद्याधिगम' की है। संभवतः इस काल में नृत्य, वाद्य, संगीत और नाटय शिल्प माने जाते थे। पतजलि ने भी इन्हें शिल्प ही माना है। नृत्य ताण्डव और लास्य भेद से दो प्रकार का होता है—रूद्रेणेदमुमाकृत व्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा। काटयवेम ने इसकी पुष्टि संगीत- विद्या- विनोद के इस उद्धरण से की है—उद्दण्ड- ताण्डवमुदञ्चित- लास्यलीलां कर्तु स्वयंयुगपदेव समुत्सुकात्मा—यः कामिनी- कलित- कम्रतरार्ध- कायः सोऽ यं विभाति विभुरादि नटः सुराणाम्। उद्दण्ड और उदचितं में मालविका का नृत्य कम्रतरकाप की माँग करता है। इसीलिए मालविका के अंग सौष्ठव के प्रति गणदास सावधान है और अग्निमित्र सोचता है—छन्दोनर्तयितुर्यथैवैमनसः शिलष्टं तथास्या वपुः। अंग- सौष्ठव नर्तन कला की पहली शर्त है। काटयवेम ने—"सौष्ठवं नामाङ्गानां सोभनोवस्थान- विशेषः" कहकर सौष्ठव की परिभाषा दी है जो उनके काल में बहुपरिचित रही होगी क्योंकि उन्होनें ग्रन्थ का नाम न देकर यथोक्तम्मात्र से काम चला लिया है—अनुच्चनीच- चलतामङ्गानां समपादताम्-कटि- कूर्पर शीर्षास्यकण्ठानां समरुपताम्-रम्यां प्रतीक विश्रान्तिमुरसश्च समुन्नतिंम—अभ्यासोपहितामाहुः सौष्ठवं नृत्यवेदिनः। दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति आदि श्लोक इस परिभाषा की विवरणमयी व्याख्यामात्र हैं। मालविका पहले उपगान करती है। यह उपगान संभवतः गीत की स्वरमाला है—उसका वितान भी हो सकती है। काटयवेम के अनुसार वह "उपगानं रागदीप्तं कृत्वा चतुष्पदवस्तु चतुष्पद- संज्ञकप्रबन्धं गायति। वस्त्विति प्रबन्धः।" कहा है—प्रबन्धोरूपकं वस्तु निबन्धस्याभिधाधात्रयम्। वसन्तराजीय नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ है। इस गीतनाट्य का सभी नृत्यों के विषय में उसका कथन है—अङ्गस्य चतुरस्त्रत्वं समपादौलता करौ—आरम्भे सर्वनृत्तानमेतत्सामान्यमिष्यते। पहले गान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है—"दुल्लहो पिओ मैतस्सिं भव हिअअ णिरासं" आदि चतुष्पदी का। किन्तु गान से पूर्व पुष्कर बजाया जाने लगता है जिसकी मार्जना से सब आह्लादित हो उठते हैं। भरत ने पुष्कर की विशेषता इस प्रकार बतलाई है—अर्थात् पुष्कर से (जो नगाड़े, मृदंग या तबले का प्राचीन रूप था) ये वाद्य सम्पन्न होते हैं—षोडशाक्षर-संपन्नं चतुर्मार्गं तथैव च-द्विलेपनं षट्करणं त्रियतिस्त्रिलयंतथा—त्रिगतंत्रिप्रचारं च त्रिसंयोगं त्रिपाणिकम्-दशार्ध- पाणि- प्रहतं त्रिप्रहारं त्रिमार्जनम्—एभिरङ्गैस्तु संपन्नं- वाद्यं पुष्करजं भवेत्। वाद्य अर्थात् बजायी जाने वाली ध्वनि, ताल आदि। इसमें मुख्यत: तीन मार्जनायें बजायी जा सकती हैं—मायूरी, अर्धमायूरी और कार्मारवी। कहा है—मायूरी चार्धमायूरी तथा कार्मारवीतिच-तिस्रस्तु मार्जनाज्ञेया: पुष्करेषुस्वराश्रया:। मार्जनायें स्वरों पर आधारित होती हैं। गान्धार, मध्यम और षड्ज मायूरी मार्जना के स्वर हैं। गान्धार पुष्कर के बायें भाग में, मध्यम ऊपर की ओर और षड्ज दक्षिण भाग में बजता है। अर्धमायूरी के स्वर हैं षड्ज, ऋषभ और धैवत जो क्रमश: बाम, दक्षिण और ऊर्ध्व भाग से निकलते हैं। कार्मारवी में ऋषभ, षड्ज और पंचम रहते हैं। यो क्रमश: वाम, दक्षिण और ऊर्ध्व की ओर निकलते हैं। भरत ने कहा है—गान्धारोवामके कार्य: षड्जोदक्षिणपुष्करे मध्यमश्चोर्ध्वग: कार्योमार्यास्तु स्वराअमी। वामके पुष्करे षड्ज ऋषभो दक्षिणे तथा— धैवतश्चोर्ध्व गोऽत्रार्ध मायूर्या निर्दिशेद् बुध:। ऋषभ: पुष्परे वामे षड्जो दक्षिण पुष्करे—पंचमश्चोर्ध्वग: कार्य: कार्मारव्या: स्वरा अमी।

पुष्कर के स्वरों का वादन तन्त्री के इन स्वरों के अनुसार होता है—"षड्जर्षभश्च गान्धारो मध्यम: पंचमस्तथा—धैवतश्च निषादश्च सप्ततन्त्र्युद्भवा: स्वरा:"- पुष्कर में बजायी जाती हुई मध्यम नामक स्वर से उठने वाली मार्जना की ध्वनि गहरी होती है, मेघ की मन्द ध्वनि के समान। इसे सुनकर मोर आनन्द से कूकने लगते हैं। इसीलिये इसे कहा है—निर्ह्रादिनी, मघ्यमस्वरोत्था मायूरी मार्जना। काटयवेम इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—-उपहितो योजितो मध्यम- संज्ञकस्स्वरस्तस्मादुत्तिष्ठत्युदेतीति तथोक्ताह्लादिन्यतिशय- निनादा। मार्जनानाम पुष्करवाद्यनामविशेष:(अर्थात् मार्जना पुष्कर के बजाने की विशिष्ठ ध्वनि शैली है। और इस पर नाट्य के लिए शरीर सौष्ठव बहुत आवश्यक है। भरत कहते हैं "नहिसौष्ठवहीनाङ्ग: शोभते नाट्य नृत्ययो:—नाट्यं नृत्यं च सर्वहि सौष्ठवेसंप्रतिष्ठितम्।" इसीलिए परिव्राजिका कहती है—-"निर्णयाधिकारेब्रवीमि। सर्वाङ्ग- सौष्ठवाभिव्यक्तयेबिरलनेपथ्ययो: पात्रयो:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशोऽ स्तु।" इसका आशय यह कि श्रेष्ठता के माप में नाट्य-नृत्य आदि के साथ अंग सौष्ठव के लिए अलग अंक नियत रहते हैं। काटयवेम ने इन सब बातों को अपने गिरिराजीय व्याख्यान में स्पष्ट किया है।

मालविका का चतुष्पद गान निम्नलिखित है—

दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ-णिरासं—
अम्होअपंगओ मे परिप्फुरइ किं पि वामओ।
एसोसो चिरदिट्ठोकहँउण उवणइदव्वोणाह
मं पराहीणं तुइ परिगणअ-सतिण्हं॥

इस सारे प्रदर्शन में पहले बाद्य फिर उपगान, गान और तदनन्तर रसानुकूल अभिनय चलता है। रस है विप्रलभ्भ श्रृङ्गार जो अयोगजन्य है। कहा है—अप्राप्तिर्विप्रलम्भः स्याद् यूनोर्जाताभिलाषयोः। अयोग, विरह, प्रवास, शाप, करूणा और मान, ये छै प्रकार के विप्रलम्भ काटयवेम ने बतलाये हैं। इनमें सम्प्राप्ति के पूर्व के असंग का ही नाम अयोग है। उपर्युक्त चतुष्पदी के प्रथम पाद में निर्वेद द्वितीय में विस्मय से युक्त हर्ष, तृतीय में चिन्ता और चौथे पद में दैन्य संचारी भाव है। निर्वेद इष्टार्थ के विरह से जनित है। अपांगस्फुरण से सूचित इष्टार्थ- लाभजन्य हर्ष है। इष्टालाभजनित चित्तैकाग्रतारूप चिन्ता है। एवम् औत्सुक्य से उत्पन्न दैन्य है।

"अंगैरन्तनिर्हित- वचनैः" आदि श्लोक (१-८) की टीका में भी काटयवेम ने कई महत्त्वपूर्ण बातों को स्पष्ट किया है। यथा-अर्थः गीतार्थः। अन्तर्निहितानि अभ्यन्तरवस्थापितानि वचनानि पदानियैस्तैरङ्गैर्हस्तादिभिः। अत्राभ्यासपाटवादङ्गानां स्वतएवान्तर्निहित- वचनत्वमुत्प्रेक्षितम्। अर्थात् हस्त आदि अंगों का विक्षेप कुछ इस प्रकार का होता है कि प्रबन्ध का अर्थ स्वतः ही उनके भीतर से फूट निकलता है। पादन्यास लयानुसारी है। लय शब्द को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं—लयो नाम तालमानम्। "तालवर्ती तु यः कालः स काललयनाल्लयः" इत्युक्तत्वात्। अत्र पादन्यासस्यस्वतो लयानुणरसमभ्यासपाटवादिति मन्तव्यम्। शाखा या शाखायोनिअभिनय को समझाते हुए उनका कथन है—"शाखा योनिः प्रभावयस्य सः। शाखा नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्तहस्तानां मानप्रचारः । यथोक्तम्" "शाखा तु नृत्तहस्तानां या मात्रोचित- नर्तनी" इति । और "तद्विकल्पानुवृत्तौ-भावोभावंनुदति प्रकृताद् राग- बन्ध स एव" की व्याख्या भी कितनी स्पष्ट है—तद्विकल्पानुवृत्तौतस्याभिनयस्यविकल्पो भेदस्तस्यानुवृत्तिरनुगतिःप्राप्तिः । तस्यांसत्यां भाव अभिनीयमानो निर्वेदादि विषयादाश्रयात् प्रकृतात्स्थायिनइत्यर्थः । भावं पूर्वाभिमानादानीतं संचारिणंनुदत्यपाकरोति रागबन्ध रंजनत्वयोगः स एव पूर्वं यादृशस्तादृशएव ।

कुछ महत्वपूर्ण नाट्यतन्त्रीय बातों की चर्चा ऊपर हुई है । इसके अतिरिक्त कई महत्त्वपूर्ण शब्द ऐसे हैं जिनके ठीक परिज्ञान के बिना अर्थ बोध सम्भव नहीं हो सकता । जैसे विपणिकन्दु । विदूषक कहता है कि मेरे हृदय का अन्तः प्रदेश विपणिकन्दु के समान जलता रहता है । काटयवेम ने "विपणि कन्दुर्नाम ब्रीहिपिष्टपचनपात्रम्" इस व्याख्या के द्वारा इसे स्पष्ट किया है । ऐसा ही एक शब्द है मत्स्यण्डिका । विदूषक मालविका को आता देखकर कहता है "ही हीबअस्स एदं खु सीहुपाणु ब्वेजिदस्समच्छंडिआ उवणदा ।" काटयवेम ने "मत्स्यण्डिका नाम शर्करा विशेषः" कहकर बात को स्पष्ट कियां । वस्तुतः मत्यण्डिका घृत एवं शकर के योग से तैयार किया हुआ मधुर पेय होता है जिसका प्रयोग मदपीडा के शमन के लिये किया जाता है । कहा है—मदयति नहि मद्यं जातुचित् पीतमद्यं पिवतिघृतसमेतां शर्करांयस्तु सद्यः । ऐसे अन्य प्रंसग भी हैं । जैसे विषवेग के सम्बन्ध में वसन्तराजीय उद्धरण—वैवर्ण्यं वेपथुर्दाहः फेनः स्कन्दस्य भञ्जनम्—दुःखं जाड्यं मृतिश्चेतिविषवेगाः स्युरष्टधा । फिर भी उनकी वृत्ति प्रथम अंक के नाट्य नृत्य से सम्बन्धित स्थलों की व्याख्या में जैसी रमी है, वैसी अन्य अंकों में नहीं । वहां उन्होने दो चार स्थलों को छोड़कर सामान्य रस्म भर अदा कर दी है । कारण स्पष्ट है । वह कुमार गिरि की सभा के सभ्य और उनके सखा थे । जिनके लिए स्वयं उन्होंने कहा है—नित्यं नन्दति नर्तनैरभिनवैः कान्तैः वसन्तोत्सवैः । इसलिए ऐसे प्रंसगों के आधिकारिक व्याख्याकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है । यही कारण है कि वह नाट्य सन्धियों, सन्ध्यङ्गों और अवस्थाओं का यथा स्थान उल्लेख नहीं भूले । काटयवेम की व्याख्या का तीसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है उनके द्वारा दो बार इस बात का संकेत कि मालविकाग्निमित्र की रचना अग्निमित्र के काल में हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशास्यमीति- विगमप्रभृति प्रजानां संपत्स्यते नखलुगोप्तरिचन्द्रगुप्ते

इस भरत वाक्य की व्याख्या में काटयवेम का कथन है—सर्वनाटक प्रयोगान्ते भरतेन सर्वकाल- साधारणे आशीर्वचने कर्तव्येसति अत्र प्रजानामाशस्य सिद्धि प्रति गोप्तुरग्निमित्रस्य कथनं तत्कालराजोपलणमिति मन्तव्यम्। नान्दी श्लोक की व्याख्या करते हुए भी उन्होंने उसमें परमेश्वर शिव की स्तुति के साथ साथ नाटक में वर्णित राजा की छवि भी देखी है। वह कहते हैं—"अत्र प्रणतबहुफल एकैश्वर्यस्थित कान्तासंमिश्रेण जगद्धरणेन ईश इत्यनेन च लोकोत्तरः कश्चिद्राजा ऽस्मिन्नाटके वर्ण्यतइति सूच्यते।" ये दोनों कथन नाट्यशास्त्र के उस गम्भीर विचारक के हैं जो वसन्तराजीय के शास्त्रज्ञ लेखक सुहृद और उस दीर्घ परम्परा वाले विद्वत्- राज- परिवार का सदस्य था और जिसे भारतीय राजवंशों का व्यापकज्ञान था। वह स्वयं भी राजा था। इसलिये उक्त दोनों कथनों पर विस्तारपूर्वक विचार करना उचित होगा।

मालविकाग्निमित्र की नान्दी कालिदास के अन्य नाटकों से इस बात में साम्य रखती है इसमें भी उनके समान ही ईशरूप शिव की स्तुति है। मालविकाग्निमित्र और शाकुन्तल में छन्द के अन्त में सीधे सीधे ईश शब्द आया है जब कि विक्रमोर्वशीय की द्वितीय पंक्ति में ईश्वर शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्तर यह कि मालविका में ईश से तामसी वृत्ति के व्यपनयन के लिये प्रार्थना की गयी है जब कि शाकुन्तल में अवन या संरक्षण की और विक्रमोर्वशीय में निःश्रेयस की। इन तीनों में कवि का उत्तरोत्तर आत्मिक परिष्कार भी पढ़ा जा सकता है। बुद्धि की शुद्धि, साधना की निर्विघ्नता और चरम कल्याण ये जीवनयात्रा के सहज क्रमिक सोपान हैं। इसी प्रकार इन तीनों के भरत वाक्य देखें तो भी दृष्टि के विकास का यही क्रम परिलक्षित होगा। ईति- विगमआदि, श्रीसरस्वती का संगम और फिर सर्वेभद्राणिपश्यन्तु—सर्वः सर्वत्र नन्दतु- ये भी तो भावना के क्रमिक विस्तार की ओर ही संकेत करते हैं। इनके सहारे तीनें नाटकों की रचना के पौर्वापर्य पर भी विचार किया जा सकता है। फिर भी यहाँ मेरा यह उद्देश्य नहीं है। यहाँ तो केवल इतना स्पष्ट करना है कि मालविका, की नान्दी लिखते समय कवि का ध्यान समाज में व्याप्त तामसीवृत्ति की ओर था। क्या यह तामसी वृत्ति बौद्धों द्वारा प्रचारित वेद, यज्ञ, वर्णाश्रम, ईश्वर विश्वास और आत्मा के नित्यत्व का विरोध ही तो नहीं था जिसके काव्य के माध्यम से सबसे बड़े प्रतिष्ठापक कालिदास थे। यह भी ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने की बात है कि काव्य के माध्यम से जो काम कालिदास करना चाहते थे वही राजनीति के सहारे अग्निमित्र और उनके पिता एवं पुत्र कर रहे थे । पुष्य मित्र ने दो अश्वमेध किये थे जिनमें से एक में पिता के आमन्त्रण पर अग्निमित्र भी सम्मिलित हुए थे । इनमें से एक के आचार्य याजक व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि थे । ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते (४-३-१०१) नन्दन्तु कठकालापाः, वर्धन्तां कठकौथुमाः, उदगान्मौदपैप्पलादम् (२-४-३) जैसे ढेरों कथन जो महाभाष्य में प्राप्त होते हैं वे इस बात के साक्षी हैं कि यह काल बौद्धों द्वारा आकान्त वैदिक परम्परा के पुनः जयघोष का था। वैदिक लोग पुष्यमित्र को, जिसका वैदिशप्रतिनिधि अग्निमित्र था, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' रूप आधार मानते थे। 'व्यपनयतु स वस्तामसींवृत्तिम्, से कवि का संकेत इसी ओर है । तीनों नान्दियों में एकमात्र यही नान्दी है जिसमें लेखक ने भास आदि पूर्ववर्ती रूपककारों के समान जिनका नामपूर्व स्मरण उसने प्रस्तावना में किया है प्रच्छन्न रूप से समकालीन नायक की ओर भी संकेत कर दिया है । कथावस्तु के समान इस नाटक की नान्दी भी भास की शैली की है । इसमें पुष्य मित्र के चक्रवर्तित्व (एकैश्वर्ये स्थितोपि) उसकी उदारता (प्रणत बहुफले), महान् सम्राट होकर भी स्वयं को सेनापति ही कहना और ब्राह्मण वृत्ति से रहना (कृत्तिवासाः) महान् चरित्रवान् और संयमी का जीवन बिताना (कान्ता. . .) अपने अधीनस्थ आठ बड़े जनपदों के होने पर भी निरभिमानिता (अष्टाभिः) की ओर भी संकेत है । यह संकेत अग्निमित्र की ओर भी हो सकता है । इसलिये काटयवेम का यह कथन कि "प्रणत बहुफले, ऐकैश्वर्येस्थितः, कान्तासंमिश्रणेन जगद्धरणेन ईश इत्यनेन च लोकोत्तरःकश्चिद्राजा...सूच्यते ।", सर्वथा उचित ही है । यदि ऐसा है तो नान्दी की तामसीवृत्ति (अज्ञान प्रमाद) के उन्मूलन की यह प्रार्थना सम-सामयिक राजा के प्रति है, यह भी स्पष्ट है । साथ ही भरत वाक्य में व्यक्त ईत्यादि के विगम की आशा भी वर्तमान राजा अग्निमित्र से ही की गयी है । ये दोनों बातें कवि को अग्निमित्र का समकालीन सूचित करती हैं ।

एक अन्य कथन से भी इस धारणा की पुष्टि होती है । मेघदूत में मेघ को मार्ग का निर्देश करते हुए कालिदास ने प्रसंग प्राप्त विदिशा का वर्णन किया है और उसे प्रथित राजधानी कहा है—

तेषां दिक्षु प्रथित- विदिशा- लक्षणां राजधानीं,

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्यलब्ध्वा । पूर्व मेघ. २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः पण्यस्त्री- रति परिमलोद्गारिभिर्नागराणा-

मुद्दामानिप्रथयतिशिला- वेश्मभिर्यौवनानि ॥ पूर्व. मेघ. २५

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि कालिदास के समय में विदिशा दिग्दिगन्त में ख्यात राजधानी थी। नृत्य संगीत और कलाविलास वहाँ के नागरिकों के जीवन के अभिन्न अंग थे। इसके पार्श्व में स्थित नीचैः गिरि की गुफायें वारवनिताओं की विहारस्थली थीं जिनमें गुप्तकाल में अनेक वैष्णव मूर्तियाँ प्रस्तरों को काट-काट कर बनायी गयीं। अग्निमित्र के समय में यहाँ विदिशा (वेस) नदी के किनारे अनेकों बड़े-बड़े यज्ञ हुए जिनमें एक अश्वमेध भी सम्मिलित है, । यह यज्ञशाला शुङ्गकाल की है। शुङ्गों के ही समय में विदिशा उनकी दूसरी राजधानी थी। शुङ्गों के बाद हर्षवर्धन के समय तक उसे यह महत्त्व कभी प्राप्त नहीं हुआ। "दिक्षु प्रथित विदिशालक्षणा राजधानी" यदि कालिदास के समय में थी तो कालिदास को अग्निमित्र के समय के निकट विद्यमान होना चाहिये।

'कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में मगध, अंग, अवन्ति, अनूप, शूरसेन, उरगपुर, कलिंग और उत्तरकोशल के नृपों को भाग लेते बतलाया है। ये सारे राज्य अग्निमित्र के समय में शक्ति सम्पन्न थे किन्तु गुप्तकाल में या तो इनका अस्तित्व समाप्त हो चुका था या वे क्षीण दशा में थे। इस प्रसंग में कवि ने सब से पहले मगधेश्वर को प्रस्तुत किया है और उन्हें विदर्भ नरेश की स्वसा का कामुक बतलाया है। मगध के गुप्त राजा तो विदर्भ के नरेश की कन्या से परिणय की कल्पना तक नहीं कर सकते थे क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की अपनी बहिन प्रभावती विदर्भ के वाकाटक नरेश प्रवरसेन को ब्याही थी। यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है कि इस प्रसंग में कालिदास ने मगधेश्वर के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग किया है उनमें से कई चन्द्रगुप्त द्वितीय की अपेक्षा पुष्यमित्र के विषय में अधिक संगत बैठते हैं। यथा—क्रिया प्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूत- सहस्र- नेत्रः। अध्वरों के प्रति सर्वाधिक निष्ठा शुङ्गों में ही मिलती है। यह बात पीछे कही जा चुकी है। गुप्तों का लगाव यज्ञों की अपेक्षा भक्ति और कला-प्रवृत्तियों में अधिक था। दूसरे गुप्त राजा सम्राट थे। देश का अधिकांश भाग उनके अधीन था। उनमें से किसी की प्रतियोगिता में शूरसेन, कलिंग, अनूप के राजा स्वयंवर में खड़े होने का साहस नहीं कर सकते थे। उनके लिये मगधेश्वर विशेषण बहुत छोटा होता। इस दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास का यह कहना कि भले ही हजारों अन्य राजा हों किन्तु पृथिवी यदि सुशासित और सुखी है तो मगधेश्वर से ही—

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽ न्येराजन्वतीमाहुरनेनभूमिम् ।

गुप्त राजाओं की अपेक्षा शुंगों के विषय में ही अधिक सत्य है । गुप्तों के समय में अधिक स्वतन्त्र राज्य बचे ही नहीं थे । यह भी विचारणीय है कि चौथी पाँचवीं सदी ईसवी में मगध और पुष्पपुर शब्दों का व्यवहार कम होने लगा था । इन शब्दों का प्रयोग पाँचवीं से प्रथम ई. पू. तक ही अधिक हुआ है । यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि इन्दुमती इन सारे राजाओं को छोड़कर सीधे आगे बढ़ जाती है । किसी के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित नहीं करती । सम्मान वह केवल मगधेश्वर के प्रति प्रदर्शित करती है । ऐसा कवि ने कहा है—प्राचीन विदिशा की खुदाई में प्राप्त यज्ञशाला इसकी साक्षी है । यह यज्ञशाला शुंगो के समय की है ।

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद् विस्त्रंसिदूर्वाङ्क- मधूकमाला ।

ऋजु प्रणामक्रिययैव तन्वीप्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा । रघु, ६-२५

यही एक नृपति था जिस पर इन्दुमती ने एक दृष्टि डाली, प्रणाम किया और बिना कुछ बोले आगे बढ़ गयी । क्या वाकाटक नरेश की पुत्री ऐसा करती ? हाँ शुङ्ग नृपति को प्रणाम करना उसके लिये स्वाभाविक था । विदर्भ नरेश यज्ञसेन मौर्य सम्राट के सचिव का बहनोई था और इसलिये शुङ्गों का प्रकृत्यमित्र । अग्निमित्र ने अपने सेनानायक वीरसेन के द्वारा उसे पराजित कराया था और वरदा (बर्धा) नदी को सीमा बनाकर बाद में विदर्भ का राज्य यज्ञसेन और माधवसेन के बीच आधा-आधा बाँट दिया था । सन्धि के अनुसार शुंग नृपति ने यज्ञसेन के साले मौर्य सचिव को मुक्त कर दिया थ्श और यज्ञसेन ने अग्निमित्र के चचेरे भाई माधवसेन को । बँटवारे के बाद दोनों पुष्यमित्र के संरक्षण में राज्य कर रहे थे । कवि द्वारा मगधेश्वर को प्रणाम करवाने का यही कारण है । इस काल के एवं गुप्त नृपतियों के समय की राजनीतिक स्थति पर प्रोफे. रैप्सन (कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया-जिल्द १), डा. डी. सी.सरकार (दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी तथा ज्याग्राफी एनशियेण्ट आफ उज्जयिनी), डा. आर. सी. मजूमदार (दि क्लासिकल एज), डा. राधा कुमुद मुखर्जी आदि विद्वानों ने इतना व्यापक प्रकाश डाला है कि यहाँ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं । इतना स्पष्ट है कि कवि ने जब स्वयंवर में सम्मिलित राजाओं और उनके राज्यों का ब्योरेवार वर्णन किया होगा तो उसके सम्मुख इन प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासकों और जनपदों का कोई चित्र रहा ही होगा। केवल कल्पना के बल पर यह वर्णन संभव नहीं था। उनसे पूर्व और किसी कवि ने ऐसा वर्णन किया भी नहीं था। तब निश्चित है कि ये चित्र किसी न किसी तरह उनके मस्तिष्क में थे और वे यदि उनके समकालीन नहीं तो भी निकट अतीत के रहे होंगे। गुप्तकाल के ये चित्र हो नहीं सकते क्योंकि उस समय इन राज्यों का अस्तित्व ही समाप्त हो चुका था। शूरसेन, अवन्ति और अनूप का शासन इस काल में क्रमशः आर्जुनायन, मालव और वाकाटक वंश के हाथ में था। पाण्ड्य क्षीणप्राय था। आर्जुनायन और मालव गुप्तों के अधीन थे। कलिंग, अंग और कोसल नष्ट हो चुके थे। हाँ, शुंगकाल में इन सबकी स्वतंत्र सत्ता अवश्य थी। जो लोग रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघुदिग्विजय में समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय यात्रा की छाया देखते हैं—वे यह भूल जाते हैं कि कालिदास द्वारा वर्णित राजनीतिक भूगोल गुप्तकालीन भूगोल से सर्वथा भिन्न है।

रघु के दिग्विजय वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि कालिदास को भारत के विभिन्न भागों की विशेषताओं का ज्ञान था। वह जानते थे कि सुह्म पदेश में वेतस बहुत हैं, वंग में कलम (शालि) धान अधिक होते हैं, कलिंग में हाथी बहुत हैं, वहाँ ताम्बूल और नारियल प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। महेन्द्र पर्वत के पास सुपारी अधिक पैदा होती है और मलयाद्रि की उपत्यका में इलायची और चन्दन, ताम्रपर्णी में मुक्ता मिलते हैं, केरल में मुरला नदी के आस-पास केतकी बहुत है और खजूर एवं पुंन्नाग भी। उन्हें मालूम था कि पारसीक लोग लम्बी दाढ़ीं मूँछें रखते हैं, शिरस्त्राण पहनते हैं, उनकी स्त्रियाँ मद्यपान करती हैं। इस प्रदेश में घोड़े अच्छी नस्ल के होते हैं। पश्चिमी छोर घोड़ों ही नहीं, द्राक्षा के लिये भी प्रसिद्ध है। उत्तर दिशा में वड्क्षु नदी के पास केसर की खेती होती है। यह प्रदेश हूण- बहुल है। कम्बोज में अखरोट बहुत होते हैं। हिमालय पर भूर्ज और कीचक बाँस के वृक्ष हैं। वहाँ नमेरु, साल (चीड़) और देवदारु के वन हैं। लौहित्य को पार करने पर प्राग्ज्योतिषपुर मिलता है जहाँ कालागुरु के वृक्ष पाये जाते हैं। इसी के पास कामरूप है। इतनी सामान्य जानकारी उस समय देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पैदल घूमने वाले साधुसन्तों से भी मिल जाती थी किन्तु देश के सैंकड़ों छोटे छोटे जनपदों में विभक्त होने के कारण उनकी तथा उनके शासकों की जानकारी रखना कठिन था। इसीलिये कालिदास भी कुछ गिने चुने राज्यों की ही सूची प्रस्तुत कर पाये हैं और वह भी शासकों का नाम दिये बिना। कोसल से प्रस्थित होकर पूर्व दिशा में बहुत से जनपदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को, जिनका नामोल्लेख नहीं हुआ है, जीतता हुआ रघु सीधे सीधे समुद्र के किनारे बसे हुये ताड़ वृक्षों से श्यामल सुह्म जनपद में पहुँचता है । अंग, मगध, विदेह आदि को उसने जानबूझकर छोड़ दिया है । बंग, उत्कल, कलिंग, पाण्ड्य, केरल, फारस, हूणदेश, कम्बोज, किरातभूमि, उत्सव- संकेत किन्नर प्रदेश, कामरूप और प्राग्ज्योतिषपुर का ही नामपूर्वक उल्लेख कालिदास ने किया है । पूर्व के जनपदों को 'तान् तान् जनपदान्' और उत्तर के पर्वतीय जनपदों को 'पर्वतीय गण' कहकर वह आगे बढ़ गये हैं—

पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तान्तान् जनपदान्जयी

प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः । रघु. ४-३४

तत्रजन्यं रघो र्घोरं पर्वतीयै र्गणैरभूत् ।

नाराचक्षेपणीयाश्म- प्रताप- ज्वलितानलम् ।। वही ७७

उपर्युक्त जनपदों में से रघु का कठिन युद्ध केवल कलिंग, पाश्चात्य प्रदेश के अपरान्त, पारसीको यवनों, हूणों और पर्वतीय गणों से ही हुआ । इनमें भी कलिंग और पर्वतीय गणों ने उसका डटकर सामना किया । इलाहाबाद के प्रस्तर स्तम्भ पर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में जिन राजाओं के नाम दिये गये हैं उनमें एक का भी उल्लेख रघुवंश में नहीं है । उसमें उल्लिखित जनपदों में केवल महेन्द्रगिरि, केरल, और कामरूप भर का नाम रघुवंश में आया है । साथ ही शिलालेख में अनुल्लिखित सुह्म, बंग, कलिंग, पारसीक, हूण, किरात, पर्वतीयगण की उनके ब्योरे के साथ रघुवंश में चर्चा है । इससे स्पष्ट है कि कालिदास गुप्तकालीन राजनीतिक भूगोल से सर्वथा अनभिज्ञ थे । फिर कालिदास के इस वर्णन का उपजीव्य क्या है ? रामायण ? नहीं । पुराण ? बिल्कुल नहीं । रामायण और पुराणों के भूगोल से कालिदास का दूरस्थ सम्बन्ध भी नहीं जान पड़ता । वस्तुतः कालिदास ने उन्हीं प्रदेशों या जनपदों का उल्लेख किया है जो मौर्यो के अन्तिम काल में उनके हाथ से निकल गये थे और जिन्हें फिर से एक सूत्र में बाँधने का काम शुंगों की तीन पीढ़ियों ने किया था । यवनों पर वसुमित्र की विजय की चर्चा तो मालविकाग्निमित्र में भी है । हूणों के विषय में यह प्रायः कहा जाता है कि वे चौथी ईसवी सदी से पूर्व भारत में नहीं आये थे किन्तु कालिदास ने भी उन्हें भारत की वर्तमान सीमा के भीतर कहाँ बतलाया है ? उनके साथ तो रघु का युद्ध उत्तर सीमा पर केसर के प्रदेश में जो कम्बोज के पास था, हुआ । किरातों के साथ भी उसका युद्ध इसी के आस-पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। किरात भारत और चीन के सीमान्त प्रदेश के निवासी थे। डा. डी. सी. मजूमदार और डा. आर. सी. मजूमदार (दि क्लासिकल एज) के अनुसार हूणों की एक शाखा द्वितीय शती ईसा पूर्व में वंक्षु के पास आकर बस गयी थी और वहाँ से उन्होंने जुआन नामक कबीलों को खदेड़ दिया था। भारतीय सीमा में अवश्य उन्होंने चतुर्थशती के बाद प्रवेश कर भयंकर नरसंहार किया। अतः कवि के द्वारा पाँचवीं सदी ई. में उन्हें पराजित दिखाने का कोई औचित्य नहीं। मजूमदार द्वय का उक्त कथन म-त्वान-लिन् और क्स-एन एवं हन्-शु नामक चीनीं ग्रन्थों पर आधारित है।

कुछ लोग मेघदूत में उल्लिखित निम्नश्लोक की मल्लिनाथी टीका के आधार पर कालिदास को निचुल एवं दिङ्नाग का समकालीन ठहराते हैं। श्लोक है—

स्थानादस्मात् सरस- निचुलादुत्पतोदङ्मुखःसन्

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्॥ पूर्व. १४

इसकी टीका करते हुये मल्लिनाथ ने लिखा है—"अत्रैदमप्यर्थान्तरंध्वनयति। रसिको निचुलोनाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानांपरिहर्ता। दिङ्नागानां पूजायां बहुवचनम्। दिङ्नागाचार्यस्य कालिदास- प्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वकानिदूषणानिपरिहरन्।" मल्लिनाथ ने इस श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों की टीका में भी कहा है—

अद्रेः श्रृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः

दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः॥ पूर्व. १४

अद्रेरद्रिकल्पस्यदिङ्नागाचार्यस्य श्रृङ्गं प्राधान्यम् हरतिकिंस्वदितिहेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरङ्नाभिश्चदृष्टोत्साहः सन् खमुत्पत। उच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मांन प्रतिवा कवेरुक्तिरिति।

दिङ्नाग का समय चतुर्थ शताब्दी माना जाता है। अतः मल्लिनाथ के साक्ष्य के बल पर कालिदास का समय भी वही होगा। किन्तु मल्लिनाथ का यह कथन उतना ही उपहासास्पद है जितना उनके द्वारा मेघदूत के प्रथम श्लोक के 'रामगिर्याश्रमेषु' की टीका में 'रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु' यह कथन। जिस प्रकार रामगिरि बांदा (उ. प्र.) जिले का चित्रकूट पर्वत नहीं है उसी प्रकार निचुल भी कालिदास के सहाध्यायी नहीं है। कालिदास का आशय चित्रकूट से होता तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना छन्दोभंग के 'चित्रकूटाश्रमेषु' कह सक्ते थे। निचुल भोज (११ वीं शती ई.) के समकालीन कालिदास के मित्र थे जिनके 'नानार्थशब्दरत्न' की टीका निचुल ने लिखी है। इसकी पाण्डुलिपि मद्रासगवर्न. मैनस्क्रिप्ट लाइब्रेरी में उपलब्ध है। इसके प्रारम्भ में व्याख्याकार ने कहा है—"स्व- मित्रकालिदासोक्त शब्दरत्नार्थतिजृम्भितम्"और में लिखा है—इति श्रीमन्महाराज- शिरोमणि श्री भोजराज- प्रबोधितनिचुल- कवि- वियोगिचन्द्रनिर्मितायां महाकवि कालिदासकृत नानार्थशब्दरत्नकोशदीपिकायांतालाख्यायाम्। इससे निचुल के विषय में मल्लिनाथ की भ्रान्ति स्पष्ट हो जाती है।

द्रिङ्नाग को कालिदास का समकालीन मानना भी केवल कल्पनाश्रित है। पहले चाहे दिङ्नागानाम् पद में आदरार्थक बहुवचन मानें, चाहे उसे उनके समर्थक दिङ्नागानुयायी जनों का बोधक, दोनों ही दृष्टियों से यह असमर्थनीय है। यह बात लम्बी व्याख्या की माँग नहीं करती। फिर कालिदास न तो दार्शनिक थे और न ही किसी मार्ग विशेष के प्रवक्ता। उनकी कृतियों में न कहीं दिङ्नाग का उल्लेख है और न दिङ्नाग के किसी सिद्धान्त का खण्डन। दिङ्नाग द्वारा कालिदास की प्रतीप आलोचना का भी पता हमें नहीं है। फिर दिङ्नाग मालप्रदेश से पूर्व या दक्षिण में रहते थे इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। ऐसी स्थिति में मल्लिनाथ का यह उपर्युक्त कथन कि "अथेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति" कोरे बौद्धिक प्राणायाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

कालिदास की रचनाओं पर कामसूत्र के प्रभाव की बात कही जाती है। यह सत्य है कि कुमारसंभव के अष्टम सर्ग एवं अभिज्ञान शाकुन्तल के चतुर्थ अंक पर कामसूत्र की छाया है। किन्तु यह बात तो स्वयं कामसूत्रकार ही कहता है कि मूल काम सूत्र नन्दी ने लिखा था जिसमें १००० अध्याय थे। वाभ्रव्य पांचाल ने १५० अध्यायों में उसका संक्षिप्त संस्करण किया जो सात प्रकरणों में विभक्त था। फिर चारायण घोटमुख गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, दत्तक, सुवर्णनाभ और कुचुमार में से प्रत्येक ने एक-एक प्रकरण पर स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे। प्रस्तुत कामसूत्र में बहुत से ऐसे परम्परा प्राप्त वचनों का संग्रह है जो बहुत पहले से समाज में प्रचलित थे। अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, धम्मपद, मनुस्मृति में ऐसे ढेरों वाक्य और गाथायें संगृहीत हैं जो समाज में खूब प्रचलित थीं। इसीलिये एक ही श्लोक या बचन बहुत से ग्रन्थों में समान रूप से उपलब्ध होता है। महाभारत, स्मृतियों और पुराणों में प्राय: एक ही श्लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथावत् देखने को मिलता है और इसका कारण है उन सबके मूल स्रोत की समानता। यही बात कालिदास की कृतियों और कामसूत्र के विषय में कही जा सकती है। दोनों का मूल स्रोत एक ही वाभ्रव्य पांचाल हो सकता है। फिर कामसूत्र को बहुत से विद्वान् चतुर्थ ईसापूर्व की रचना मानते हैं।

कुछ "लोग मयूरपृष्ठाश्रयिणागुहेन" इस कालिदासोक्ति और कुछ गुप्तकालीन मुद्राओं पर मयूर पृष्ठ पर आसीन स्कन्द की मूर्ति को देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि कालिदास ने उपर्युक्त कल्पना इन मुद्राओं को देखकर ही की होगी। वे लोग यह भूल जाते हैं कि भारत में कवि कल्पना के आधार पर मूर्ति या चित्र बनाने की प्रथा रही है। मूर्ति के आधार पर श्लोक- रचना की नहीं। भारत और ग्रीस की मूर्ति संकल्पना में यह एक मौलिक अन्तर है। फिर स्कन्द की मयूर पृष्ठाश्रयिता तो बहुत पहले से प्रसिद्ध थी। महाभाष्यकार पतंजलि ने एक ही प्रासाद (देवायतन) में शिव, स्कन्द और विशाख की मूर्तियों के एक साथ प्रतिष्ठित और पूजित होने का अनेक बार उल्लेख किया है। यह परम्परा मौर्यकाल में ही चल पड़ी थी। स्कन्द देवसेनानी के रूप में बहुत प्रतिष्ठित देवता थे। इसीलिये कालिदास ने कुमारसंभव का नायक उन्हें बनाया। मेघदूत में भी उन्होंने कहा—

ज्योतिर्लेखावलय- गलितं यस्यवर्हंभवानी

पुत्रप्रेम्णा कुललयदलक्षेपि कर्णे करोति।

धौतापाङ्गं हरशशि- रूचा पावकेस्तं मयूरं

पश्चाददद्रि ग्रहणगुरुभिर्गर्जितै नर्तयेथाः। पूर्व. मेघ. ४४

इस सम्बन्ध में भीटा ग्राम में उपलब्ध पदक की महत्ता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता जिसके ऊपर अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक का चित्र उत्कीर्ण है। सर जे० एच० मार्शल के अनुसार यह मृन्मय पदक द्वितीय ईसा पूर्वशती का है।

कालिदास की प्राकृत, कुन्तलेश्वर दौत्य का सन्दर्भ आदि कुछ बातें भी कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करने के लिये प्रस्तुत की जाती है। इन पर बहुत से विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। प्राकृत के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है क्योंकि रंगमंच पर बहुत अधिक प्रयुक्त होने के कारण कालिदास के प्राकृत रूपों पर ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। फिर भी वह भास को छोड़कर अन्य किसी की अपेक्षा अर्वाचीन नहीं है। रही कुन्तलेश्वर दौत्य की बात,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो उसके रचयिता कौन से कालिदास थे और कुन्तलेश्वर कौन था, यही निश्चित नहीं हो पाया। हाँ, इतना निश्चित है कि कालिदास सातवाहन हाल और गाहासत्तसई में संगृहीत गाथाओं से अनभिज्ञ थे। वह अश्वघोष से भी अपरिचित थे जिन्होंने कालिदास की वाक्यावली का खुलकर उपयोग किया है। कालिदाल पर अर्थशास्त्र और मनुस्मृति का प्रभाव दिखाई देता है किन्तु वह प्रभाव इन ग्रन्थों में संकलित मान्याताओं का है जिन्हें कालिदास ने मनुवर्त्म कहा है। यह प्रभाव इन ग्रन्थों के वर्तमान संस्करणों का नहीं है। गुप्तकालीन कला और कालिदास में जो साम्य बहुश: दिखता है वह उनकी आधारभूत मान्यताओं की समानता के कारण या जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनकी उपजीव्य ये कृतियाँ हैं।

कालिदास के काल एवं स्थान की सुनिश्चितं करने के विषय में अब तक जितने भी प्रयत्न हुये हैं, उनसे कालिदासीय- साहित्य की सार्वदेशिकता और सार्वकालिकता का उद्‌घाटन तो अवश्य हुआ है किन्तु काल एवं स्थान के विषय में किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका है और न निकट भविष्य में किसी परिणाम की संभावना ही है। फिर भी इस विषय में उनकी भाषा का गहन अध्ययन सहायक हो सकता है। उनकी कृतियों में उपलब्ध याज्ञिक (ब्राह्मण) विश्लेषणों से भी उनके कालनिर्धारण में सहायता मिल सकती है। फिर भी इस विषय में हमें किसी निर्विवाद स्थिति तक पहुँचने की आशा नहीं करनी चाहिये।

विक्रमोर्वशीयम्

यह कालिदास की द्वितीय रचना है। कला-सौष्ठव की दृष्टि से भी इसका स्थान द्वितीय है। विक्रमोर्वशीयम् में पुरूरवा और उर्वशी की प्रणय-कथा है। एक बार प्रतिष्ठानपुर का सोमवंशीय राजा पुरूरवा सूर्य की पूजा करके हेमकूट शिखर के पास से लौट रहा था कि उसके कान में स्त्रियों का आर्तनाद पड़ा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि केशी नामक दैत्य उर्वशी और उसकी सखी चित्रलेखा को पकड़ ले गया है इसलिये उनकी सखियाँ दुःख से चीख रहीं हैं। यह सुनते ही राजा उनकी रक्षा के लिये दौड़ पड़ता है और थोड़ी देर बाद मूर्च्छित उर्वशी और उसकी सखी को लेकर लौट आता है। शीघ्र ही उर्वशी होश में आ जाती है किन्तु राजा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। राजा का शौर्य और सद्व्यवहार देखकर वह उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। इस बीच उर्वशी की रक्षा के लिए इन्द्र ने भी गन्धर्व- सेना भेज दी थी किन्तु वह मार्ग में ही पुरुरवा के पराक्रम का समाचार पाकर लौट जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उर्वशी चित्ररथ गन्धर्व के साथ आकाशयान से लौट जाती है किन्तु वह लता में अटकी हुई अपनी मोतियों की माला को छुड़ाने के बहाने पुरुरवा को देखने के लिये क्षण भर रूक जाती है। राजा अपने प्रेम की बात विदूषक को बतलाता है किन्तु उसे गुप्त रखने की भी आज्ञा देता है। इधर पुरुरवा की पत्नी रानी औशीनरी अपनी चेटी निपुणिका को राजा के पास भेजती है क्योंकि इधर वह बहुत अन्यमनस्क रहने लगा था। निपुणिका बात ही बात में विदूषक से सारा रहस्य जान लोती है। राजा मनोविनोद के लिये विदूषक के साथ प्रमदवन में जाता है और विदूषक से उर्वशी के समागम का उपाय ढूँढने को कहता है। इतने में उर्वशी और चित्रलेखा भी वहाँ आ जाती हैं किन्तु तिरस्करिणी विद्या से अपने को छिपाये रखती हैं। उर्वशी राजा के मुख से ही अपने प्रति उसकी अनुरक्ति की कथा सुनकर भोजपत्र पर एक श्लोक लिखकर उसके पास फेंक देती है। राजा प्रेम में मग्न है। उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये वह कहता है—

आभरणस्याभरणं प्रसाधन- विधेः प्रसाधन- विशेषः।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्या॥२-३

उसकी अनुरक्ति तीव्रतर हो जाती है। वह कहता है—

नितान्त कठिनांरूजं मम न वेद सा मानसीम्,

प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वापि माम्।

अलब्धफलनीरसं मम विधाय तस्मिन् जने,

समागममनोरथं भवतु पञ्चवाणः कृती॥ २-११

राजा पत्र पढ़कर आनन्दमग्न हो जाता है और उसे सम्हालकर रखने के लिये विदूषक को दे देता है। अब उर्वशी प्रकट हो जाती है। इन सबके बीच बात चल ही रही होती है कि एक देवदूत भरत द्वारा अभिनीत किये जाने वाले नाटक में भाग लेने के लिए उर्वशी को लेने आ जाता है। उर्वशी चली जाती है। तब राजा मन बहलाने के लिये विदूषक से उर्वशी का प्रेम पत्र माँगता हैं, किन्तु पत्र विदूषक के हाथ से छूटकर हवा में उड़ जाता और उधर ही आती हुई रानी औशीनरी के नूपुर में अटक जाता है। दासी निपुणिका पत्र पढ़कर रानी को समझाती है। रानी देखती है कि पुरूरवा भोजपत्र ढूँढने में व्यस्त है, तो भोजपत्र उसे दे देती है। राजा लज्जा से रानी के पैरों पर गिर जाता है। किन्तु रानी आवेश में उसका तिरस्कार कर चल देती है। तब राजा कहता है कि भले ही मैं उर्वशी से प्रेम करता हूँ किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे मन में महारानी के लिए अत्यन्त आदर है । अनुनय की उपेक्षा के विषय में वह बड़े काम की बात कहता है—

प्रियवचनकृतोऽपियोषितां दयित- जनानुनयो रसादृते ।

प्रविशति हृदयं न तद्विदां मणिरिव कृत्रिमराग- योजितः ।।

तृतीय अंक में गालव के दो शिष्य आते हैं और परस्पर वार्तालाप करते हुए बतलाते हैं कि इन्द्र सभा में सरस्वती- कृत लक्ष्मी- स्वयंवर नामक नाटक खेला गया था उसमें मेनका ने वारूणी और उर्वशी ने लक्ष्मी की भूमिका की । उसमें वारूणी ने पूछा कि विष्णु सहित सारे लोकपाल यहाँ आये हैं । तुम उनमें से किसका वरण करना चाहती हो ? उत्तर में उर्वशी को कहना था, "पुरुषोत्तम का" किन्तु ध्यान कहीं और होने से कह गई, "पुरूरवा का" तब भरतमुनि ने क्रुद्ध होकर उसे स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाने का शाप दिया । तब उर्वशी को खिन्न देखकर इन्द्र ने कहा कि पुरूरवा मेरा मित्र है । इसलिए तुम जाकर उसके पास रहो और जब वह पुत्र का मुख देख ले तो फिर स्वर्ग चली आना ।

दूसरी ओर औशीनरी पुरूरवा को मणिहर्म्य की छत पर आमन्त्रित करती है यह कहकर कि आज चन्द्रमा बहुत सुन्दर है । अतः उसका रोहिणी के साथ संयोग होने पर मैं आपके साथ बैठना चाहती हूँ । राजा आता है । इतने में उर्वशी अभिसारिका का वेश धारण कर चन्द्रलेखा के साथ वहाँ प्रकट होती है किन्तु रानी को आता देख वहाँ छिप जाती है । रानी चन्द्र किरणों की पूजा कर सविनय राजा से कहती है कि मैं रोहिणी चन्द्र की जोड़ी को साक्षी करके वचन देती हूँ कि जिसका आपके प्रति प्रेम है या जिसको आपसे प्रेम है उसके साथ मैं भी प्रेम का व्यवहार करूँगी । राजा चन्द्र की स्तुति करता है—

रविमाविशते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते पितृन् सुरांश्च ।

तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हरचूडा- निहितात्मने नमस्ते ।।३-७

रानी चली जाती है, तो उर्वशी प्रकट होती है । चित्रलेखा भी सूर्योपस्थान के बहाने उर्वशी को राजा के पास छोड़कर विदा लेती है । कुछ समय बाद राजा राज्य का भार मन्त्रियों पर छोड़कर विहार के लिए गन्धमादन पर्वत पर चला जाता है । वहाँ वह एक दिन गंगा के किनारे बालू के ढूह बनाकर खेलती हुई किसी विधाधर कुमारी को एकटक देखते हुए उर्वशी की उपेक्षा कर देता है । इस पर उर्वशी कुद्ध होकर चली जाती है और आवेश में स्कन्दवन में जहाँ स्त्रियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेशवर्जित था, प्रविष्ट हो जाती है और प्रविष्ट होते ही लता के रूप में परिणत हो जाती है । अब राजा उर्वशी को ढूँढता हुआ सारे वन में विलाप करता फिरता है और उन्मत्त स्थिति में वृक्षों, पशुओं आदि से प्रेयसी का पता पूछता है । अन्त में उसे वन में एक रक्तमणि मिलती है । वह उसे ले लेता है और जैसे ही पास में स्थित एक सुन्दर लता का आलिङ्गन करता है कि लता उर्वशी बन जाती है । इसके बाद वे दोनों राजधानी लौट आते हैं ।

एक दिन राजा गंगा-यमुना के संगम पर रानी के साथ स्नान कर वस्त्र पहन रहा था कि एक गृध्र उस मणि को मांस खण्ड समझकर उठा ले गया । राजा ने मणि को ढूँढने के लिए चारों ओर रक्षी भेजे । इतने में कञ्चुकी ने उसे वह मणि और एक बाण लाकर दिया । बाण पर "उर्वशी और पुरूरवा का पुत्र आयुष्" ये अक्षर खुदे थे । राजा चकित रह गया । इतने में ही च्यवनाश्रम से एक तापसी कुमार को लेकर आई । उसने बतलाया कि जन्म लेते ही इस कुमार को उर्वशी ने मेरे संरक्षण में दे दिया था । महर्षि च्यवन ने इसके सारे संस्कार किये हैं और इसे धनुर्विद्या सिखायी है । किन्तु आज इसने मांसखण्ड लिये हुए एक गृध्र को बाण मारा तब ऋषि ने इसे आपके पास लौटा देने का आदेश दिया है । उर्वशी आती है और इन्द्र के आदेश का स्मरण कर पुरूरवा से वियोग की कल्पना कर रोने लगती है । राजा भी राज्य का भार आयुष् को सौंपकर वन चले जाने की तैयारी करने लगता है । इतने में नारद आते हैं और इन्द्र का सन्देश देते हैं कि अभी देवासुर संग्राम होने वाला है । तुम शस्त्र त्याग मत करो । यह उर्वशी आजीवन तुम्हारी सहचरी रहेगी । आयुष् का राज्याभिषेक होता है और इसी के साथ नाटक की समाप्ति होती है ।

विक्रमोर्वशीयम् की कथा का आदि स्रोत ऋग्वेद के दशम मण्डल का १९५ वाँ सूक्त हैं । इसके बाद शतपथ ब्राह्मण, बृहद्देवता, षड्गुरूशिष्य की वेदार्थ दीपिका, मत्स्य, भागवत, विष्णु, पद्म और हरिवंश पुराण तथा कथा- सरित्सागर में उर्वशी-पुरूरवा की कथा मिलती है । ऋग्वेद में पुरूरवा और उर्वशी के बीच संवाद वार्तामात्र है जिसमें पुरूरवा उर्वशी को मनाकर साथ ले जाना चाहता है किन्तु उर्वशी उसकी प्रर्थना स्वीकार नहीं करती । अन्त में उर्वशी एक कठोर वाक्य कहती है—

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येताः ।

प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उत्वमपि मादयासे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त सब ग्रन्थों में प्राप्त कथाओं में थोड़ा बहुत अन्तर है। शतपथ, बृहद्देवता और वेदार्थ दीपिका में वर्णित यह कथानक वस्तुतः ऋग्वेद के संवाद की भूमिका के रूप में है जो केवल यह स्पष्ट करने के लिये है कि इन दोनों के बीच संवाद किस परिस्थिति में हुआ। कालिदास ने उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों को देखा था फिर भी उन्होंने मूल रूप में वेदार्थ दीपिका का आश्रय लिया है किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा से उसे नाटकीय रूप प्रदान कर दिया है। उन्होंने कथा के अरूचिपूर्ण अंश जैसे ऐल की उत्पत्ति और उर्वशी को दिये वचन आदि हटा दिये हैं तथा इन्द्र और पुरूरवा की मैत्री, उपकार और शौर्य के द्वारा उर्वशी के मन को जीतना, चित्ररथ और चित्रलेखा का प्रवेश, रानी औशीनरी का प्रसंग, उर्वशी का क्रोध से कुमारवन में प्रवेश, संगमनीय मणि,आयुष की धात्री तापसी और अन्त में नारद का प्रवेश जैसे मनोरम प्रसंग अपनी कल्पना से जोड़ दिये हैं जिससे सामान्य कथा भी लोकोत्तर सौन्दर्य और चमत्कार से भव्य बन गई है।

विक्रमोर्वशीयम् में परिस्थितियों का चुनाव बड़ा स्वाभाविक हुआ है। उससे पात्रों के चरित्र चित्रण में बड़ी सहायता मिली है। उर्वशी और पुरूरवा का प्रेम शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेम की अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह नाटक एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके अनेक अंश कवि की सूक्ष्म और व्यापक सौन्दर्य- ग्राहिणी दृष्टि के परिचायक हैं। इसकी अनेक उत्प्रेक्षाएँ, कल्पनाएँ और प्रकृति चित्रण संस्कृत-साहित्य के अमूल्य अंश है। रथवेग का एक वर्णन—

अग्रे यान्ति रथस्य रेणु- पदवीं चूर्णीभवन्तो घना—
श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम्।
चित्रारम्भ- विनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्चामरम्
यन्मध्ये समवस्थितो ध्वज पटः प्रान्ते च वेगानिलात्॥ १-५

और प्राकृतिक शोभा का एक चित्र—

अग्रेस्त्री नख- पाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागयोः
वालाशोकमुपोढराग- सुलभं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
ईषद्बद्धरजः- कणाग्र- कपिशा चूते नवावल्लरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीः स्थिता॥ २-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्याह्न का भी यह चित्र कितना स्वाभाविक है—

उष्णार्तः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी

निर्भिद्योपरिकर्णिकार- मुकुलान्याशेरते षट्पदाः।

तप्तं वारि विहाय तीर- नलिनीं कारण्डवः सेवते।

क्रीडावेश्मनि चैव पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते॥ २-२२

विरह और वियोग श्रृंगार को चित्रित करता हुआ यह श्लोक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तो परिपक्व है ही गीतिगुणों से भी परिपूर्ण है—

कुसुम- शयनं प्रत्यग्रं न चन्द्र- मरीचयो

न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः।

मनसिजरूजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुम्

रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा॥ ३-१०

सौन्दर्य वर्णन में विक्रमोर्वशीयम् अन्य दो नाटकों से किसी प्रकार कम नहीं है। मालविका के विषय में यदि वह कहता है—

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्त- दशन- शोभिमुखम्।

असमग्र- लक्ष्य- केसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम्॥ माल. २-१०

तो विक्रमोर्वशीयम् में भी—

यावत्पुनरियं सुभ्रूरूत्सुकाऽपि समुत्सुका।

सखीभिर्याति संपर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी॥ १-१४

और शाकुन्तल में—

अधरः किसलयरागः कोमल- विटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ शाकु. १-१९

शकुन्तला के रूप निर्माण के विषय में कवि कहता है—

चित्ते निवेश्य पारिकल्पित- सत्त्व- योगा

रूपोच्चयेन विधिना मनसाकृतानु।

स्त्रीरत्न- सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः। २-१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।

न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधा- तलात् ।। शाकु. १-२३

वह उर्वशी के विषय में भी कल्पना करता है—

अस्याः सर्गविधौप्रजापतिरभूच्चन्द्रोनु कान्तिप्रदः,

श्रृङ्गारैकरसः स्वयन्नु मदनः मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यास- जडः कथन्नु विषय- व्यावृत्त- कौतूहलो,

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।। विक्रमो.१-१०

और कालिदास ने इस प्रकार प्रासाद-विहारिणी, काननचारिणी और दिव्यलोक वासिनी तीन नायिकाओं की अद्भुत सृष्टि करने में सफलता प्राप्त की है ।

अभिज्ञान-शाकुन्तल

अभिज्ञान शाकुन्तल कालिदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है, ऐसा माना जाता है १७८६ ई. में विलियम जोन्स का अनुवाद प्रकाशित होने पर योरोप में कालिदास के नाम की धूम मच गयी । इसके अन्तिम अंक में भरत के अकृत्रिम हास और तोतली बोली का वर्णन पढ़कर शैजी नामक फ्रेंच विद्वान तो पुस्तक को सिर रख कर नाचने लगा । विश्व विख्यात जर्मन कवि गेटे ने कहा कि यदि स्वर्ग और पृथ्वी को एक स्थान पर देखना चाहते हो तो शाकुन्तल पढ़ो । अब विदेशों के साथ भारत में शाकुन्तल का महत्त्व और भी बढ़ गया है । विश्व की प्रायः सभी विकसित भाषाओं में उसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और बहुत से देशों में वह रंगमंच पर भी खेला गया है । कालिदास ने इस नाटक का प्रारम्भ करते हुए कहा था:—

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञान्मम् ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।।

जब तक विद्वानों को सन्तोष न हो जाय तब तक मैं प्रयोग की सफलता नहीं मानता । उच्चकोटि के शिक्षित लोगों को भी अपनी योग्यता के विषय में सन्देह ही रहता है । आज यदि कालिदास होते तो देखते कि उनका प्रयोग किस सीमा तक सफल रहा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिज्ञान शाकुन्तल में विश्वामित्र द्वारा मेनका नामक अप्सरा में उत्पन्न शकुन्तला नामक कन्या तथा पुरूवंशीय राजा दुष्यन्त की प्रणय-कँथा है। शाकुन्तला का पालन-पोषण महर्षि कण्व ने अपने आश्रम में किया था और वे उसे पुत्री मानते थे। एक दिन दुष्यन्त शिकार खेलते हुए कण्व के आश्रम में गये और वहाँ उनका और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हुआ। राजा उसे अपनी अँगूठी देकर चले आये और कह गये कि प्रतिदिन इस अँगूठी पर लिखा हुआ एक एक अक्षर गिनना। जब ये अक्षर समाप्त होंगे तब तक मेरा भेजा हुआ कोई व्यक्ति आकर तुम्हें रनिवास में ले जायगा। एक दिन शकुन्तला दुष्यन्त की याद में खोयी बैठी थी कि महर्षि दुर्वासा ने उसे पुकारा और कई बार पुकारने पर भी उसने न सुना तो शाप देकर चले गये कि जिसकी याद में खोकर तू मेरे बार बार बुलाने पर भी नहीं सुनती है वह तुझे भूल जायगा। शाकुन्तला को यह शाप भी नहीं सुनायी दिया किन्तु उसकी सहेलियों को जब यह बात मालूम हुई तो बहुत अनुनय कर उन्होंने दुर्वासा से इतना कहलवा लिया कि जब वह अँगूठी देखेगा तो उसे पुरानी बात याद आ जायेगी। कण्व इन दिनों सोमतीर्थ की यात्रा को गये हुए थे। उन्हें वापिस लौटने पर शकुन्तला के परिणय का समाचार मालूम हुआ तो वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला को पतिगृह भिजवा दिया। मार्ग में स्नान करते समय अँगूठी शची तीर्थ में गिर गई। इधर दुष्यन्त बहुत चरित्रवान् राजा था। प्रेमासक्त होकर भी उसने तब तक शकुन्तला से विवाह नहीं किया था जब तक उसे यह नहीं मालूम हो गया कि वह ब्राह्मण कन्या नहीं है। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त को पुरानी बातें विस्मृत हो गयी थीं इसलिए उसने शकुन्तला को स्वीकार नहीं किया, उलटे उसे दरबार से निकलवा दिया। तब उसकी माता मेनका उसे मरीचि के आश्रम में ले गयी। वहाँ शकुन्तला के पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सर्वदमन रखा गया।

इधर दुष्यन्त राजकार्य में व्यस्त था कि एक दिन पुलिस के लोग एक घोबी को पकड़ कर लाये जो दुष्यन्त के नाम की अँगूठी बाजार में बेच रहा था। अँगूठी देखकर राजा को पुरानी बातें याद आ गयीं और वे अपनी कृति पर बहुत पछतायें। इन दिनों वे अत्यन्त दुखी रहते थे कि उन्हें इन्द्र का निमंत्रण मिला और जब वे इन्द्र के पास से लौट रहे थे तो उन्होंने मार्ग में मरीचि के आश्रम में एक बालक को सिंह के दाँत गिनते हुए देखा। जब उन्हें पता चला कि वह शकुन्तला का पुत्र है तो वे दौड़ कर शकुन्तला के पास गये और उसके पैरों में गिर कर अपने अपराध के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा माँगी। इस प्रकार उनका मिलन हुआ और उनका पुत्र भरत नाम से प्रसिद्ध होकर चक्रवर्ती राजा बना।

अभिज्ञान शाकुन्तल की यह कथा मूल रूप में महा भारत के आदि पर्व में लगभग ३०० श्लोकों में वर्णित है। पद्म् पुराण के शकुन्तलोव्याख्यान में भी यह कथा मिलती है। पद्मपुराण ने संभवतः, स्वयं कालिदास का आश्रय लिया है। यद्यपि विण्टरनित्ज शाकुन्तल की कथा का मुख्य आधार पद्मपुराण को मानते हैं। जो भी हो कालिदास ने मूल कथा में बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके उसको नाटकोपयुक्त बनाया है। महाभारत के दुष्यन्त और शकुन्तला स्वार्थ-प्रेरित है। कण्व, आश्रम के पास ही फलफूल लेने गये थे और दो घण्टे में ही लौट आने वाले थे। ऐसी स्थिति में उनके आने की प्रतीक्षा किये बिना ही गान्धर्व विवाह केवल कामुकता की तृप्ति ही कहा जा सकता है। कालिदास के कण्व सोमतीर्थ को गये है और काफी समय तक लौटने वाले नहीं हैं। दूसरी ओर राज्य कार्यभार के कारण दुष्यन्त का रूकना संभव नहीं है। ऐसा कर कालिदास ने नाटक में स्वाभाविकता ला दी है और दुष्यन्त और शाकुन्तला के चरित्र को भी ऊँचा उठा दिया है। कालिदास ने सारी बात को स्वाभाविक और उदात्त बनाने के लिए कथानक में मुद्रिका और दुर्वासा का शाप ये दो बातें अपनी प्रतिभा से जोड़ दी हैं जिससे सारी कथा का स्वरूप ही बदल गया है। मुद्रिका का उपयोग दूसरे और पाँचवे को छोड़ कर शेष सब अंकों में हुआ है। शाप- मोचन का साधन होने से मुद्रिका का कथानक में बहुत महत्त्व है। शायद कवि को यह सूझ हनुमान की मुद्रिका से मिली होगी। इसी प्रकार शाप दुष्यन्त के चरित्र का मापदण्ड तो है ही नायक और नायिका के प्रेम को वियोग वह्नि में तपाकर उज्वल बनाने का भी साधन है।

कथानक के अतिरिक्त नाटक का सम्पूर्ण वातावरण उसे सामान्य नाटकों की श्रेणी से ऊपर उठाने में सहायक हुआ है। नाटक का प्रारम्भ ही नगर से दूर प्रकृति के खुले वातावरण में होता है जहाँ दुष्यन्त अपनी कर्तव्य निष्ठा और शालीनता से शकुन्तला का हृदय जीतता है। इस प्रसंग में कवि ने मृगया का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और भागते हुए मृग का इतना यथार्थ चित्र खींचा है जैसा अन्य दुर्लभ है—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने वद्धदृष्टिः,

पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतन- भयाद्भूयसा पूर्वकायम्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्भैरर्धावलीढैः श्रम- विवृत- मुख- भ्रंशिभिः कीर्ण- वर्त्मा,

पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।

रथ पीछे पीछे दौड़ रहा है, मृग आगे आगे भाग रहा है किन्तु गर्दन टेढ़ी करके पीछे आते रथ को देखता भी जा रहा है । बाण लगने के डर से उसने पिछला धड़ सिकोड़ कर आगे कर लिया है । मुँह में अध-चबाये कुश हैं जो राह में गिरते जा रहे हैं । और इतनी लम्बी छलाँगे मारता है कि आकाश में अधिक और पृथ्वी पर कम चलता है ।

मर्यादा का पालन इतना कि राजा आश्रम के पास आते ही मृग का पीछा करना बन्द कर देता है और आश्रम वासियों के कार्य में बाधा न हो, इसलिए रथ से उत्तर पड़ता है । शकुन्तला के प्रति मन के आकृष्ट होने पर उसे आश्चर्य होता है । उसे अपने चरित्र पर इतना विश्वास है कि वह कहता है—

निःसंशयं क्षत्र- परिग्रह- क्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि सन्देह- पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण-प्रवृत्तयः ।।

शकुन्तला प्रकृति की मानों इकलौती औरसी पुत्री है । उसका अंग अंग प्रकृति- परिवेष्टित है । तभी न कहा है—

अधरः किसलय-रागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।

उसके ओठ किसलयों की लाली जैसे और बाँहें कोमल विटपों जैसी है और अंग अंग में दमकता यौवन लता में लगे फूलों के समान है ।

वह अनाघ्रात पुष्प है, उँगलियों से न तोड़ा हुआ किसलय है, न बिंधा हुआ मोती है । वह जो पहन लेती है वही भूषण बन जाता है और क्यों न बनता ?

सरसिज मनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिक- मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।

मधुर आकृतियों के लिए वस्त्र या पहनावा ही भूषण बन जाता है । कमल सेवार से वेष्ठित होकर भी सुन्दर दिखता है—चन्द्रमा की शोभा धब्बे से भी बढ़ती है फिर वल्कल से वह और सुन्दर लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व के किसी नाटककार की नायिका इतनी सौभाग्यशालिनी नहीं है जिसके पतिगृह के लिए विदा होते समय वन देवियाँ वस्त्राभूषण प्रदान करें । वृक्ष लतायें फूल बरसायें, मृग-मृगी साड़ी का आँचल पकड़ कर खड़े हो जायें । और कण्व जैसे वीतराग द्रवित हों । शाकुन्तल का चतुर्थ अंक, जिसे पाश्चात्य समीक्षक 'ऐक्शन' कहते हैं और जिसका होना नाटक में अनिवार्य है, ऐक्शन की दृष्टि से सर्वथा शून्य है । सारे अंक में हम जहाँ के तहाँ खड़े रहते हैं, मगर कहा जाता है कि कालिदास का यही अंक सर्वोत्कृष्ट है । यह है कुशल कलाकार का चमत्कार । इस अंक के चार श्लोक श्रेष्ठतम कहे जाते हैं । सम्भवतः यह उनमें भी श्रेष्ठ है । कण्व कहते हैं—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,

नादत्ते प्रिय-मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।

आद्ये वः कुसुम- प्रसूति- समये यस्याः भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

हे तपोवन के तरूओ ! जो तुमको पहले पिलाये बिना कभी स्वयं पानी नहीं पीती थी, भूषण पहनने का शौक होने पर भी जिसने तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण कभी तुम्हारे पल्लव नहीं तोड़े, तुम में पहला फूल खिलने पर जो पुत्रजन्म जैसा उत्सव मनाती थी वह शकुन्तला आजपति के घर जा रही है । तुम सब इसे विदा करो ।

पार्थिव जगत का यह अपार्थिव पुष्प शकुन्तला जितनी अवदात, निश्छल स्नेहिल, और विश्वासमयी है, उतनी ही स्वाभिमानी भी । वह दुष्यन्त के दरबार में अपमान के आँसू पीकर अपने को सम्हालती है किन्तु जब दुष्यन्त—

स्त्रीणामशिक्षित पटुत्व ममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।

प्रागन्तरिक्ष- गमनात् स्वमपत्यजातमन्यै र्द्विजैः परभृतः परिपालयन्ति ।।

"अमानुषी स्त्रियाँ बिना पढ़े लिखे चालाक होती हैं फिर समझदार मानुषी स्त्रियों का तो कहना ही क्या । परभृत (कोयल) को देखो । उड़ने से पहले अपने बच्चे अन्य पक्षियों से पलवा लेती है ।" यह कहता है तो परभृत शब्द (दूसरों से पाली हुई शब्द श्लेष-) उसके धैर्य का बाँध तोड़ देता है क्योंकि वह स्वयं 'परभृत' थी । पिर भी एक बार दुष्यन्त को कड़ा उत्तर देकर वह शान्त हो जाती है और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे उसका जीवन ठीक सीता के समान चलता है, यहाँ तक कि दुष्यन्त के द्वारा क्षमा माँगने पर भी जैसे सीता ने कहा था

ममैव जन्मान्तर- पातकानां विपाक- विस्फूर्जथुरप्रसह्यः

वैसे ही वह भी इतना ही कहती है कि यह मेरे पूर्व कर्मों का परिणाम था जो आप इतने दयार्द्र होकर भी मुझपर निष्ठुर हो गये ।

नाटक के कथानक के बीच तत्कालीन राजधर्म, राजनीतिक परिस्थिति, न्याय व्यवस्था, पुलिस, आजीविका के साधन, कर पद्धति, आश्रम सम्मान आदि के जो चित्र आये हैं वे नाटक की श्री- वृद्धि ही करते हैं । मुख्य पात्रों के अतिरिक्त कण्व, गौमती, दुर्वासा, शारङ्गरव, शारद्वत, अनुसूया, प्रियंवदा, रानी हंसपादिका, माढव्य आदि पात्रों के चरित्र भी उच्चकोटि के हैं । दो दो आश्रमों की झांकी, प्रातः सायं और मध्याह्न के बड़े सच्चे, यथार्थ और सूक्ष्म ब्यौरेबार चित्र कालिदास ने दिये है । वे आश्रम जहां भारत के भावी सम्राट् गढ़े जाते थे, पूज्य थे ही फिर जहां उनकी माता का भी निर्माण हुआ हो उनका तो कहना ही क्या ।

नाटक की भाषा प्रसादयुक्त और रमणीय है—क्लिष्टता, खींचातानी और दूरान्वय आदि दोषों से मुक्त । प्रत्येक पात्र अपनी योग्यता के अनुरूप भाषा का उपयोग करता है । शकुन्तला की प्रकृति-सहचरी सखियाँ बोलेंगी तो प्रकृति से उपमान लेकर—'क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते' या 'को नामोष्णेदकेन नव- मल्लिकां सिञ्चति ?'याज्ञिक कण्व कहेंगे—'दिष्ट्या धूमाकुलित दृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता ।' वत्से सुशिष्य- परिदत्तेव विद्याऽशोचनीयाऽसि संवृत्ता। और पेटू विदूषक बोलेगा तो कहेगा—'यथाकस्याऽपि पिण्डखर्जूरैरूद्वेजितस्य तित्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्न- परिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना ।' शाकुन्तल में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं है, वाक्य की तो बात ही क्या ! प्रत्येक वाक्य संकेतात्मक (suggestive) है या कार्य को गति प्रदान करता है । कथावस्तु, चरित्र- चित्रण अभिनय, भावाभिव्यक्ति सभी दृष्टियों से यह नाटक कला की कसौटी पर खरा उतरा है । विदूषक के विषय में कह सकते हैं—'न चेष्टं त्यज्यते किञ्चिन्नानपेक्षित मुच्यते' । अभिज्ञान शाकुन्तल जितना नाटकीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, उतना ही काव्य कला की दृष्टि से भी । बड़ी सहजता से कालिदास ऊँची से ऊँची बात कह देते हैं । उनकी कितनी ही उक्तियाँ तो सुभाषितों के रूप में उद्घृत की जाती हैं । यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयधिक- मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ १-१८

इसी प्रकार निम्नश्लोक में कितनी बड़ी बात सरल ढंग से कह दी है कि वह जीवन का अखण्ड्य सत्य बन गयी है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुराँश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमभूतपूर्वं

भाव स्थिराणिजननान्तर- सौहदानि॥ ५-२

और पुत्री को पतिगृह भेजते समय पिता का यह उपदेश—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रिय- सखी- वृत्तिं सपत्नी- जने,

भर्तु र्विप्रकृतापिरोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ ४-१८

मृगया का यह समर्थन कितना तर्कपूर्ण है—

मेदश्छेद- कृशोदरं लघु भवत्युत्थान- योग्यं वपुः

सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले,

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः॥ २-५

और कवि की निरीक्षण शक्ति का चमत्कार इस श्लोक में प्रत्यक्ष है। रथवेग का वर्णन है—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां,

यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृत- सन्धानमिव तत्।

प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥ १९

इसी प्रकार रथ के ऊपर से नीचे उतरते समय का दृश्य। यह विहंगम चित्र केवल कालिदास ही प्रस्तुत कर सकते थे। मेघपदवी से भूलोक का दृश्य—

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी,
पर्णाभ्यन्तर- लीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
सन्धानं तनुभाग- नष्ट- सलिलव्यक्त्या व्रजन्त्यापगाः।
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं सत्पार्श्वमानीयते॥ ७-८

अभिज्ञान शाकुन्तल कवि के अन्तिम काल की रचना है। इसीलिए उसने भरत वाक्य में जन्ममरण से मुक्ति की कामना की है—ममापि च क्षपयतु नील लोहितः पुनर्भवंपरिगत् शक्तिरात्मभूः। यह उसके पूर्व नाटक की अपेक्षा जिसमें उसने 'संगमं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्' की कामना की थी, उच्चतर मनःस्थिति का परिचायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामानुक्रमणिका

ग्रन्थ में प्रयुक्त विशिष्ट व्यक्तियों और पदार्थों की वर्ण-क्रमानुसार सूची

अ

अङ्ग २०१,२५७

अङ्गद २५७

अङ्गारक ४६

अगस्त्य १५,२०,२३,३५
२१६,२१९,२३५

अग्निमित्र २३६, २३७,२४०,२५४

अग्निवर्ण २३५

अज ४१,१७,२०१,२०३

अजन्त ५०,५७

अजि १९

अतिथि २३१

अनसूया २१६

अनपोल २४५

अनितल्ली २४६

अनूप २०३,२५५,२५७

अपरान्त १९९

अपरार्कदेव ७

अफगानिस्तान ३,९९

अमरूक २४७

अमरकण्टक १४४,१५०

अमर कोष १५,५३

अमितगति ९

अमोघ वर्ष १२

अयन चलन १५

अयोध्या २२५,२२७

अर्थशास्त्र ६८,२६०

अर्जुन ३९,१२६

अर्धनारीश्वर १८

अलकनन्दा ४०

अलका १५०,१६०

अलीगढ़ ४९

अवन्ति १५४,२०३,२५७

अवेस्ता १५

असम ९९

असङ्ग ६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक ३,१०६,१२६
अश्वघोष ५,६६,२६१
अश्वमेध ६६
अश्विनी नक्षत्र १५,३२
अष्टमूर्ति ५०
अहल्या २२,३६
अहीनगु २३२

आ

आख्यानविद् ६४
आप्टे (प्रोफे.) ९
आम्रकूट १५२
अराय:शूलिक ५६
आर्यभट्ट ५९
आक्सस १५
आर्जुनायन २५७

इ

इक्ष्वाकु ४८,१८५
इन्द्र ६६,१७८
इन्द्र मह ५६
इत्सिंग ७०
इन्द्रावती १५७,९४
इन्दुमती १७०,२०२,२०५,२५५
इरावती १०,२३९,२४४

उ

उज्जयिनी १,२,५,६,८६,२९३,१५१
उत्तराफाल्गुनी ६२
उदयन ९७,१५७
उदयगिरि२६,४९,८९,१५१
उत्सव संकेत २००
उन्नाभ २३३
उरगपुर १०,२०३
उर्वशी २६२
उर्मिला २१३

ऋ

ऋतु संहार १११,११२
ऋष्यशृङ्ग २१०

ए

एरण ४९,५०,८०,८८
एलिफैण्टा ५१
एलोरा ५०,५३

औ

औशीनरी २६३,२६४

क

ककुत्स्थ १९२
कदम्ब १२६,१४४, १०८,११५
कबन्ध २१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनखल ९३,१५१
कन्याकुमारी ९८
कथासरित्सागर ११
कपिल ३१,४००,२१९
कपिशा ११९
कम्बोज २००,२५७
कलिंग ११९,२५७
कल्पवृक्ष ३२,१६१
कल्हण १६
करमरकर (प्रो.) १४६
कर्णिकार १०६,१२६
कर्पूर ११५
कर्पूर मञ्जरी २४२
कर्णपूर ११४
कनिपुत्र ५,३६६
कस्तूरी ११५
क्षत्रप ५.६
क्षीर स्वामी १५
कहोम स्तम्भ ७२,८९
क्रथ कैशिक २०१,२०७
कश्यप १९२
कामधेनु ३१,१९३
कामसूत्र २६,११४,१२७,६८,११८,
१३०,१३१,१३२
कालिदास १,११०,१११,११३,२५९
कालागुरू ११५
कार्तिकेय १७५
कार्षापण ८६
काश्यपप्रजापति ५५,५६
काण्व ४
काश्मीर २,५,९८
काव्यालङ्कार १४
क्रान्तिवृत्त १५,५९
काटयवेम २४५
कार्तवीर्य २२,२७,४२
कालियनाग ३५
कारापथ २२७
क्लासिकल एज २५६
किरात २५९
कीथ १४६,१४७
किन्नर २००
किंशुक १०७.१२६,१४५
कीलहार्न ९
कुन्हनराजा ७,१४६
कुन्द १२६
कुमार १७९
कुमारगुप्त ४८,८४,९७
कुमार गुप्त प्रथम ६,५८,७१
कुमार गुप्त द्वितीय ७,८५
कुमार देवी ८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार संभव ४५
कुमार गिरि २४५,२४६
कुमार स्वामी २४६
कुमुद १२६
कुमुद्वती २२९
कुमुदनाग २२९
कुम्भीनसी २२४
कुम्भकर्ण २१८
कुबेर ३४,१५०,१६०
कुरवक १२६
कुटज १२६
कुरूक्षेत्र १५१
कुश २२४,२२९
कुशावती २२७
कुशध्वज २१३
कुबेरनागा ६,९२,८५
कुन्तलेश्वर दौत्य २६१
कुषाण ५,६,४८
कूर्पासक ११५
कूटस्थीय ४२
कृत्तिका १७२
कृष्णमाचारियर १४६
कृष्ण ५७,१८३
केकय २०८
कैकयी २११,२१४
केतकी १२६
क्षेमधन्वा २३२
केरल १९९
केसर १६१
केशर ११५
केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया २५६
कैलास १६०
कोविदार १६०
काण्डविदु २४५
कोविदास १२६
कोसल २०८,२५७
कोसल्य २११,२३४
कोटद्वार ९३
केतकर डी.वी. ७,१२
केशवदास १
कौटिलीय अर्थशास्त्र ५७
क्रोञ्च १०९
क्रौञ्चरन्ध्र १६०
कौटिल्य २३७
कौमुदिका २३६
कौशिकी २३६
कौटिल्य २३६,२३७
कौत्स २००
क्स.एन २५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख

खर २१७

ग

गङ्गा २१,५७,१५१
गंगराज ५४
गम्भीरा १५१,१५४
गंजाम ५४
गंगा मह ५६
गणपति शास्त्री ७०
गन्धर्वगज ६५
गाहा सत्तसई ४,९,२६१
गाधि २२
गीति काव्य १०१
ग्रीष्म १०१
गुप्त राजा २५७
गुप्त युग ५१,८६
गेटे १,२६८
गोधूम १०९
गोप्रतर २२७
गोविन्दगुप्त ६
गोकर्ण ५४
गौतमवधू २२
गौतम ऋषि ३६,२१३
गौतमी पुत्र सातकर्णी ४,९
गौतमी शातकर्णी ७४
गौतमी बलश्री ७४
ग्वालियर ८६

घ

घनानन्द ११३
घटोत्कच ८४
घोसुंडी ४८

च

चन्दन ११५,१२६
चन्द्रगुप्त विक्रमा० ७२,२५५
चन्द्रकेतु २६६
चन्द्रगुप्त ५०
चन्द्रगुप्त मौर्य ३
चन्द्रगुप्त प्रथम ६,८४
चन्द्रगुप्त द्वितीय ६
चन्द्रगुप्त तृतीय ८५
चन्द्रमा ३२
चर्मण्वती १५१,२७
चट्टोपाध्याय के.सी ९
च्यवन २३,२४
चालुक्य ४८
चित्रकूट १५०,१५७,२५९,९३, २१५, २१९
चित्ररथ २०२,२६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा २६२,२६३
चिन्तामणि वि.वैद्य ९
चीनी ७४
चूतद्रुम १०६

छ

छलिक २३७,२४७
छत्तीसगढ़ ९४
छन्दोगान ६४
छान्दोग्य ३२,७१

ज

जमदग्नि ४१
जगदलपुर १५७
जनक २१३
जटायु २१७,२१८
जयन्त ६६,२१६
जयगुप्त ८५
जह्नु २८,२९
जामित्रतिथि ६०
जाह्नवी २८
जुआनगण २५९
जूनागढ़ ५०,७३,९०
ज्याग्राफी आफ एन.उज्जयिनी २५६
ज्योत्स्निका २४०
जे एच मार्शल २६१
ज्योति र्विदाभरण ८,१०,१४
जौ ११५

त

तक्ष २२६
तक्षशिला २२६
तमसा २०८
ताटका २१२,३७
ताम्रपर्णी १९,८३,२५७
ताम्बूल ११६
ताटकासुर १७१,१७६
त्रिशंकु १९२
त्रिकूट ११९
त्रिजटा २१८
त्रिशिरा २१७
तिब्बत ७५
तुलसीदास १११
तैत्तिरीय ब्राह्मण ६३
तृण विन्दु २०६

द

दक्ष सुता ३२
दक्षिणायन १५
दक्षिणावर्तनाथ १४,६९
दत्तदेवी ८४
दशार्ण ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरथ १८५,२०५
दशमुख २०५
दर्दुर ११९
दशपुर १४३,१५१
दशार्ण १५१,१५३
दामोदरसेन ६
दिलीप १८५,४४
दिवाकर सेन ८५
दिङ्नाग १४,६९,६०
दीपवंश १८३
दीनार ८६
दुर्वासा २६९
दूषण राक्षस २१७
देवगिरि ४,५,१५१
देव दारू १६७
देवानीक २३२
देवगृह ५६
देवसेना ४१

ध

धम्मपद २६०
धारिणी २३६,२३७,२४४
ध्रुव सन्धि २३४
ध्रुव सिद्धि २३९
ध्रुव ४५
ध्रुवस्वामिनी ६
धुन्धु दैत्य ३७

न

नर्मदा २७,१४४,९७,२०२
नन्दी १७७
नन्दिनी ३१,१९३,१९६
नन्दिग्राम २१५
नभस् (राजा) २३१
नल राजा २३१
नहुष ३८
नारद १७१
नागरक १२७
नागराज कुमुद ६५
नर-नारायण ४८
नासिक ४८
नरवाहनदत १२
नन्द वंश ३
नरसिंह गुप्त ८५
नारद ५४
नाट्यशास्त्र ६७,६८,२६०
नानार्थ शब्दरत्न २६०
निचुल १४,२५
निषध १५७,२३१
निर्विन्ध्या १५१,१५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीवार १०८
नीलोत्पल १२५,१२६
नीचैः गिरि ८
नेवज १५३
नोबल १४६

प

पञ्चसिद्धान्तिका १२
पंचवटी २१९
पञ्चाप्सरस्तीर्थ २१९
पद्मपुराण ११८,१८९,२७०
पद्मोत्पल १२५
परशुराम २२,२३,३६,२१३,१६०
पतञ्जलि ५५,६३,६४,२४०,२५४
पवाया ४९
पटना ८६
पर्शिया ७४
प्रभावती गुप्ता ६,८५,९२
प्रसेनजित् ४२
प्रवरपुर १६
प्रवरसेन ३,६,१६
पर्वतीय गण २००
प्रियदर्शिका २४२
प्रबोध चन्द्रोदय २४६
प्रभावती २५५
प्रबोध चन्द्र सेन गुप्त ७
पह्लव ५
पाकिस्तान १७९
पाण्ड्य १०,१९९,२५७
पारसीक ७४,७४,१९९,२५७
पारियात्र २३२
पार्वती १४०,१६७,१७४
पाटलिपुत्र ३,५,९३
प्रावृट् १०१,१०२
प्राग्ज्योतिष २००
प्रिय दर्शन गन्धर्व २०२
प्रियङ्गु ११५
पुरूरवा ४७,९२,२४३,२६२
पुत्र (राजा) २३४
पुष्य (राजा) २३४
पुष्यमित्र २४०,२५५,२५६
पुण्डरीक २३२
पुलिन्द २२८
पुष्कलावती २२६
प्रियदर्शिका २४२
पुरूगुप्त ८५,८९
पुराण साहित्य ६४
पुराण (महा.) ६४
पुनर्वसु १५
पृथु २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्यमित्र शुङ्ग ३४,९७

पौलिस ६१

ब

बंगाल २

बलख ७४

वसन्त १००

बहुश्रुत (राजा) २२४

बंग २५७

बंक्षु २५७

ब्रह्मावर्त १५१,१५५

ब्रह्मिष्ठ २३४

ब्रह्मा ३३

ब्रह्माण्डपुराण २५

बुधगुप्त ८५

बलराम २९

बिन्दुसार ३

विलोचिस्तान ३

वृहद्रथ ३

वृहत्कथा मञ्जरी ९,१२

वृहद्देवता ११८,२६५

वाल्मीकि १२,११८,१०७,११०,१११ १२२

विद्धशालभञ्जिका २४२

बैम्विक २४४

बाभ्रव्य पांचाल २६

बैस नगर ४८

भ

भगीरथ २८,२९,३३,२१,१९२,२२१

भरत ६७,२११,२१५

भविष्यपुराण६५

भर्तृहरि ४५

भास ५

भाण्डारकर ७

भागीरथी ४०,२२१

भानुगुप्त ८५

भागवत ५६,१८९

भीटागांव ११

भीतर गांव ४९

भृगु २३,४१,४२

भीतरी शिलालेख ७२

भोज २०१,२५०

म

मंगोलिया ७४

मंचूरिया ७४

मगध २११

मगधेश्वर २०३

मजूमदार डी.सी. २५६,२५९

मत्वा-न-लिन २५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतंग ऋषि २०७
मदुरा १०
मधुरा २२४
मथुरा ४८
मत्स्य पुराण ११८
मदनिका २४०
मन्दाकिनी ४०,२१९
मन्दार १६१
मन्दाक्रान्ता १५०
मन्दसौर १६,१४८
मनुस्मृति ४,५,२०,३१,३३,६७,१८६,
१९२
मयूर कवि ११०
मलय पर्वत १९९,२१९,२५७
मल्लिनाथ १६,२९,६८,६९,१२६,
१५०,२४६
मल्लाम्बिका २४५
मरीचि २०७
मल्हार ४८
मल्लिका १०६,१३६
महावंश १५३
महासेन १८३
महाविष्णु ५०
महाकोसल ९४
महावराह २६
महाभाष्य ४
महाभारत १५,२२,२३,२६,३०,३३,
४१,६३,११०
महाशिवपुराण २६
महेन्द्र पर्वत १९४,२५७
महेन्द्र ९२
महरौली ८५
महेन्द्रादित्य ११
माइणकर जी.टी. १७
मातलि २१९
माधव सेन २३७,४०
माण्डवी २१३
मारीच २१२
मातृगुप्त १३,१६,८५
मानस सरोवर २६०
माधवी १५१
मालव संवत् ९
मालवा ९४
मालव प्रदेश ११,२५७
मालक्षेत्र १५२,२६०
मालती १२६
मालविका १८,२३६
मालविकाग्नि ४,८,२३६
मिथिला २१२
मिराशी म.म. २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिहिरकुल १६
मुरला १९८
मुर्शिदाबाद २
मुद्रा राक्षस १०
मृगराज ११
मेक्डानेल १४,१४८
मेघ सन्देश १५०
मेघनाद २१८
मेघदूत ९८,१४,
मेना २५
मेकलश्रृंखला ९३
मैक्समूलर १६,१६७
मौर्यगण ५६,४८
मौर्ययुग ५५

य

यज्ञसेन २५६
यमुना ५३
यक्षपुरी १६०
यव १०९
यवन १९९
यशोधर्मन् १६
याज्ञवल्क्य ५
यास्क १३
युधाजित २२६
यू.ची.७४

र

रघु १२,१९६
रन्तिदेव २७
रघुवंश ९८
राजपूताना १६
राजतरंगिणी १६
राम १५०,२१२,२३२
रामायण १८,१९,२१,३३,३४,३५, २२४
रामगिरि ३,१४,१५१,१५५
रामटेक २,९४
रामगुप्त ६
रामेश्वरम् ९३
राष्ट्रकूट ४८
राधा कुमुद मुखर्जी २५६
रावण २१०
रूद्रसेन ८,८५
रेणुका ४१
रेवती २९
रोमक ६१
रोहिणी १६,३२,४७

ल

लंका १८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु जातक ४४
लक्ष्मी स्वयंवर ६७
ललित विस्तर १५
लव २२४
लवणासुर २२४
लाक्षा रस ११५
लिच्छिवि ८४
लोध्र १४५
लोकालोकपर्वत ३२
लौहित्य २००

व

वंक्षु १५
वकुलावलिका २३६
वरतन्तु २००
वर्णाश्रम व्यवस्था ८७
वज्रणाभ २३३
वराह ३८
वराहमिहिर १२,१३,१५,६०,६२
वलराम ५७
वरूण ३१
वलभी १६
वत्सभट्टि ७५,१४९
वसिष्ठ १९३,२०४
वसुमित्र १९३,२०४
वसन्तराज ४,२४०
वसन्त राजीय २५३
वसुमती २४४
वसुलक्ष्मी २३९
वसु बन्धु १४,६८
वाकाटक ५,४८,५८
वाघ गुफा ५०
वात्स्यायन ११४
वामन १४
वामन भट्ट वाण ४६
वालि २१८
वाण १०
वासवदत्ता ९५
वाराणसी ८६
वायसविद्या ६४
वायुपुराण ६५
वासुदेव ५७
विक्रम ९२
वाह्लीक १५
वाल्टेक रूवे १४६
वाल्मीकि १२,११०,११,११८,१२२,
१८३
विदिशा २,३,८,१३,१५,२२४,२३६,
२५५,१५१
विशाला १५१,१५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदर्भ ३,९४,२००,२०२
विन्ध्य ३,३५,१०७,१४४,२२७, ८७
विद्यापति २,११३
विक्रमादित्य ७,९,१०,१४,७३
विण्टरनित्ज़ १४६
विराध २१६
विन्सेण्ट स्मिथ १०,१६
विभीषण २१८
विश्वजित यज्ञ २००
विश्वसह २३३
विहारी १११
विशाख ५३,५७
विश्वामित्र २४,२६९
विवस्वान् १९२
विष्णु पुराण २४,१८९,५०
वीर नारायण चरित २४६
विष्णुगुप्त ८५
विष्णुमाया ६४
विष्णु २२,२३
विक्रमोर्वशीय ४७
वेत्रवती १५१
वेमभूपाल २४६
वेदाङ्ग ज्योतिष ६३
वैष्णव धर्म ८७
व्युषिताश्व २३३

श

शकारि विक्रमादित्य ८
शक ४,७४
शची ४३,६५
शंखण २३३
शतपथ ब्राह्मण १४८,२६२
शाद् १०१
शत्रुघ्न २१
शरभंग २१९
शरावती २२७
शब्दार्णव कोष ११
शम्बूक २२४
शर्मिष्ठा २३७
शारदा रंजनराय ९
शातकर्णि २१९
शाल्मलि १४५
शीलादित्य १६
श्रीनाथ २४६
शिल (राजा) २३३
शिव ५७,७१
श्रीगुप्त ८४
श्रीनगर ९३
श्री हर्ष १
शुंग साम्राज्य ४
शूलिक ५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुंगकाल ७३,२५
शुंग २५५
श्रुत कीर्ति २१३
शूरसेन २५७
श्रृंगवेरपुर २१९
शूर सेन २०३
शूर्पणखा २१७
शेववणेकर (प्रो.) ९
शैजी (फैंच) २६८

ष

षड् गुरू शिष्य २६५

स

सगर १९३,२८,३१,३९
सम्पाति २१८
सरयू २०८
सरकार डी.सी
सहकार १०७,१२५
सतपुड़ा १४४
सर्ज १२६,१४५
सप्तपर्ण १२६
सप्तच्छद १४५
सरस्वती १५१,१५५
सप्तर्षि १७७
सत्यवती २३,४१
समुद्रगुप्त ५०,५२,८१,८८
संगीताध्याय ६७
सनत्कुमार ७१
समराङ्गणसूत्रधार ७१
सप्तशती सार २४७
सह्य १९९
सारस १०९
सातवाहन ४,४८
सावरमती १६
साहित्य चिन्तामणि २४७
सीता १५०,२१३
सिन्धु ४,२००,१५१,१५३
सिद्धार्थ ११
सिन्धु प्रदेश ७४,२२६,७४
सुभाषितरत्न सन्दोह ९
सिंहल ९९
सिल्वाँ लेवी १६
सुशील कुमार दे १४६
सुतनुका १४७
सुदक्षिणा १९३,१९६
सुमित्रा २१०
सुकेतु ३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधर्मा २३१
सुदर्शन २११,२३४
सुनन्दा २००
सुषेण २०३
सुग्रीव २१८
सुबाहु २१२,२२४
सुब्रह्मण्य १७५
सुह्म १९८,२५७
सूरमाम्वा २४६
सूर्य नारायण व्यास २
सेतुबन्ध १६
सेनापति (कवि) १११,११२
सोमतीर्थ २७०
सौमिल्ल ५,७०,२३६
सौन्दरनन्द ५
स्कन्द १५१,१७५,४१,७१
स्कन्दगुप्त १६,५५,७३,८१,९० ८९,
९२,९६
स्वप्नवासवदत्ता ५७
स्टेनवर्ग एच एच १४६
स्ट्रेंजलर १४८

ह

हरिणी (देवांगना) २०६
हरिवंश ३१,१७३
हरिचन्द शास्त्री १४६,१४६
हनुमान २२७
हर्षचरित १०
हरद्वार ९३
हलायुध १९
हंस पदिका ४४
हिमालय १७३,२५७
हिरण्यनाभ २३३
हिलेब्राण्ड्ट १४८
हूण १५,६५,९०,२००,२५९
हेमन्त १०१
हेमांगद २०३
ह्वेन्त्सांग १६
हन्-शु २६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकारादिक्रम से उद्धृत

श्लोकानुक्रमणिका

अ

अगस्त्य	(रघु.)	१२
अथ नयन	(रघु. २-७५)	१९
अग्निर्भूत्वा	(रामा.)	२०
अमुं	(रामा.)	२०
अगस्त्या	(रघु. ४-४४)	२०, ३५
अगस्त्यो	(ब्र. पु.)	२०
अथ	(वा. का. प्र. ४३, ४४)	२२
असूत	(कुमार. १-२०)	२५
अथावमानेन	(कुमार-१-२१)	२५
अरुद्रभागं	(कुमार. ४-९)	२५
अनादृता	(कुमार. ४-२५)	२५
अंसन्यस्ते	(मेघ. १-५९)	३०
अतोयमश्वः	(रघु. २-५०)	३१
अमंस्त	(रघु. ३-२७)	३३
अवकाशं	रघु. ४-५८)	३३
अष्टानां	(मनु.)	३४
अथ दृष्ट्वा	(वा. रा. बाल. ४९-२७)	३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथोपयन्त्रा	(रघु. ७-१)	४१, ५९
अयं तस्याः	(म. भा. वन. २२९-४५)	४१
अज वृषभ	(रघु.)	४३
अथौषधीना	(कुमार. ७-१)	४६
अथरोधसि	(रघु. ८-३३)	५४
अनुगङ्ग	(वायु पु. ९९-३८३)	६५
अपि च	(भि. शिला. ४)	७३
अनघ्राणां	(रघु. ४-३५)	७९
अदेयमासीद्	(रघु. ३-१६)	७९
अजयदेक	(रघु. ९-१०)	८१
अवनिमेक	(रघु. ९-११)	८१
अनेनपर्या	(रघु. ६-२८)	८१
अस्मिन्	(रघु. ६-२९)	८२
असौ शरण्यः	(रघु. ६-२१)	८२
असौ कुमार	(रघु. ६-७८)	९१
अभिन्न	(ऋतु. २-५)	१०३
अन्या	(ऋतु. ४-१४)	१०४
अगस्त्य	(वा. रा.)	१०९
अवश्याय	(वा. रा.)	१०९
अभूच्छ्वसन	(रामा. सु. का. ५४-८)	११८
अशोक	(रामा.कि. का. १-२९)	१२४
अपगत	(ऋतु. ५-११)	१३३
अगुरुसुर	(ऋतु. ५-१२)	१३५
अधर	(ऋतु. ५-१४)	१३६
अप्यन्यस्मिन्	(कुमार. १-३४)	१५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गुलीभिरिव	(कुमार. ८-६३)	१७३
अथोपपन्नं		१७८
अनाकृष्टस्य	(रघु. १-२३)	१८८
अप्रधृष्यश्च	(रामा. अयो. १-२९)	१८८
अहमेव	(रघु. ८-८)	२०५
अर्चितातस्य	(रघु. १०-५५)	२११
अवैमिचै	(रघु. १४-४)	२३१
अचिराधि	(अ. तंत्र १-८)	२३७
अथ स	(रघु. ३-७०)	२४४
अद्रेः श्रृङ्गं	(मेघ. १-१४)	२५९
अग्रे यान्ति	(विक्रमो. १-५)	२६६
अग्रे स्त्री	(विक्रमो.२-७)	२६६
अधरः	(शाकु. १-१९)	२६७, २७१
अस्याः	(विक्रमो. १-९०)	२६८

आ

आशास्यमीति	(मालवि.)	८
आसक्त	(कुमार. ६-८)	२६
आयोधने	(रघु. ६-४२)	२८
आसीत्	(रघु. १-७५)	३२
आभाति	(विक्रमो. ५-४)	४७
आनर्तयत्	(ऋतु. ३-१०)	७७
आकार	(रघु. १-१५)	७८
आपादपद्म	(रघु. ४-३७)	७९
आसञ्जयामास	(रघु. ६-८३)	८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमूल भग्न		९०
आकुमार	(रघु. ४-२०)	९१
आकम्पयन्	(ऋतु. ६-२२)	१०७
आम्रीवञ्जुल		१०७
आपक्वशालि	(ऋतु. ३-१)	१२१
आकम्पयन्	(ऋतु. ६-२४)	१२५
आलिप्यते	(ऋतु. ६-१२)	
आवर्जिता	(कुमार. ३-५४)	१३७, १६९
आलोके	(मेघ. २-२२)	१६४
आसीद्	(रघु. ७-२२)	१७०
आमेखलं	(कुमार. १-२५)	१७३
आकार	(रघु. १-१५)	१८८
आत्मा	(रघु. ४-३५)	१९८
आमुक्ता	(रघु. १७-२५)	२३१
आशास्यमीति		२५३
आभरणस्या	(विक्रमो. २-३)	२६३
आपरितोषाद्	(शाकु.)	२६८

इ

इन्द्रानिल	(मनु. ७-४५)	२०
इह वर्ष	(वा. रामा. वा. ४९-३०)	३७
इति शिरसि	(रघु. ७-७०)	८१
इक्षुच्छाया	(रघु. ४-२०)	८४, १९८
इत्थमाराध्य		१७७
इत्यध्वनः	(रघु. १६-३५)	२२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमां स्वसारं	(रघु. १६-८५)	२३०

उ

उपरागान्ते		१७
उमापतिः	(वा. रा. वा. का.)	२१
उपातिष्ठन्त	(म.मा. शान्ति. २९-१२२)	२७
उद्धृताऽसि		३९
उदायुधा	(भाग. ९-८-९)	४०
उपयुक्त		४२
उपवीणयितुं	(रघु. ८-८३)	७९
उपेयुषुः	(रघु. ६-७३)	८१
उच्छ्वास	(ऋतु. ६-९)	१२५, १४०
उपचितवपुः	(मेघ.)	१३४
उद्बन्ध	(रघु. १६-६७)	१३४
उद्गतां रोम	(ऋतु. २-२५)	१३८
उत्संगे वा	(मेघ. २-२३)	१६४
उपात्तवर्णे	(कुमार. ५-५६)	१७०
उपप्लवाय	(कुमार.)	१७६
उद्योतिताम्बर		१८३
उत्तरोत्तर	(रामा. अयो. १-१७)	१८८
उच्यमानोऽपि	(रामा-अयो. १-१०)	१८८
उभावुभाभ्यां	(रघु. १४-२)	२२०
उत्तिष्ठ	(रघु. १४-६)	२२०
उपकूलं	(रघु. १५-२८)	२२४
उपेत्य	(रघु. १५-९२)	२२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उष्णार्त:	(विक्रमो-२-२२)	२६७

ए

एवमुक्तो	(रामा. बाल. ६०-१८)	३८
एवमुक्त:	(म. भा. वन. २२९-४९)	४२
एतत् कृत्वा	(मेघ. २-५२)	१६६
एवंवादिनि		१७४
एकस्त्व	(कुमार)	१८२
एकातपत्रं	(रघु. २-४७)	१९५
एको दाशरथि:	(रघु. १२-४५)	२१७
एवं तयोक्ते	(रघु. ६-२५)	२५६

ऐ

ऐन्द्रि: किलनखै	(रघु. १२-२२)	२१६

क

काप्याभिख्या	(रघु. १-४६)	४४
कामंनृपा:	(रघु. ६-२२)	८२
कुलेन	रघु. ६-७९)	८२
क्रिया	(रघु. ६-२३)	८९
काशैर्मही	(ऋतु. ३-२)	१०३
कर्णेषु योग्यं	(ऋतु. ६-५)	१०६
काचिद्	(ऋतु. ४-१)	१३१
कुसुम जन्म	(रघु. ९-२६)	१४२
क्वचित्	(ऋतु. २-२)	१४३
कृत्वा तासा	(मेघ. १-४९)	१५६
कपोल कण्डू:	(कुमार. १९)	१६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुम जन्मततो	(रघु. ९-२६)	२०८
क्रतुषुतेन	(वरघु. ९-२०)	२०८
कलत्रवानहं	(रघु. १२-३४)	२१७
कामं जीविति	(रघु. १२-७५)	२१८
कृताञ्जलि	(रघु. १४- १६)	२२०
कल्याण	(रघु. १४-६२)	२२२
कृतदण्ड	(रघु. १५-५३)	२२५
क्रीडापत्त्रि	(रघु. १७-२०)	२३१
कामं नृपाः		२५६
कुसुम शयनं	(विक्रमो. ३-९०)	२६७

ग

गां गतस्य	(रघु. ११-८५)	२३
गुरोर्मियक्षोः	(रघु. १३-३)	३९
गर्भं दधत्यर्क	(रघु. १३-४)	४९
गौरीवक्र	(मेघ. १-५०)	५४
ग्रहैस्ततः	(रघु. ३-१३)	५९
गुणवत्	(रघु. ८-११)	७८
गृहीत	(रघु. ४-४३)	७९
ग्रामेष्वा	(रघु. १-४४)	८३
गात्राणि	(कामसूत्र २-१०-६)	१२९
गृहीतताम्बूल	(ऋतु. ५-५)	१३०
गुर्वर्थमर्थी	(रघु. ५-२४)	२००
गुणेन कान्त्या	(रघु. ६-७९)	२०३
गृहिणी	(रघु. ८-६७)	२०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीवाभङ्गाभि	(शाकु.)	२७०

घ

घूर्णमान नयनं	(कुमार. ८-८०)	१७०
घनावनान्ता:	(रामा. किष्कि. २१-३)	१०८

च

चूताङ्कुरा	(कुमार. ३-३२)	१४२
चित्तेनिवेश्य	(शाकु. २-१९)	२६७

छ

छाया हि	(रघु. १४-४०)	१५

ज

ज्याबन्धनिष्यन्द	(रघु. ६-४०)	२८
जह्नोः कन्यां	(मेघ. १-५०)	३०
ज्वलति	(ऋतु. १-२५)	१०२
जनस्य साकेत	(रघु. ५-३१)	२०१
जनपदे न	(रघु. ९-४)	२०८
जघान समरे	(रघु. १७-६)	२३०
ज्योतिलेखा	(मेघ. १-४४)	२६१

त

ततो बेला	(रघु. ४-४४)	१३
तां मानसीं	(कुमार. १-१८)	२५
तेभ्यः शुभास्पदं	(कुमार.१-२०)	२५
ततार विद्याः	(रघु. ३-२)	३३
तथेत्युपस्पृश्य	(रघु. ५-५८)	३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौ सुकेतुतनया	(रघु. ११-१४)	३७
तं प्रीति	(रघु. १७-३५)	४५
तमशक्य	(रघु. १२-१७)	५३
तिष्ठत्येक:	(विक्रमो. २-१)	५९
तावत्पताका	(कुमार. ७-६३)	७६
तत्रहूणावरोधानां	(रघु. ४-६८)	७६
तस्माद् गच्छे	(मेघ. ९-५०)	८०
तृषा महत्या	(ऋतु.)	११०
तारागण	(ऋतु. ३-७)	१२१
तडित्प्रभा	(ऋतु. २-१७)	१४३
तेषां दिक्षु	(मेघ. १-२४)	१५५ २५४
तत्रस्कन्दं	(मेघ. १-४३)	१५६
तामुत्तीर्य	(मेघ १-४७)	१५६
तत्रागारं	(मेघ. २-१२)	१६२
तस्यास्तीरे	(मेघ.१-१४)	१६२
तन्मध्ये च	(मेघ. २-१६)	१६२
तन्वीश्यामा	(मेघ. २-१९)	१६२
तां जानीय:	(मेघ. २-२०)	१६३
त्वामालिख्य	(मेघ. २-४२)	१६६
त्वामामनन्ति	(कुमार. २-१३)	१६८
तदिच्छामि		१७७
तत कुमार		१७७
ततः कुमारः		१७८
तमङ्कमारोप्य		१७९
तामन्तिकन्यस्त	(रघु. २-२४)	१९४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः समानीय	(रघु. २-६४)	१९५
ततोऽयमश्वः	(रघु. ३०-५०)	१९७
ताम्रपर्णी	(रघु. ४-५०)	१९९
त्यजत	(रघु. ९-४७)	२०८
ते बहुज्ञस्य	(रघु. १०-५६)	२११
तस्मिन्नास्थ	(रघु. १२-२३)	२१६
तस्मिन्	(रघु. १२-४९)	२१७
तपस्यनधि	(रघु. १५-५१)	२२५
ततः परान्	विक्रमो. ५-१५	२४१
तत्र जन्यं	(रघु. ४-७७)	२५८
तातशुद्धा	(रघु. १५-७२)	२२६
तामभ्यगच्छद्	(रघु. १४-७०)	२२३

द

द्वौ रिपू	(रघु. १२-७४)	२३
द्रुमाः सपुष्पाः	(ऋतु. ६-२)	१०६
दन्तच्छदैः	(ऋतु. ४-१२)	१३१
दिष्टान्त	(रघु. ९-७९)	२१०
दधतो	(रघु. १२-८)	२१५
दीर्घाक्षं	(मालविका. २-३१)	२४२

ध

धन्वन्तरि	(ज्योति)	८
धृतिरस्त	(रक्षु. ८-६६१)	२०६
धृतातपत्रः	(विक्रमो.)	२४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमादग्ने:	(रघु. १७-३४)	४५

न

निश्वास	(रघु. १६-४०)	१२
नभश्चरै	(रघु. १८-६)	१५
नरपति	(रघु. २-७५)	२०
नरेन्द्र	(रघु. ३-३३)	३२
नक्षत्र तारा	(रघु. ६-२२)	५९
नवायव:	(ऋतु. ५-७)	७७
न नन्दनं	(ऋतु. ५-३)	७७
नितान्त	(ऋतु. २-२)	१०३
नवप्रवालो	(ऋतु. ४-१)	१०४
निर्माल्यदाम	(ऋतु. ४-१५)	१०४
न चन्दनं	(ऋतु. ५-३)	१०५
निरूद्धवातायन	(ऋतु.५-२)	१०५
नितम्बबिम्बै:	(ऋतु. १-४)	१२७
नखपदचित	(ऋतु. ५-१५)	१३२
नूनं तस्या:	(मेघ.२-२१)	१६४
नन्वात्मानं	(मेघ. २-४६)	१६६
नोर्ध्वंन		१८०
न मृगया	(रघु. ९-७)	२०८
न कृपणा	(रघु. ९-८)	२०८
नृपते:	(रघु. ९-७४)	२१०
निर्बन्धपृष्ट:	(रघु. १४-३२)	२२१
निर्वर्त्यैवं	(रघु. १५-१०३)	२२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त कठिनाम्	(विक्रमो. २-३)	२६३
निःसंशयं	(शाकु.)	२७९

प

प्रत्यपद्यत	(रघु. ११-३४)	२२, ३६
पुपोष वृद्धिं	(रघु. ३-२२)	१५
प्रससादो दयान्	(रघु. ४-२१)	३३, ५४
पर्याय पीतस्य	(रघु. ५-१६)	४४
पितुः प्रयत्नात्	(रघु. ३-२२)	४४
पृथ्वीं	(रघु. १०-१)	६५
पर्याप्त	(कुमार. ३-३९)	७५
प्रफुल्ल	(ऋतु. ४-९)	७५
प्रासाद	(कुमार. ७-५६)	७६
परस्परं	(विक्रमो. ५-२५)	७८
प्रातः कुमारा	(रघु. ५-३९)	९१
प्रचुरगुड	(ऋतु. ५-१६)	१०५
पुष्पासना	(ऋतु. ४-११)	१३०
प्रियङ्गुकालीयक	(ऋतु. ६-१२)	१३०
पीनस्तनोरः	(ऋतु. ४-७)	१३३
प्रवातनीलो	(कुमार. १-४७)	१३५
पुँस्कोकिलो	(ऋतु. ६-२१)	१४२
पयोधरैः	(ऋतु. ५-९)	१४९
पाण्डुच्छायो	(मेघ. १-२३)	१५३
प्राप्यावन्तीन्	(मेघ. १-३०)	१५५
पुष्पं प्रवालोपहितम्	(कुमार. १-४४)	१६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवालनीलोत्पल	(कुमार. १-४६)	१६८
पर्याप्त पुष्प	(कुमार. ३-३९)	१६८
परस्परेण	(रघु. ७-१४)	२०३
प्रथमपरिगता	(रघु. ७-७१)	२०४
परलोक जुषां	(रघु. ८-२५)	२०७
पित्रादत्तम्	(रघु. १२.७)	२१५
पर्णशाला	(रघु. १२-४०)	२१७
पौरेषुसोऽहं	(रघु. १४-३८)	२२१
पुरोहित पुरोगा:	(रघु. १७-१३)	२३०
पुराणमित्येव	(माल वि.१-२)	२२६
पौरस्त्यानेव	(रघु. ४-३४)	२५८
प्रियवचन कृतोमि	(वि० २-२१)	२६४
पातुं न प्रथमं	(शाकु० ४५९)	२७२

ब

बभौ हर	(रघु. ४-३२)	२१
ब्रह्मावर्तं	(मेघ. १-४८)	३०
ब्राह्मेमुहूर्ते	(रघु. ५-३६)	७९,९१,२०१
बहुतर इव	(ऋतु. १-२६)	१०२

भ

भ्रूभङ्गमात्रेण	(रघु. १३-३)	३८
भूयिष्ठमासीद्	(रघु. ६-४)	७१
भज्यमान मतिमात्र	(रघु. ११-४६)	२१३

म

मैत्रेमुहूर्ते	(कुमार. ७-६)	६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनिना भरतेन	(विक्रमो. २-१७)	६७
मधुद्विरेफः	(कुमार. ३-३६)	१४२, १६८
मखांशभाजां	(रघु. ३-४४)	१९६
मरणं प्रकृतिः	(रघु. ८-८७)	२०७
मौर्य सचिवं	(माल वि. १-७)	२४१
मेदश्छेद	(शाकु. २-५)	२७४

य

या सृष्टिः	(शाकु. १-१)	१८
यं सर्वशैलाः	(कुमार. १-२)	२४
यज्ञाङ्गयोनित्व	(कुमार. १-१७)	२४
यस्मिन् महीं	(रघु. ६-७५)	८२, २०३
यो हेमकुम्भ	(रघु. २-३६)	९१
यथा प्रह्लादनाच्च	(रघु. ४-१२)	१९८
यदुवाच न तत्	(रघु. १७-४२)	२३१
यस्यागमः	(विक्रमो. १-१७)	२३७
यावत्पुनरियं	(मालविका. १-१४)	२६७
यदालोके सूक्ष्मम्	(शाकु. २-१९)	२७४

र

राजसत्त्व मवधूप	(रघु. ११-९०)	२३
रामास्त्रोत्सारितो	(रघु. ४-५३)	३६
रसातला दादिभवेन	(रघु. १३-८)	३९
रक्षाहेतोर्नव	(मेघ. १-४३)	७१
रेखामात्रमपि	(रघु. १-१७)	८२
रवेर्मूयूखै		११०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेवां द्रक्ष्यस्युपल	(मेघ. १-१९)	१५३
रोमोद्गमः	(रघु. ७-७७)	१७०
रघूणामन्वयं	(रघु. १)	१८४
रघुर्भशं	(रघु. ३-६१)	१९७
राममन्वयं	(रघु. ११-२०)	२१२
रक्ताशोकरुचा	(मालविका.)	२३८
रविमाविशते	(विक्रमो. ३-७)	२६४
रम्याणि वीक्ष्य	(शाकु. ५-२)	

व

वामनाश्रमपदं	(रघु. ११-२२)	२२
व्यालम्बेथा	(मेघा. १-४५)	२७, १५६
वैवस्वतो	(रघु. १-११)	३१
वभौहर	(रघु. ४-३२)	३३
विन्ध्यस्य	(रघु. ६-६१)	३५
वैवाहिकीं	(कुमार. ६-९३)	४६
विद्युद्वन्तं	(मेघ. २-१)	७६
विलीन पद्म	(ऋतु. ४-२)	७६
वापी जलानां	(ऋतु. ६-३)	१०६
विपाण्डुरं		११२, १४५
विचखान	(रघु. ४-३६)	१९९
विललाप स	(रघु. ८-४३)	२०६
वाच्यस्त्वया	(रघु. १४-६१)	२२२
बभूव रामः	(रघु. १४-८४)	२२३
वृत्तं रामस्य	(रघु. १५-६४)	२२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाङ्मनः	(रघु. १५-८१)	२२६
वसिष्ठस्य	(रघु. १७-३८)	२३१
विपुलं नितम्ब	(मालविका. ३-७)	२३८, २४३

स

स्वर्गलोकगतं	(रघु. ६०-१६)	३८
स्थानादस्मात्	(मोघ. १-१४)	६८, २५९
स्तनेषु हाराः	(ऋतु. ६-६)	१०६
स्थिताःक्षणं	(कुमार ५-२४)	१६९,१७४
स्थितः स्थितामु	(रघु. २-६)	१९४
स्नात्वा यथा	(रघु. १६-७३)	२२९
स्मयमान	(माल. २-१०)	२६७
स्त्रीणामशिक्षित	(शाकु.)	२७२
स जहार तयोर्मध्ये	(रघु. १२-२९)	१५
सुर सरिदिव	(रघु. २-७५)	१९
सुरेन्द्रमात्रासित	(रघु. ३-११)	३४
सामन्त मौलिभणि	(रघु. ५-२८)	३४
स पूर्वजानां	(रघु. १३-३४)	४०
सपदि मुकुलिता	(कुमार. ३-७६)	५५
सुखश्रवामङ्गल	(रघु. ३-२०१)	९२
सभद्रमुस्तं	(ऋतु. १-१७)	१०२
सफेन लोलायत	(ऋतु. १-२१)	१०२
सम्पन्नशालि	(ऋतु. ३-१६)	१०३
सुवासितं	(ऋतु. १-३)	१२७
सबल्लकी	(ऋतु. १-८)	१२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वसुरतान्तरक्षमा:	(रघु. १९-४२)	१४१
सद्य: सीरोत्कषण	(मेघ. १-१६)	१५२
सुरारि लक्ष्मी		१८०
स हि सर्वस्य	(रघु. ४-८)	१९८
सगुप्तमूल	(रघु. ४-२६)	१९८
संमोहनं	(रघु. ५-५७)	२०२
सोऽहं दाशरथि:	(रघु. १०-४४)	२११
स जहार	(रघु. १२-३०)	२१६
सहत्वा	(रघु. १२-५८)	२१८
स दष्ट नीवार	(रघु. १४-२८)	२२१
साहं तप:	(रघु. १४-६६)	२२२
सा मुक्त कण्ठं	(रघु. १४-६८)	२२३
स गत्वा	(रघु. १५-९५)	२२७
सा धातुभेदारूण	(रघु. १६-३३)	२२८
स्रस्तांसावति	(शाकु. १-२६)	२४२
सरसिजमनु	(शाकु. ९-१८)	२७१, २७४

श

श्यामालता:	(ऋतु. ३-१८)	१४४
शरदि कुसुम	(ऋतु.)	१०४
शापान्तो मे	(मेघ. २-४७)	१५९, १६६
शशिना सह	(रघु. ४-४३)	१६९
शापोऽप्यदृष्ट	(रघु. ७-८०)	२१०
शिष्टा क्रिया	(मालवि. १-१६)	२३६
शरकाण्डपाण्डु	(मालविका. ३-८)	२३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुश्रूषस्व	(शाकु. ४१८)	२७४
शैलानामव	(शाकु. ७-८)	२७५

ह

हविषे दीर्घसत्रस्य	(रघु. १-८०)	३१
हरेः कुमारोऽपि	(रघु. ३-५५)	९१
हंसैर्जिता	(ऋतु. ३-१७)	१४७
हित्वा हालामभि	(मेघ. १-४९)	२९

क्ष

क्षयोनाम	(रघु. ३-१२४)	३२
क्षुण्णं रथैर्वाजि		१८०
क्षतात् किल	(रघु. २-५३)	१९५
क्षत्रियान्त	(रघु. ११-७५)	२१४

त्र

त्रस्तेन ताक्ष्यात्	(रघु. ६-४९)	३५

113484
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Acces on	RE	27.11.99
Class on	RE	27.11.99
Cat on		
Tag etc		5.11.99
Filing		28.11.99
E.A.R		1/12/99
Any other	RE	27.11.99
Checked		29.11.99

Recommended By----

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20 जुलाई 1914 को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में जनमे डा॰ प्रभुदयालु अग्निहोत्री की गणना देश के वरिष्ठतम और मूर्धन्य विद्वानों में की जाती है। वैदिक वाङ्मय, संस्कृतसाहित्य, नव्यव्याकरण, भाषाशास्त्र, भारतीय दर्शन, प्राचीन इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व आदि विषयों पर उनका असाधारण अधिकार है। पातञ्जल महाभाष्य पर आधारित उनकी कृति 'पतञ्जलि कालीन भारतवर्ष' अपने विषय की एकमात्र विशद् और गम्भीर रचना है। इसी प्रकार प्राचीन और आधुनिक मनोविज्ञान के तुलनात्मक पक्ष पर उनका 'अभिनव मनोविज्ञानम्' जिसमें उन्होंने अर्वाचीन मनोविज्ञान पांच सौ के लगभग नवीन शब्द गढ़े हैं। संस्कृत भाषा में इस विषय की एकमात्र कृति है। उनकी पुस्तक 'संस्कृत साहित्य चिन्तन' उत्तर प्रदेश शासन द्वारा रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार से सम्मानित हुई है। कुमारसम्भव, विक्रमोर्वशीय, ऋतुसंहार और मृच्छकटिक के व्यापक भूमिका और टिप्पणियों सहित अनुवाद काफी लोकप्रिय हुए हैं।

डॉ. अग्निहोत्री का स्नात्तकोत्तर अध्यापन और शोध-निर्देशन का पैंतीस वर्षों का अनुभव है। उनके निर्देशन में 40 से अधिक शोधार्थियों ने पी-एच.डी. और डी. लिट्. के लिए सफलतापूर्वक कार्य किया है। राष्ट्रीय महत्त्व की कई संस्थाओं ने उन्हें मानद की उपाधि प्रदान की है जिसमें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त 'साहित्य वाचस्पति' भी एक है। सन् 82 में उ॰ प्र॰ संस्कृत अकादमी ने इन्हें तत्कालीन सर्वोच्च विशिष्ट सम्मान प्रदान किया। सन् 88 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा गम्भीर शास्त्रीय वैदुष्य के लिये सम्मानित किया गया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ॰ अग्निहोत्री श्रेष्ठ वक्ता, समीक्षक और कवि होने के साथ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी भी हैं। आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस' की वैदिक शाखा के अध्यक्ष और कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष रहे हैं। कई विदेश यात्रायें की हैं। उनके प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या 40 से भी अधिक है। वह आज भी युवा के समान सरस्वती-सेवा में रत हैं।

Compiled 1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EASTERN BOOK LINKERS
(Indological Publishers & Bcok Sellers)
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110 007. Phone : 2520287

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

1

महाकवि कालिदास

डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री

ya Samaj Foundation Chennai
Domain. Gurukul Kangri